ISSN 0976-0849

विमर्श

अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

वर्ष १३ • अंक १३ • आश्विन कृष्ण चतुर्थी, विक्रम संवत् २०७६ • सितम्बर २०१९

युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की 50वीं पुण्यतिथि
एवं
राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 5वीं पुण्यतिथि
की पावन स्मृति में समर्पित
महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
की शोध पत्रिका

Vimarsh

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL

Editorial Advisory Board

U.P. Singh, Ex Vice-Chancellor, V.B.S. Purvanchal University, Jaunpur

R.P. Mishra, Ex Vice-Chancellor, Allahabad University, Allahabad

Pratap Singh, Ex Chairman, Higher Education Service Commission (HESC), Uttar Pradesh

Ram Achal Singh, Ex Vice-Chancellor, R.M.L. Awadh University, Faizabad and Ex Chairman, Higher Education Service Commission (HESC), Uttar Pradesh

K.B. Pandey, Ex Vice-Chancellor, Chhatrapati Shahu Ji Maharaj University, Kanpur and Ex Chairman, Public Service Commission, Uttar Pradesh

Prof. Surendra Dubey, Vice-Chancellor, Siddharth University, Kapilvastu, Siddharth Nagar

Shivajee Singh, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

D.N. Tripathi, Ex Chairman, Indian Council of Historical Research (ICHR), New Delhi

Narendra Kohli, Renowned author and thinker

Makkhan Lal, Director, Delhi Institute of Heritage Research and Management, New Delhi

Mrinal Shankar Raste, Ex Vice-Chancellor, Symbiosis International University, Pune

Ram Sakal Pandey, Ex Pro Vice-Chancellor, Allahabad University, Allahabad

Jay Prakash Chaturvedi, Professor, Physics, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

S.C. Bose, Professor, English, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

V.K. Srivastava, Professor, Geography, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

N.K.M. Tripathi, Professor, Psychology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Sheo Bahal Singh, Professor, Sociology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Pratibha Khanna, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Murli Manohar Pathak, Professor, Sanskrit, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

R.N. Singh, Professor, Defence and Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

S.S. Verma, Professor, Geography, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Sadanand Prasad Gupta, Professor, Hindi, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shri Prakash Mani Tripathi, Professor, Political Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

P.C. Shukla, Professor, Commerce, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Rajawant Rao, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Himanshu Chaturvedi, Professor, History, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Pragya Mishra, Professor, Ancient History, Ram Manohar Lohia Awadh University, Faizabad

Manvendra Pratap Singh, Professor, Sociology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Rajesh Singh, Professor, Political Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Mahesh Kumar Sharan, Professor, Maghadh University, Bodhgaya (Bihar)

Ravi Shankar Singh, Professor, Physics, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

S.S. Das, Professor, Chemistry, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

D.K. Singh, Professor, Zoology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

B.D. Pandey, Professor, Botany, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Vinod Kumar Singh, Professor, Defence & Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Mrityunjay Kumar, Renowned Journalist

Vimarsh

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL

Volume 13 • Number 13 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2076 • September 2019

Editor

Pradeep Kumar Rao

Co-editors

Avinash Pratap Singh, Subodh Kumar Mishra
Pragyesh Kumar Mishra & Abhishek Singh

The Journal of

Maharana Pratap P.G. College

Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)-273014

This Journal is a *Referral* Volume.

ISSN- 0976-0849

Vol. 13 • Number 13 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2076 • September 2019

Vimarsh, an interdisciplinary ***refereed or peer reviewed*** is an annual and bilingual journal of Maharana Pratap P.G. College Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP).

Copyright of the published articles, including abstracts, vests in the Editors. The objective is to ensure full Copyright protection and to disseminate the articles, and the journal, to the widest possible readership. Authors may use the article elsewhere after obtaining prior permission from the editors.

Research Papers related to Interdiscilinary subjects are invited for publication in the journal. Research papers, book reviews, Subscription and other enquiries should be sent to - Maharana Pratap P.G. College Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP) - 273014, Mob. : 9794299451, 9452971570. You may also e-mail your contributions and correspondence at *vimarshmppg@gmail.com*.

Guidelines for Contributors given on the inner side of the back cover.

The Editors and the Publisher can not be held responsible for errors and any consequences arising from the use of information contained in this journal. The views and opinions expressed do not necessarily reflect those of the editors and the publisher.

Designed & Printed at : Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 100	US $ 5	Rs. 200	US $ 10
Five Years	Rs. 400	US $ 20	Rs. 800	US $ 40
Life (15 Years)	Rs 1300	US $ 60	Rs. 2500	US $ 100

वन्दे भारतमातरम् !!

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।

वर्ष तद्भारत नाम भारती यत्र सन्ततिः॥ वा.पु.

पृथ्वी का वह भाग जो समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित है, भारतवर्ष है, जहाँ भारती प्रजा रहती है।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।

यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्याः भोगभूमयः॥ वा.पु.

इस जम्बू-द्वीप में भी, हे महामुने! भारतवर्ष श्रेष्ठ है, क्योंकि यह कर्मभूमि है और बाकी भोग-भूमियाँ ही हैं।

अत्र जन्म सहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम।

कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्॥ वा.पु.

भारतवर्ष में जीव हजारों जन्मों के अनन्तर पुण्य जुटाने से कदाचित् मनुष्य जन्म प्राप्त करता है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ मनु.

इस देश में जन्म पाए हुए श्रेष्ठ जन्मा पुरुषों से पृथिवी के सारे मनुष्य अपने-अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें।

रत्नाकराधौतपदां हिमालयकिरीटिनीम्।

ब्रह्मराजर्षिरत्नाढ्यां वन्दे भारतमातरम्॥

समुद्र जिसके पाँव पखार रहा है, हिमालय जिसका किरीट है और जो ब्रह्मर्षि-राजर्षिरूप रत्नों से समृद्ध हैं, ऐसी भारत-माता की मैं वन्दना करता हूँ।

भारतीय जीवन दृष्टि

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।

देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥ (ऋग्वेद १/४९/१)

कल्याणकारिणी, अप्रतारित, अप्रतिरुद्ध तथा अर्थसाधिका बुद्धियाँ हमारे पास सब ओर से आयें, जिसमे निरलस एवं प्रतिदिन रक्षा करने वाले देव सर्वदा हमारी वृद्धि के लिए हों-

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनुभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ (ऋग्वेद १/८/८)

हे देव! हम कानों से अच्छा सुनें। यजनीय देवगण! हम आँखों से अच्छा देखें। हम दृढ़ाङ्गशरीरों से तुम्हारी स्तुति करते हुए, देव-स्थापित आयु प्राप्त करें।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।

बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽसि ओजो मयि धेहि।

महोऽसि महो मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि। (यजुर्वेद १९/९)

(हे परमात्मन्! तुम) तेज हो, मुझमें तेज स्थापित करो। पराक्रम हो, मुझमें पराक्रम स्थापित करो। बल हो, मुझमें बल स्थापित करो। ओज हो, मुझमें ओज स्थापित करो। मह हो, मुझमें मह स्थापित करो। सहिष्णु हो, मुझमें सहिष्णुता स्थापित करो।

भद्रं इच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः, तपो दीक्षा उपसेदुः अग्रे।

ततो राष्ट्रं बल ओजश्च जात तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥ (अथर्व. १९/४१/१)

आत्मज्ञानी ऋषियों ने जगत् का कल्याण करने की इच्छा से सृष्टि के आरम्भ में दीक्षा लेकर जो तप किया, उससे राष्ट्र-निर्माण हुआ, राष्ट्रीय बल और ओज भी हुआ। इसलिए सब विवुध इस राष्ट्र के सामने नम्र होकर इसकी सेवा करें।

आ ब्रह्मन्! ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्यः शूराविध्यतेऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुः, वोढाऽनड्वान्, आशुः सप्तिः, पुरन्धिर्योषा, जिष्णुरथेष्ठाः, सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे-निकामे पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्। (यजुर्वेद. २२/२२)

हे ब्रह्मन्! राष्ट्र में हमारे ब्राह्मण, ब्रह्म वर्चस्वी हों। हमारे राजन्य शूर, अस्त्र-शस्त्र में निपुण, रिपुदल के महासंहारक तथा महायोद्धा हों। हमारी गायें दुधारू हों, बैल हल आदि ढोने वाले हों, घोड़े वेग से दौड़ने वाले हों, स्त्रियाँ घर सँभालने वाली हों, योद्धा विजयशील हों, तथा युवक सभ्य एवं वीर हों। जब-जब हम चाहें बादल बरसें। हमारी फल-फूलवती खेतियाँ पकती रहें और हमारा योगक्षेम चलता रहे।

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।

तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

पुण्य-स्मृति

गोरक्षपीठ द्वारा संचालित
महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
शिक्षा क्षेत्र की एक अग्रणी संस्था है।
पूर्वी उत्तर प्रदेश में गोरखपुर को केन्द्र बनाकर
प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक लगभग चार दर्जन
शिक्षण संस्थानों का संचालन करने वाले
महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
की स्थापना १९३२ ई. में
गोरक्षपीठाधीश्वर
महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज
ने की थी और इसे विशाल वटवृक्ष का रूप दिया
उनके शिष्य महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने।
महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय
इसी महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
जैसे वटवृक्ष की एक शाखा है।
युगद्रष्टा ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की ५०वीं एवं
राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की ०५वीं
पावन पुण्यतिथि पर
सादर समर्पित है

विमर्श-२०१९

चरैवेति! चरैवेति!

वैदिक ग्रन्थ 'ऐतरेय ब्राह्मण' के 'चरैवेति! चरैवेति!' शीर्षक मंत्र युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज एवं गोरक्षपीठाधीश्वर ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के जीवन में साक्षात् दिखता है। इन मंत्रों का मूल स्वरूप और सहज-सरल भावानुवाद यहाँ प्रस्तुत है-

नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा॥ **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : (हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को उपदेश करते हुए इन्द्र कहते हैं) हे रोहित! हम ऐसा सुनते हैं कि श्रम करने से जो नहीं थका है, ऐसे मनुष्य को श्री की अथवा ऐश्वर्य और वैभव की प्राप्ति होती है। बैठे हुए आलसी आदमी को पाप धर दबाता है। इन्द्र उसका ही मित्र है, जो बराबर चलता रहता है। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

पुष्पिण्यौ चरतो जंघे भूष्णुरात्मा फल ग्रहिः।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः॥ **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : जो मनुष्य चलता रहता है, उसकी जांघों में फूल फूलते हैं। उसकी आत्मा भूषित और शोभित होकर फल प्राप्त करती है। ऐसे चलने वाले परिश्रमी व्यक्ति के सारे पाप थककर सोये रहते हैं। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः॥ **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : बैठे हुए का सौभाग्य बैठा रहता है और खड़े होने वाले का सौभाग्य उठकर खड़ा हो जाता है। पड़े रहने वाले का सौभाग्य सोता रहता है और उठकर चलने वाले का सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तुः द्वापरः।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥ **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : सोने वाले का नाम कलियुग है, अंगड़ाई लेने वाला द्वापर है, उठकर खड़ा होने वाला त्रेता है और चलने वाला सतयुगी होता है। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्॥ **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : चलता हुआ मनुष्य ही मधु (अमृत) प्राप्त करता है। चलता हुआ मनुष्य ही स्वादिष्ट फलों को चखता है। सूर्य के परिश्रम को देखो, जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

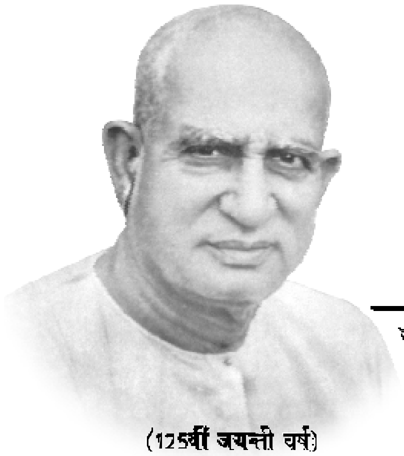

(125वीं जयन्ती वर्ष)

जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी।
जो दृढ़ राखे धर्म को, तिहिं राखै करतार।।

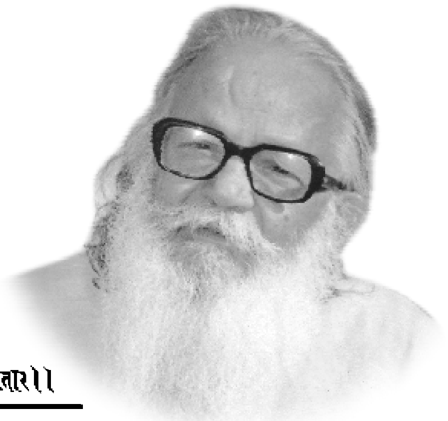

(जन्म शताब्दी वर्ष)

युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की 50वीं पुण्यतिथि

एवं

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 5वीं पुण्यतिथि

की पावन स्मृति में आयोजित

साप्ताहिक व्याख्यान माला

16 से 22 अगस्त, 2019

उद्घाटन

16 अगस्त, शुक्रवार 2019

अध्यक्ष	:	**प्रो. उदय प्रताप सिंह**, पूर्व कुलपति वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.
मुख्य अतिथि	:	**प्रो. विजय कृष्ण सिंह**, मा. कुलपति दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उ.प्र.
मुख्य वक्ता	:	**डॉ. अनन्त नारायण भट्ट** वैज्ञानिक 'ई', परमाणु चिकित्सा एवं सम्बद्ध विज्ञान संस्थान, डी.आर.डी.ओ., नई दिल्ली

समारोप

22 अगस्त, गुरुवार 2019

अध्यक्ष	:	**प्रो. उदय प्रताप सिंह**, पूर्व कुलपति वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.
मुख्य अतिथि	:	**प्रो. सुरेन्द्र दुबे**, मा. कुलपति सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, उ.प्र.
मुख्य वक्ता	:	**श्री पुष्पेन्द्र कुलश्रेष्ठ जी** प्रतिष्ठित राजनैतिक, सामाजिक विचारक एवं चिन्तक, अलीगढ़, उ.प्र.

व्याख्यान कार्यक्रम

दिनांक/विषय		मुख्य वक्ता
17 अगस्त, 2019		
सशस्त्र बलों को जानें	:	**ले. जनरल (अ.प्रा.) मानवेन्द्र प्रताप सिंह** भारतीय सेना सरोजिनी नगर, लखनऊ
क्लाइमेट चेन्ज एण्ड ग्लोबल वार्मिंग	:	**श्री विनय कुमार सिंह** प्रवक्ता, प्राणि विज्ञान विभाग महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर
18 अगस्त, 2019		
भारतीय अपराधिक न्याय व्यवस्था	:	**श्री विजय कृष्ण पाठक** लोक अभियोजक, भ्रष्टाचार निरोधक शाखा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, नई दिल्ली
इमर्सन एण्ड हिज हिन्दू फिलास्फी	:	**श्रीमती कविता मध्यान** प्रवक्ता, अंगेजी विभाग महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर
19 अगस्त, 2019		
अस्तित्व के केन्द्र से अस्तित्व के केन्द्र तक : ऊर्जा का प्रवाह	:	**प्रो. दिनेश कुमार सिंह** पूर्व विभागाध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
डिजीटल इण्डिया के बढ़ते कदम : एक दृष्टि	:	**डॉ. सुभाष कुमार गुप्त** प्रवक्ता, वाणिज्य विभाग महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर
20 अगस्त, 2019		
प्राचीन भारत की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ	:	**डॉ. वी. रामानाथन** आचार्य, रसायनशास्त्र विभाग भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, वाराणसी
वैश्विक स्तर पर उभरता भारत	:	**डॉ. कृष्ण कुमार** प्रवक्ता, राजनीतिशास्त्र विभाग महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर
21 अगस्त, 2019		
भारतीय मीडिया की चुनौतियाँ	:	**श्री दिलीप सिंह** वरिष्ठ पत्रकार नई दिल्ली
लिक्विड क्रिस्टल एण्ड इट्स अप्लीकेशन	:	**डॉ. शैलेन्द्र ठाकुर** प्रवक्ता, भौतिक विज्ञान विभाग महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

Vimarsh
An Interdisciplinary Journal
Volume 13 • Number 13 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2076 • September 2019

CONTENTS

Articles **Pages**

1. महन्त दिग्विजयनाथ-व्यक्तित्व और कृतित्व 1
2. राष्ट्र सन्त महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज
   प्रदीप कुमार राव 16
3. Glimpses from the Mathematical Heritage of Bharata ....
   V. Ramanathan 33
4. Know Your Armed Forces
   Lt Gen Manvender Singh, PVSM, AVSM, VSM (Retd) 43
5. Aayurveda as Modern Medicine: Prospects, Limitations and Challenges
   Anant Narayan Bhatt 56
6. Indian Criminal Judicial System
   Vijay Krishna Pathak 63
7. नाथ पंथ का लोककल्याणकारी हठयोग
   सलिल कुमार पाण्डेय 68
8. हम और हमारा जीवन
   शिप्रा सिंह 71
9. Traditional medicine System: Siddha
   Manish Kumar Tripathi 87
10. Buddhism in Thailand
   Rajesh Ram 98
11. Indo-Lao Cultural Contacts
   Vijay Shankar Shrivastava 105
12. Emerson and His Hindu Philosophy
   Kavita Mandhyan 108
13. Buddhist Monks, Monasteries and the Society of Thailand during Chakri Dynasty: A Historical Study
   Dhruva Kumar 114
14. An effort to study of phase transition temperature of some selected 2,5 pyridine derivatives by quantum mechanics
   Shailendar Kumar Thakur 119
15. प्रभा खेतान के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन
   सोनम सिंह 125

16. Climate Change and Global Warming
Vinay Kumar Singh 132
17. After Independence Escalation of Atrocities Against Women in Uttar Pradesh
Priyanka Anand 145
18. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में सैन्य तकनीकि एवं वैज्ञानिकता की पराकाष्ठा
रमाकान्त दुबे 153
19. पश्चिम एशिया में शैव धर्म का तादात्म्य
शत्रुजीत सिंह 159
20. राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणाएँ एवं उसके आधारभूत तत्व
अभिषेक सिंह 162
21. विष्णुपुराण और भारत
संतोष कुमार ओझा 166
22. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय चेतना
आरती सिंह 176
23. भारत : सभ्यता के उषा काल से 1947 के विभाजन तक
शचीन्द्र मोहन 179
24. कमजोर वर्गों के विकास में सामाजिक न्याय की भूमिका
हनुमान प्रसाद उपाध्याय 194
25. कर्मचारी भविष्य निधि संगठन द्वारा प्रदत्त सेवाओं का विपणन : एक दृष्टि
सुभाष कुमार गुप्ता 198
26. हिन्दी भाषा ही राष्ट्रवाद की पहचान
महेन्द्र प्रताप सिंह 208
27. वैश्विक स्तर पर उभरता भारत
कृष्ण कुमार 211
28. Stress in Students: Major causes and effective hacks to overcome
Nisha Dubey 217
29. Role of Chemical in Water Purification
Gaurav Tiwari 222
30. भारतीय संस्कृति : अतीत के वातायान से
फूलचन्द प्रसाद गुप्त 242
31. योगधर्म और राजधर्म का ज्ञानपीठ श्रीगोरक्षपीठ
रामदरश राय 249
32. शैक्षिक अवसरों की समानता: भारतीय सन्दर्भ में
गिरीश चन्द्र पाठक 252
33. पुनर्पाठ
33.1 National Policy on Education
Mahant Digvijay Nath 260
33.2 महायोगी गोरखनाथ के संस्कृत ग्रन्थ
महन्त अवेद्यनाथ 272

महन्त दिग्विजयनाथ-व्यक्तित्व और कृतित्व

युगपुरुष महन्त दिग्विजयनाथ जी बचपन में राणा नान्हू सिंह के नाम से विख्यात थे। उनका आविर्भाव बाप्पा रावल के उस इतिहास प्रसिद्ध वंश में हुआ था, जिसमें उत्पन्न होकर राणा सांगा और महाराणा प्रताप जैसे स्वदेशाभिमानी वीरों ने देश और धर्म की रक्षा के लिए आजीवन संघर्ष किया। महाराणा प्रताप की तलवार ने जिस वंश के इतिहास को त्याग, वीरता और आत्म-सम्मान का इतिहास बना दिया, जिस धरती को शत्रुओं के रुधिर से सींच-सींच कर पवित्र और पूज्य बनाया, उसी मेवाड़ की धरती पर सिसोदिया वंश में जन्म लेकर राणा नान्हूसिंह ने भी अपने जीवन को त्याग और बलिदान का निदर्शन बना दिया।

राणा नान्हू सिंह का जन्म उदयपुर के राणा वंशी परिवार मे सन् 1894 में वैशाखी पूर्णिमा को हुआ था। बचपन में ही माता-पिता के स्वर्गवासी हो जाने के कारण उनके पालन-पोषण का दायित्व उनके चाचा पर आ पड़ा। उस समय उदयपुर के निकट एक नाथ पंथी योगी महात्मा फूलनाथ साधनारत थे। वे गोरखपुर स्थित श्री गोरक्षनाथ मंदिर के तत्कालीन महन्त श्री बलभद्रनाथ जी के शिष्य और महन्त सुन्दरनाथ जी के गुरुभाई थे। बाल्यावस्था में ही राणा नान्हू सिंह के माता-पिता हैजे की बीमारी में मर चुके थे। उनके चाचा सम्पत्ति के लोभ में उनसे छुटकारा चाहते थे। उन्होंने महात्मा फूलनाथजी से निवेदन किया कि सन्तान-प्राप्ति हेतु हमने यह मनौती मानी थी कि अपनी प्रथम सन्तान श्री गुरु गोरक्षनाथजी को समर्पित करेंगे। उनकी कृपा से मेरे कईं सन्तानें हो गयीं हैं। अस्तु, मैं अपनी प्रथम सन्तान श्री गुरु गोरक्षनाथजी के चरणों में समर्पित करना चाहता हूँ, किन्तु घर के लोगों का इस बालक के प्रति विशेष स्नेह एवं ममत्व है। इस कारण वे उसको अपने से अलग नहीं करना चाहते हैं, जिससे मुझे बराबर हार्दिक कष्ट रहता हैं अत: आप मेरी इस मनौती को पूर्ण करने में सहायता करें। मैं गणगौरी के मेले के दिन जैसे ही बालक आप को समर्पित करूँ, आप उसे लेकर गोरखपुर चले जायें। अन्यथा घर के लोग उसे पुनः घर ले जायेंगे, जिसका मुझे जीवन भर खेद रहेगा। श्री बाबा फूलनाथजी को चाचा के षड्यंत्र का पता नहीं था। उन्होंने सहज ही में उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और योजनानुसार चाचा ने जैसे ही बच्चे को समर्पित किया, वे तुरन्त उसे लेकर गोरखपुर आ गये। गोरखपुर पहुँचने पर उन्होंने तत्कालीन योगिराज श्री बाबा गम्भीरनाथ जी एवं अन्य लोगों से बालक राणा नान्हू सिंह के श्री गोरक्षनाथ जी को समर्पित करने की कहानी से अवगत किया और बताया कि उदयपुर के राणा ने अपने पुत्र को श्री गोरक्षनाथ जी के चरणों में समर्पित किया है। उधर उदयपुर में षड्यंत्री चाचा द्वारा यह प्रचार किया जा रहा था कि बालक मेले में गायब हो गया

और उसे खोजने के लिए बनावटी व्यग्रता दिखाई। बाद में जो बातें प्रकाश में आई, उनसे पता चला कि उस समय सारे राजस्थान मे बालक राणा नान्हू सिंह की तलाश दिखावे के लिए चाचा ने कराई। तालाब में डूबने की आशंका समाप्त करने के लिए तलाब में जाल भी डाला गया, किन्तु बालक का कहाँ पता चलता! वह तो एक साजिश के साथ गोरखपुर पहुँचा दिया गया। श्री गोरक्षनाथ मंदिर पर बालक नान्हू सिंह को साधु-मंतों एवं सन्यासियों के सम्पर्क में रहना पड़ा। राजवंश में उत्पन्न इस बालक को मंदिर में निवास करने वाला साधु-समाज आश्चर्य और आशंका मिश्रित कौतूहल से देखता था। उन्हें यह विश्वास था कि मंदिर के वातावरण में यह बालक अधिक दिनों तक टिक नहीं पायेगा। किन्तु बालक नान्हू सिंह को उसी समय योगीराज गम्भीरनाथ जी की अहैतुकी कृपा प्राप्त हो गई। योगिराज गम्भीरनाथ जी उस समय के सर्वाधिक प्रतिष्ठित और ख्यातिलब्ध योगी थे। उनकी स्नेहच्छाया में बालक नान्हू सिंह को व्यवधानविहीन जीवन व्यतीत करने का अवसर मिला। नन्हें बालक की प्रतिभा को देखकर ही उस महान साधक ने उन्हें आशीर्वाद दिया था कि भविष्य में वह महान् यश की उपलब्धि करेगा।

मंदिर की ओर से ही बालक नान्हू सिंह की प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। स्थानीय जुबली हाई स्कूल में उन्होंने सातवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। प्रारम्भ से ही वे बड़े स्वाभीमानी थे। जुबली हाई स्कूल के तत्कालीन प्रधानाचार्य राय साहब अघोरनाथ चट्टोपाध्याय से उनकी अनबन हो गई। फलत: उन्होंने सातवीं कक्षा के बाद स्कूल का परित्याग कर दिया। फिर उन्होंने स्थानीय हाई स्कूल में प्रवेश लिया, जो आजकल महात्मा गांधी इण्टर कालेज के नाम से विख्यात है। सेन्टएण्ड्रूज कालेज में उन्होंने इण्टरमीडिएट में प्रवेश लिया। सन् 1920 ई. में राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित होकर उन्होंने विद्यालय का परित्याग कर दिया और वे सक्रिय रूप से देश के स्वतंत्रता आंदोलन में सम्मिलित हो गये।

बालक नान्हू सिंह सदा एक औसत छात्र रहे। किन्तु विद्यालय के पाठ्यक्रमेतर कार्यक्रमों में वे सर्वदा सर्वाधिक उत्साह से भाग लेते थे। सभा-सोसाइटी तथा व्याख्यान आदि का आयोजन करने और उनमे सोत्साह भाग लेने, छात्रों को संगठित करने तथा विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाओं की व्यवस्था करने में वे अत्यन्त कुशल थे। नेतृत्व, निर्भीकता, स्वाभिमान, अनुशासनप्रियता, प्रत्युत्पन्नमतित्व और कार्यकुशलता उनके जीवन के प्रधान गुण थे। छात्र-जीवन में बीज-रूप में अंकुरित ये गुण उनके भावी जीवन में पूर्णतया पल्लवित और पुष्पित हुए। इन्हीं गुणों के बल पर बालक नान्हू सिंह ने आगे चलकर दिग्विजयनाथ के अभिधान को सार्थक करते हुए जीवन के समस्त धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्रों को अपनी स्वत:सम्भूत प्रखर बौद्धिकता से भली-भाँति आलोकित किया।

छात्र-जीवन में वे हाकी के श्रेष्ठ खिलाड़ी थे। मैदान में उतरने के पश्चात वे अपने

व्यक्तित्व, व्यवहार और कौशल के कारण समूचे जनसमूह पर छा जाते थे। दर्शकों की दृष्टि निरन्तर उनका ही अनुगमन करती रहती थी। वे सेन्टर फारवर्ड और राइट आउट दोनों स्थानों से समान कुशलता के साथ खेल लेते थे। खेल के प्रति उन्हें इतना मोह था कि बाद के जीवन में भी वे जब कभी संध्या के समय महाराणा प्रताप कालेज की ओर निकल आते और बच्चों को हाकी खेलते देख लेते तो वे खेलने का लोभ संवरण नहीं कर पाते थे। छात्र-जीवन समाप्त करने के बाद भी वे सेन्टऐन्ड्रयूज कालेज में बराबर हाकी खेलने जाया करते थे। इसके अतिरिक्त बैडमिंटन और टेनिस में भी उनकी अधिक रूचि थी। इन दोनों खेलों की व्यवस्था उन्होंने मंदिर पर भी कर रखी थी। उनकी साथ टेनिस खेलने वाले लोग आज भी मुक्त कण्ठ से उनकी प्रंशसा करते हैं। घुड़सवारी तो उनके नित्य जीवन का एक अंग था ही।

विद्यार्थी जीवन में ही राणा नान्हू सिंह के हृदय में हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के प्रति पूरी आस्था थी। योगिराज गम्भीरनाथ जी के चरणों में बैठकर उन्होंने सर्वप्रथम हिन्दू संस्कृति के मूल तत्वों को पहचानने का प्रयास किया। विद्यार्थी जीवन की धर्म-प्रेम सम्बन्धी कुछ घटनायें अविस्मरणीय हैं।

राणा नान्हू सिंह (महंत दिग्विजयनाथजी) आठवीं कक्षा के छात्र थे। उस समय वर्तमान राजकीय टेक्निकल स्कूल के निकट बने एक छोटे शिव मंदिर को लेकर एक विवाद खड़ा हो गया टेक्निकल स्कूल के पास की भूमि रेलवे कर्मचारियों के आवास के लिए अधिगृहीत की जा रही थी। उसी भू-भाग में एक लुहार द्वारा निर्मित शिव मंदिर सार्वजनिक उपासना का केन्द्र बन चुका था। जब उसे गिरवाने का प्रयास किया जाने लगा तो राणा नान्हू सिंह के नेतृत्व में विद्यार्थियों के एक विशाल समूह ने रेलवे के तत्कालीन चीफ इंजीनियर ममी साहब का बंगला घेर लिया। उस समय छात्रों के साथ नृसिंह प्रसाद एडवोकेट भी थे। छात्रों के विशाल परेड का नेतृत्व करने के कारण राणा नान्हू सिंह और स्थानीय रईस बाबू पुरुषोत्तमदास जी को पकड़कर हवालात में डाल दिया गया। बाद में समझौता हुआ और मंदिर गिरने से बच गया।

सन् 1918 में जब वे कक्षा 9 के छात्र थे, उस समय गोरखनाथ मंदिर के अहाते में ईसाई मत-प्रचारक कैम्प लगाकर अपने मत का प्रचार कर रहे थे। कई वर्षों से वे यह कार्य करते आ रहे थे। एक हिन्दू मंदिर के प्रांगण मे हिन्दू धर्म के ही विरुद्ध प्रचार किया जाए, इसे राणा नान्हू सिंह सहन न कर सके। विद्यार्थियों का एक विशाल समूह लेकर उन्होंने ईसाई मत प्रचारक कैम्पों पर आक्रमण कर दिया। कैम्प उजाड़ डाले गये। ईसाई धर्म की पुस्तकों को पोखरे में जल-समाधि दे दी गई। इसके बाद कभी किसी ईसाई प्रचारक का मंदिर के पावन प्रांगण में जाने का साहस न हुआ।

इस घटना से समस्त प्रशासकीय अधिकारी अप्रसन्न हो गये। उस समय स्थानीय कमिश्नर, कलैक्टर और एस.पी. सब के सब ईसाई धर्मावलंबी थे उन्होंने मुकदमा चलाना चाहा, किन्तु नगर

के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों के हस्तक्षेप के कारण यह कार्यवाही रूक गई।

राणा नान्हू सिंह का विद्यार्थी जीवन भारतीय पराधीनता का कठोरतम समय था। अंग्रेजी शासन की कठोरता और दमन की दुर्दमनीयता के कारण साधारण जनता में नौकरशाही के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस न था। तथापि उस अवस्था में भी राष्ट्र से प्रेम रखने वाले लोगों की कमी न थी। विदेशी शासन सत्ता को उन्मूलित करके राष्ट्र को स्वाधीन बनाने का प्रयास करने वाले इन राष्ट्रभक्तों के दो वर्ग थे। एक वर्ग ऐसे लोगों का था, जो प्रत्यक्ष रूप से जनता के मध्य जागरण का संदेश देता रहता था। सरकारी अधिकारियों से मिलकर जनता के कष्टों को दूर करने का प्रयास करता था और आवष्ठयकता पड़ने पर सत्याग्रह आदि का भी सहारा लेता था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस आदि से संबंधित लोग इसी वर्ग के थे।

दूसरे वर्ग में वे लोग थे, जो सरकारी कार्यों में व्यवधान उत्पन्न करते थे। सरकारी खजानों को लूटते, नौकरशाही के विभिन्न शिकंजों को तोड़कर आतंक का वातावरण उत्पन्न कर के विदेशी शासन सत्ता को दहला देने का प्रयास करते थे। ऐसे लोग गुप्त संगठनों के माध्यम से कार्य करते हुए स्वाधीनता प्राप्ति के लिए एक युगान्तरकारी क्रांति का बीजारोपण कर रहे थे।

राणा नान्हू सिंह ने विद्यार्थी जीवन में दोनो वर्गो से संबंध स्थापित किया। उनके हृदय में हिन्दू धर्म, हिन्दू जाति, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू राष्ट्र के प्रति संस्कारतः अंकुरित उत्कट प्रेम और बलिदान की भावना उन्हें एक सही दिशा प्रदान करने के लिए जागरूक थी। उस काल में ही उन्होंने अनेक क्रांतिकारियों से भी संपर्क स्थापित किया था, जो यथा अवसर मन्दिर पर भी आया करते थे।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में भारतीय जनता की भावनाओं का नेतृत्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के हाथों में आ गया था। कांग्रेस में भी दो प्रकार के लोग थे। एक उग्रवादी, जो प्रत्यक्ष ध्वन्सात्मक कार्यवाही में विश्वास करते थे। दूसरे समझौतावादी, जो अपने नम्र विचारों के कारण 'नरम दल'' के नाम से सम्बोधित किये जाते थे। उस समय कांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गाँधी जैसे नरम दलीय नेता के हाथों में आ रहा था।

सन् 1920 में महात्मा गाँधी का गोरखपुर में भव्य स्वागत हुआ। बाले के मैदान में महात्मा गाँधी ने एक विशाल जनसमूह को सम्बोधित किया। राणा नान्हू सिंह ने गाँधी जी के कार्यक्रम की निर्विघ्न समाप्ति के लिए 'वालेन्टियर कोर' का संगठन किया था और गाँधी जी के कार्यो को पूरा करने में तन-मन-धन से सहयोग किया। किन्तु थोड़े दिनों के पश्चात् चौरीचौरा की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना ने यह सिद्ध कर दिया कि राणा नान्हू सिंह (पूज्य महंत दिग्विजयनाथजी) महात्मा गाँधी के समझौतावादी सिद्धांतों के पोषक न थे। सन् 1921 में महात्मा गाँधी का राष्ट्रव्यापी असहयोग आंदोलन प्रारम्भ हुआ। राष्ट्र प्रेमी युवकों ने अपने अध्ययन-अध्यापन, नौकरी तथा व्यवसाय आदि का परित्याग कर असहयोग आंदोलन में भाग लिया। इस समय पूर्वी उत्तर प्रदेश में विशेष रूप से

गोरखपुर, देवरिया जनपद में कांग्रेस का संगठन अत्यंत शक्तिहीन था। राणा नान्हू सिंह ने इन आंदोलनों से प्रभावित होकर सन् 1920 ई. में ही कालेज का परित्याग कर दिया था। उन्होंने असहयोग आंदोलन को सफल बनाने का पूरा प्रयास किया।

गोरखपुर जिले में स्थित चौरीचौरा स्थान पर आंदालेन के खिलाफ की जो प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई, उससे नौकरशाही तो आतंकित हुई ही, महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक आंदोलन का रूप ही बदल गया। उन्हें बहुत शीघ्र ही अपना आंदोलन वापस लेना पड़ा। इस चौरीचौरा काण्ड के अभियुक्तों को फांसी की सजा देने का निर्णय किया गया था। उनमें राणा नान्हू सिंह भी थे। किन्तु शिनाख्त (Identification) न हो पाने के कारण वे मुक्त कर दिये गये।

गोरखनाथ मंदिर पर आने के पश्चात् उनको योगिराज गम्भीरनाथजी की कृपा प्राप्त हो गई थी। संभवत: बालक की विलक्षण प्रतिभा को पहचान कर ही उन्होंने उसे संरक्षण देना प्रारम्भ कर दिया था। योगिराज गम्भीरनाथजी महान विभूति सम्पन्न सिद्ध योगी थे। वे आधिभौतिक संबंधों का परित्याग कर चुके थे। उनके स्वाभाविक गाम्भीर्य एवं तपोपूत नि:स्पृह व्यक्तित्व से प्रभावित बालक नान्हू सिंह के मन में एक आध्यात्मिक जिज्ञासा बलवती होने लगी। योगिगज गम्भीरनाथ जी ने उन्हें अपने शिष्य महात्मा ब्रह्मनाथ जी के सरंक्षण में देकर उनके पालन-पोषण तथा शिक्षा आदि की पूरी व्यवस्था कर दी थी। योगिराज सिद्ध महात्मा थे। बालक के प्रति उनके मन में अपार स्नेह था।

योगिराज अपने योगबल से अलौकिक कार्य करने में समर्थ थे। उन्होंने बालक नान्हू सिंह के जीवन को प्रभावित करने वाले अनेक चमत्कारिक कार्य किये थे, जिनका उल्लेख ब्रह्मलीन महंत जी प्राय: किया करते थे। 8-9 वर्ष की अवस्था में बालक नान्हू सिंह गम्भीर रूप से बीमार पड़े। उनका शरीर ज्वर-ताप से दग्ध होने लगा। जब साधुओं ने योगिराज को बालक की बीमारी का समाचार सुनाया तो उन्होंने एक कूड़ी के जल पर हाथ फेर कर उन्हें पिला दिया। ज्वर का ताप तत्काल समाप्त हो गया।

इसी तरह 13-14 वर्ष की अवस्था में एक घटना और घटित हुई। एक दिन एक वृद्ध एक पुरानी अचकन और पाजामा लिए हुए आया। पूज्य योगिराज के आदेश से नान्हू सिंह ने इच्छा न रहते हुए भी उसे धारण कर लिया। उसकी जेब में हाथ डाला तो उसमें से केशों का एक लट निकला। रात्रि में उन्हें जोर का बुखार चढ़ा और दो-एक दिनों के पश्चात चेचक निकल आई। चेचक का इतना भयंकर प्रकोप हुआ कि उससे बचना असम्भव ज्ञात होने लगा। जब योगिराज गम्भीरनाथ जी को बालक के संज्ञाशून्य होने का समाचार दिया गया तो उन्होंने उनके निश्चेष्ट शरीर को मंगवाकर अपनी चारपाई के नीचे रखवा लिया। सवेरे लोगों ने उन्हें जीवित पाया।

स्थानीय हाई स्कूल में उनके एक अध्यापक यदुनाथ चक्रवर्ती थे। वे बड़े ही सरल स्वभाव वाले थे। राणा नान्हू सिंह के हृदय में उनके प्रति सात्विक श्रद्धा थी। उक्त अध्यापक को अवकाश

प्राप्ति की आयु के पूर्व ही विद्यालय की सेवाओं से मुक्त कर दिया गया। उस समय राणा नान्हू सिंह गोरक्षनाथ मंदिर के महन्त हो चुके थे। उन्होंने अपने अन्य सहयोगियों से परामर्श कर तत्काल एक नये विद्यालय की स्थापना कर दी। यह विद्यालय 'गुडलक विद्यालय' के नाम से बक्शीपुर मुहल्ले में एक किराये के मकान में प्रारम्भ हुआ और श्री यदुनाथ चक्रवर्ती को ही विद्यालय को संचालित करने का कार्य सौंपा गया। उन्हें उसका प्रधानाचार्य बना दिया गया। कालांतर में इसी विद्यालय ने विकसित होकर महाराणा प्रताप इण्टर कालेज का रूप धारण कर लिया।

विद्यार्थी जीवन में अपने शिक्षा-गुरु के प्रति उनके मन में जो श्रद्धा और आदर का भाव था, उसी के निर्वाह के लिए उन्होंने इतने बड़े विद्यालय की स्थापना कर डाली। यह वस्तुतः उनके स्वाभिमान और गुरुभक्ति का सच्चा उदाहरण है।

सन् 1921 ई. में छात्र जीवन का परित्याग करने के बाद राणा नान्हू सिंह राजनीतिक कार्यों में अधिक रूचि लेने लगे। इधर गोरखपुर मठ के महंत पद को लेकर पहले से ही विवाद चल रहा था। तत्कालीन महंत सुन्दरनाथ जी तथा महंत ब्रह्मनाथजी का स्वत्वाधिकार संबंधी विवाद हाईकोर्ट तक पहुँच गया था। इन आंतरिक एवं बाह्य, गृह संबंधी एवं राजनीतिक विवादों में फंसकर जीवन का अस्त-व्यस्त हो जाना स्वाभाविक है। किन्तु उन्होंने बड़े ही धैर्य के साथ परिस्थितियों का सामना किया और अन्ततः वे विजयी रहे।

सन् 1935 में महंत ब्रह्मनाथजी का गोलोक वास हो गया। उनके ब्रह्मलीन होने के पश्चात श्रावण पूर्णिमा के दिन 15 अगस्त सन् 1935 में पूज्य दिग्विजयनाथजी गोरक्षनाथ मंदिर के पीठाधीश्वर पद पर अभिशिक्त हुए। जिस समय पूज्य महंतजी ने गोरक्षनाथ पीठाधीश्वर का उत्तरदायित्वपूर्ण पद ग्रहण किया उस समय मंदिर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। लगभग एक दशक पूर्व मे निरन्तर मुकदमें की पैरवी में लगे रहने के कारण पूर्वाधिकारियों ने मंदिर की व्यवस्था पर ध्यान नहीं दिया था। पूज्य महंत दिग्विजयनाथ जी ने मंदिर के विकास की योजनाएं बनायी और तत्काल योजनाबद्ध रूप से इन कार्यों के सम्पादन में लग गये। मंदिर के पुनर्निर्माण और क्षेत्र-विस्तार के साथ उन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और राजनैतिक कार्यों का भी सफलता पूर्वक संचालन किया। उनकी कारयित्री प्रतिभा एवं समय की गतिविधियों को पहचान कर कार्य करने की अदभुत क्षमता ने दो-तीन दशकों में ही मंदिर को पूर्वांचल का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ और पर्यटन केन्द्र बना दिया। आज गोरक्षनाथ मंदिर हिन्दू संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बन गया है।

महंत दिग्विजयनाथ जी ने गोरखनाथ मंदिर को नवीन रूप से व्यवस्थित किया। अब तक यह मंदिर केवल नाथपंथी साधुओं का साधना केन्द्र और पर्यटक साधुओं और श्रद्धालुओं के लिए पूजा का मंदिर मात्र था। महंतजी ने इसे नाथ-योग के प्रचार और प्रसार का प्रमुख केन्द्र बनाया साथ

ही हिन्दू धर्म और संस्कृति के समस्त अंगों को प्रोत्साहित करने के लिए उन्होंने इसे महान सांस्कृतिक केन्द्र बना दिया। शिवावतार महायोगी गोरक्षनाथ की पूजा तो यहाँ नित्य होती ही थी। राम और कृष्ण के नामोच्चारणों से भी मंदिर का प्रांगण गुंजित होने लगा। ब्रिटिश शासन काल में इस मंदिर ने हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष किया। अनेक विप्लवों के समय महंत दिग्विजयनाथ ने परिस्थितियों का डटकर सामना किया अन्यथा इस क्षेत्र में आज हिन्दू जाति का रूप कुछ दूसरा ही होता।

सन् 1935 में गोरक्षनाथ मंदिर के पीठाधीश्वर के पद पर अभिशिक्त होने के पश्चात महंत दिग्विजयनाथ के व्यक्तित्व को बहुमुखी प्रसार का अवसर मिला। सन् 1969 में महासमाधि लेने के समय तक वे विभिन्न क्षेत्रों में अनवरत गति से कार्य करते रहे। उन्होंने समसामयिक समाज को सुधारने का प्रयास किया विभिन्न शिक्षा संस्थाओं तथा सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना करके नवयुवक वर्ग को नयी दिशा प्रदान की, साधु समाज की परम्परागत ऐकान्तिकता और निष्क्रियता को दूर कर, उन्हें सच्चे समाज-धर्म से अवगत कराया और सक्रिय राजनीति में भाग लेकर राजनयिकों की अनवधानता दूर करने का प्रयास किया। राष्ट्र की बदलती हुई परिस्थितियों ने उन्हें हिन्दू धर्म और संस्कृति का सजग प्रहरी बना दिया। उन्होंने अपने व्यक्तित्व में विभिन्न विरोधाभासों को समन्वित कर लिया था। वे साधु होते हुए भी समाज से दूर न थे। विभिन्न संस्थाओं के संस्थापक होते हुए भी उनमें सर्वथा आसक्त न थे। राजनीति में रहते हुए भी कथनी-करनी में अंतर उपस्थित करने वाले आज के राजनीतिक छल-छद्म से उनका लगाव न था। समाज सुधारक के रूप में निरंतर कार्य करते हुए भी अपनी वैयक्तिक प्रभुता का उन्हें मोह न था। वे योगी होते हुए भी पूरे सामाजिक थे। उनके संग्रह में सेवा और त्याग का महान योग अन्तर्निहित था। वस्तुत: इस संग्रह और त्याग के सामरस्य ने ही उनको महान से महानतम बना दिया था।

हिन्दू जाति और धर्म के प्रति महंत जी का संस्कारगत प्रेम था। उनके शरीर में सिसोदिया वंश का रक्त प्रवाहित हो रहा था। राणा सांगा और महाराणा प्रताप की आन और मान रक्षा की भावना उन्हें वंशानुगत रूप में प्राप्त हुई थी। भगवान गोरक्षनाथ के मंदिर की पवित्रता और आध्यात्मिक गरिमा ने मान, रक्षा तथा हिन्दुत्व प्रेम के साथ ही हिन्दू संस्कृति की रक्षा की भावना को और भी दृढ़ कर दिया। देश की राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों ने भी उनके सांस्कृतिक भावों को सुदृढ़ किया। राष्ट्र और संस्कृति की रक्षा के लिए ही सन् 1934 ई. तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सिद्धांतों को स्वीकार कर उन्होंने कार्य किया। किन्तु कांग्रेस की मुस्लिम-तुष्टीकरण की नीति से असंतुष्ट होकर उन्होंने उसे छोड़ दिया।

सन् 1939 ई. में अमरवीर वी.डी. सावरकर काले पानी की सजा भुगत कर अंडमान से कलकत्ता आए। वहाँ अपने स्वागत में आयोजित एक विशाल सभा को उन्होंने सम्बोधित किया। उस

अवसर पर भाई परमानंद और अमरवीर सावरकर के भाषणों को सुनकर महंतजी अत्याधिक प्रभावित हुए। उन्होंने उसी समय हिन्दू महासभा की सदस्यता स्वीकार कर ली।

सन् 1938-39 में गोरखपुर का वातावरण भी साम्प्रदायिक भावनाओं के कारण विशाक्त हो गया था। इस अवसर पर हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म की रक्षा का संकल्प लेकर महंतजी हिन्दू जाति के अग्रदूत के रूप में सामने आए।

गोरखपुर में साम्प्रदायिक प्रतिद्वन्दिता की भावना का जन्म सर्वप्रथम 1916 में हुआ था। इस वर्ष हिन्दुओं का दशहरा और मुसलमानों का मुहर्रम संयोगवश एक साथ ही पड़ गया। काजी फिरासत हुसेन मुमलमानों के नेता थे। खजांची चौराहे पर नवें दिन की ताजिया बैठाई जाती थी। उस दिन वहाँ बड़ी चहल-पहल थी। अलीनगर की रामलीला का जुलूस भी उसी रास्ते निकलता था। बड़े-बड़े रस्सों में बंधो रथ को खींचते हुए हिन्दू लोग जब मानसरोवर से खजांची के चौराहे पर पहुँचे तो काजी फिरासत हुसेन ने जुलूस को रूकवाना चाहा। अधिकारियों के हस्तक्षेप से जुलूस शान्तिपूर्वक निकल गया किंतु हिन्दू मुसलमानों के हृदय में पारस्परिक विभेद की गांठ दृढ़ हो गयी। सन् 1916 के पश्चात नगर में हिन्दू-मुस्लिम विद्वेश की आग निरंतर सुलगती गई।

गोरक्षनाथ मंदिर की पूर्व दिशा में एक प्रतिष्ठित मुस्लिम रईस जाहिद बाबू ने जाहिदाबाद के नाम से एक मुहल्ला ही बसा दिया। वहाँ नित्य गौकशी हुआ करती थी। मुस्लिम लीग कार्यालय से मुसलमानों का एक जुलूस निकलता था। जुलूस में प्रश्न होता था कि कहाँ जाना है? उत्तर मिलता जाहिदाबाद। क्या करने? गौकशी करने। इस प्रकार के जुलूसों ने हिन्दू-मुस्लिम विद्वेश की आग में आहुति का काम किया। मन् 1935 तक गोरखपुर में हिन्दू-मुस्लिम विद्वेश की भावना बहुत बढ़ गई थी। सन् 1937 में स्थिति ऐसी हो गई थी कि महंत जी को सत्याग्रह करना पड़ा। इन दो वर्षों का ममय गोरखपुर के लिए घोर साम्प्रदायिक आतंक का समय था। महंतजी ने बड़े साहस, धैर्य और बुद्धिमता से हिन्दू जाति की रक्षा की।

हिन्दू महासभा की सदस्यता ग्रहण करते ही महंतजी सभा के प्रमुख नेताओं के वर्ग में समादृत होने लगे। कांग्रेस में रहते हुए भी वे हिन्दू हितों की रक्षा के लिए तत्पर रहते थे। सन् 1934 के पूर्व उन्होंने कांग्रेस की उन नीतियों का विरोध किया था, जिनसे हिन्दू जाति और धर्म के ऊपर किसी प्रकार के आघात की आशंका थी। सन् 1931 में कांग्रेस ने भारतीय जनगणना का विरोध किया था। महंतजी ने कांग्रेस की उस अदूरदर्षिता की निंदा की और देश में हिन्दुओं की संख्या को कम दिखाये जाने से रोका। सन् 1935 में कांग्रेस ने साइमन कमीशन का विरोध किया। सन् 1945 में क्रिप्समिशन का भी बहिष्कार किया। महंतजी ने दोनों अवसरों पर कांग्रेस की नीतियों का खुलकर विरोध किया। देश के विभाजन के अवसर पर महंत जी की बातें अधिक दूरदर्षितापूर्ण सिद्ध हुई।

हिन्दू महासभा के मंच से महंतजी को मुक्त रूप से कार्य करने का अवसर मिला। एक वर्ष

पश्चात ही उन्होंने में अखिल भारत हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशन में भाग लिया। उस अवसर पर उनके भाषणों की सबने सराहना की। उन्होंने एक साथ ही धार्मिक और राजनीतिक कार्यों को अपने हाथ में लिया और कुशलतापूर्वक उनका निर्वाह किया।

वे आगरा प्रांतीय हिन्दू महासभा के महामंत्री रहे। संयुक्त प्रांतीय हिन्दू महासभा के मंत्री और फिर अध्यक्ष चुने गये। सन् 1939 में डॉ. मुन्जे की अध्यक्षता में उन्होंने कमिश्नरी हिन्दू महासभा के अधिवेशन का आयोजन किया। इसी वर्ष उन्होंने अखिल भारतवर्षीय अवधूत वेश बारह पंथ योगी महासभा की स्थापना की। अनेक वर्षों तक वे उसके अध्यक्ष रहे। साधु सम्प्रदाय को उन्होंने नवीन दिशा प्रदान की। निष्क्रियता और ऐकान्तिकता के स्थान पर उन्होंने समाज सापेक्ष्य कार्यों की ओर प्रेरित किया। उन्होंने समस्त हिन्दू मंदिरों और मठों को धीरे-धीरे संगठित किया और उनमे एकसूत्रता लाने का सफल प्रयास किया।

सन् 1939 में दिल्ली शिव मंदिर सत्याग्रह में उन्होंने अपने गुरु भाई बाबा नौमीनाथ के नेतृत्व मे सत्याग्रहियों का जत्था भेजा था। मुल्तान की जेल में पर्याप्त समय तक सजा भुगतने के बाद यह जत्था मुक्त हुआ। इस वर्ष फौज में मुसलमानों की भर्ती पर अधिक जोर दिया जा रहा था। मुहम्मद अली जिन्ना यह चाहते थे कि फौज में मुसलमानों की संख्या अधिक हो जाये। महंत जी ने इस नीति का सख्त विरोध किया। फलत: हिन्दुओं की भी भर्ती होती रही।

सन् 1942 में ब्रिटिश शासन की दृष्टि पहले से ही महंतजी पर लगी हुई थी। सन् 1942 में महात्मा गाँधी ने भारत छोड़ो आंदोलन का नेतृत्व किया। समूचा राष्ट्र विदेशी शासन सत्ता और विदेशी सामग्रियों के बहिष्कार के लिए उतावला हो रहा था। महंतजी को उस अवसर पर मुक्त न रहने देने के लिए नौकरशाही की ओर से उन पर अनेक आरोप लगाये गये। कहा गया कि नेपाल में राणा विरोधी आंदोलन के वही सूत्रधार हैं। यह भी कहा गया कि वे जर्मनी और जापान को अंग्रेजों के विरुद्ध मदद देते हैं। महंतजी के विरुद्ध वारंट निकाला गया। उस समय मि. यंग डी.आई.जी. के पद पर कार्य कर रहे थे। गोरखपुर में मि. वाडेल पुलिस अधीक्षक थे। यंग साहब हाकी के मैदान में महंतजी के साथ खेल चुके थे और उनके विचारों से पूर्णतया अवगत थे। उन्होंने अपने उत्तरदायित्व के आधार पर महंतजी के विरुद्ध भेजे गये वारंट को वापस करा दिया था।

सन् 1944 में महंतजी ने प्रांतीय हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशन का आयोजन गोरखपुर में किया। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने इस अधिवेशन को सम्बोधित किया था। सन् 1947 में भारत के विभाजन का प्रश्न भारतीय नेताओं के सम्मुख था। राजगोपालाचार्य ने विभाजन के संबंध में अपना सुझाव प्रस्तुत किया जो सी आर फारमूला के नाम से प्रसिद्ध है। महंतजी ने इस फारमूले का डटकर विरोध किया। उन्होंने गोरखपुर में इसी वर्ष अखिल भारतवर्षीय हिन्दू महासभा का अधिवेशन बुलाया। उस समय महंतजी आगरा प्रांतीय हिन्दू महासभा के अध्यक्ष थे। धर्मवीर भोपटकर की अध्यक्षता में

होने वाला यह अधिवेशन राजनीतिक और धार्मिक दोनो दृष्टियों से महत्वपूर्ण था। उस समय भारत के विभाजन का कुचक्र तेजी से चल रहा था। नोवाखाली, त्रिपुरा, कोमिला आदि स्थानों पर हिन्दुओं के ऊपर संगठित ढंग से आघात किये गये थे। महंतजी के प्रयास से इस अधिवेशन में अखण्ड भारत आंदोलन का शक्तिपूर्वक समर्थन किया गया था। दूसरी ओर परिस्थितियों को देखते हुए समस्त हिन्दू जाति को अपनी कट्टरता और रूढ़िवादिता को त्यागकर उदार होने की अपील की गई। इस अधिवेशन का तत्काल प्रभाव पड़ा। पाकिस्तान निर्माण का कार्य 1946 में ही हो जाने वाला था। वह कम से कम एक वर्ष के लिए तो रूक ही गया।

ब्रिटिश नौकरशाही ने मुस्लिम लीग के नेताओं को पहले से ही प्रोत्साहन दे रखा था। उन्होंने मुसलमानों को महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर नियुक्त कर रखा था। ये मुसलमान अधिकारी विभाजन के अवसर पर बहुत घातक सिद्ध होंगे, यह सोचकर महंतजी ने इसका खुलकर विरोध किया। उत्तर प्रदेश में उस समय 70 प्रतिशत प्रशासनिक पदों पर मुसलमान ही थे। पुलिस और गुप्तचर विभाग उन्हीं से भरा था। इन तत्वों के भीतर छिपी हुई कुटिल राजनीति को परख कर महंतजी ने 9 अगस्त 1947 को लखनऊ में हिन्दुओं की 10 सूत्रिय मांगों को लेकर सीधी कार्यवाही (Direct Action) का आंदोलन छेड़ दिया। वे गिरफ्तार कर लिए गये। उनके साथियों को भी जेल में डाल दिया गया। इसके पश्चात ही भारत विभाजन की घोषणा की जा सकी।

1946 के अखिल भारतीय हिन्दू महासभा अधिवेशन के पश्चात् महंतजी और श्री लक्ष्मी शंकर वर्मा हिन्दू महासभा की कार्यकारिणी समिति के सदस्य चुन लिए गये। महंतजी ने समस्त भारत का पर्यटन किया। उस समय और इसके पश्चात् भी यथावसर कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली आदि स्थानों पर जाकर उन्होंने विभिन्न सभाओं में भाषण किया। इन सभी स्थानों पर वे सर्वाधिक पूज्य और सम्मानित हुए। 1946 में उन्होंने लोकसभा की सदस्यता के लिये श्री श्रीप्रकाश के विरुद्ध परचा दाखिल किया था। किन्तु दुर्भाग्यपूर्ण परचा ही खारिज हो गया।

भारत विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान को अधिक से अधिक सुविधाएँ देने के लिए गाँधीजी ने सात सूत्रीय मांगो को लेकर अनशन प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपये देने का आग्रह किया। भारतीय नवयुवकों का वर्ग इसे सहन न कर सका। नाथूराम गोडसे ने उतावली में गाँधीजी की हत्या कर दी। गोडसे ने हत्या का समूचा उत्तरदायित्व स्वयं ले लिया था, किन्तु तत्कालीन सरकार ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिन्दू महासभा के प्रभावशाली नेताओं की धरपकड़ प्रारम्भ कर दी। महंतजी पर आरोप लगाया गया कि उन्हीं की पिस्तोल से गोडसे ने गाँधीजी की हत्या की थी। उन्हे नजरबंद कर दिया गया था और 19 महीने तक वे बंदी जीवन व्यतीत करते रहे। इस अवसर पर मठ की समस्त चल और अचल सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई थी किंतु महंतजी न्यायालय के द्वारा निर्दोष सिद्ध हुए।

गाँधी हत्या काण्ड के तुरंत बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। समूचे देश में हिन्दू महासभा विरोधी प्रचार कार्य चल रहा था। इसी समय कलकत्ते में हिन्दू महासभा का अधिवेशन आयोजित किया गया था। अनेक लोगों ने इस अवसर पर बहाने बनाकर अधिवेशन में भाग नहीं लिया किंतु डाक्टर नारायण भास्कर खरे, वीर सावरकर, प्रो. देशपाण्डेय तथा महंतजी ने उसमे भाग लिया। महंतजी ने उसी अवसर पर हिन्दू युवक सभा का उद्घाटन किया।

गाँधी हत्याकाण्ड के संबंध में लखनऊ से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र ''नवजीवन' ने महंत जी के ऊपर खूब कीचड़ उछाला। आरोप सिद्ध न होने पर महंत जी कारावास से मुक्त हुए। उन्होंने ''नवजीवन' के ऊपर एक लाख रुपये की मान-हानि का दावा कर दिया। सिविल जज के न्यायालय से नवजीवन के विरुद्ध व्यय सहित एक लाख रुपये की डिग्री हो गई। किंतु ''नवजीवन'' के सम्पादकों और व्यवस्थापकों ने महंत जी से व्यक्तिगत रूप से मिलकर तथा समाचार पत्रों के माध्यम से जब क्षमा मांगी तो उदार हृदय महंत जी ने उसे क्षमा कर दिया। नवजीवन को नया जीवन मिल गया। अन्यथा उसके दिवाले की स्थिति आ जाती।

सन् 1948 के पश्चात् महंतजी ने अपना जीवन राष्ट्र-हित के कार्यों में लगा दिया नेहरू-लियाकत पैक्ट के द्वारा हिन्दू हितों पर आघात होते देखकर उन्होंने उसका विरोध किया। शेख अब्दुल्ला द्वारा काश्मीर के अलग राज्य की मांग को उन्होंने राष्ट्रद्रोही कार्य कहा। गोवा, दमन, दीव की स्वाधीनता का उन्होंने पूर्ण समर्थन किया और स्वाधीनता संग्राम को उग्र बनाने के लिए उन्होंने स्वयंसेवकों का जत्था भेजा। गोरक्षा आंदोलन का देशव्यापी प्रचार किया। अयोध्या में राम जन्म भूमि के उद्धार कार्य में उन्होंने हार्दिक सहयोग प्रदान किया। सन् 1955-56 में मास्टर तारासिंह ने पृथकपंजाबी सूबे की मांग की। इस मांग को लेकर उन्होंने आमरण अनशन भी प्रारम्भ कर दिया। महंत दिग्विजयनाथ राष्ट्रीय एकता को किसी भी मूल्य पर खंडित होते नहीं देखना चाहते थे। उन्होंने मास्टर तारा सिंह से भेंट की। परिस्थिति की गंभीरता और उसके भावी परिणाम से परिचित कराया। अन्ततः मास्टर तारा सिंह ने अनशन त्याग दिया। इससे ब्रह्मलीन महंतजी की निष्ठा, दूरदर्शिता, सूझबूझ एवं राजनीतिक प्रभाव का परिचय प्राप्त होता है।

11 मई सन् 1957 में दिल्ली में प्रथम स्वाधीनता संग्राम का शताब्दी समारोह मनाया गया। इस समारोह की अध्यक्षता स्वातंत्र्य सेनानी वीर सावरकर जी ने की थी। भारत की स्वतंत्रता के लिए आजीवन संघर्षशील महंतजी ने इस समारोह में अपना पूरा सहयोग प्रदान किया था। समारोह की सफलता का श्रेय चाहे जो ले किंतु समारोह की सच्ची भावना के प्रतीक दो ही नेता थे, वीर सावरकर और महंत दिग्विजयनाथजी।

सन् 1959 में काशी विश्वनाथ मंदिर उत्तर आंदोलन में उन्होंने भाग लिया। दफा 144 को भंग करने के आरोप में उनके अनेक सहकर्मी गिरफ्तार हो गये। महंतजी ने राज्यपाल को पत्र

लिखकर मंदिर के उत्तर के औचित्य पर बल दिया। भारत गणराज्य की स्वदेशी सरकार हिन्दू कोड बिल, हिन्दू विवाह और तलाक तथा हिन्दू सम्पत्ति उत्तराधिकार अधिनियम जैसे कानूनों का निर्माण कर हिन्दू सत्वों पर कुठाराघात कर रही थी। महंतजी ने इन बिलों का विरोध किया। सन् 1960 में हरिद्वार में अखिल भारतीय षट्दर्शन साधु सम्मेलन के अध्यक्ष पद से उन्होंने इन बिलों का विरोध किया और अपने ओजस्वी भाषणों से उनके विरुद्ध जनमत जागृत किया।

बाह्य और आंतरिक दोनों दृष्टियों से सन् 1962 का वर्ष देश के लिए घोर संकट का समय था। उस समय तक पंचशील के सिद्धांतों पर आधारित हिन्दी- चीनी मैत्री का संबंध टूट चुका था। चीन ने लगभग 12 सहस्त्र वर्गमील भारतीय भूमि पर अधिकार कर लिया था। युद्ध की आशंका बलवती होती जा रही थी। इधर देश में बढ़ती हुई मुस्लिम साम्प्रदायिकता की भावना नयी दिशा की ओर संकेत कर रही थी। केरल में मुस्लिम लीग की स्थापना हो चुकी थी। पाकिस्तान के संकेतों पर देश में ही पंचमार्गियों का एक बहुत बड़ा वर्ग प्रस्तुत हो रहा था। सन् 1961 में अखिल भारतीय स्तर पर मुसलमानों को संगठित करने का प्रयास हुआ था। दिल्ली में उनकी एक विशाल सभा हुई। भारत की किसी भी राजनीतिक संस्था ने इस साम्प्रदायिक सम्मेलन के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा। महंतजी ने उसी समय यह आशंका व्यक्त की कि यह मुस्लिम सम्मेलन मुस्लिम लीग के संगठन और देश के पुनर्विभाजन की नींव को मजबूत करने वाला है। उन्होंने उसका खुलकर विरोध किया।

अक्टूबर 1961 में महंतजी ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विरोध करने के लिए अखिल भारतीय हिन्दू सम्मेलन का आयोजन दिल्ली में किया। सम्मेलन की अध्यक्षता कलकत्ता उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति और बंगाल विधान परिषद के सदस्य डॉ. चिंतामणि देशमुख ने भी भाग लिया था। जनरल करियप्पा ने भी इस सम्मेलन में उपस्थित होकर अपने राष्ट्र प्रेम का परिचय दिया था। महंतजी ने उस सम्मेलन को मुस्लिम साम्प्रदायिकता के बढ़ते हुए रोग के लिए एक मात्र औषधि कहा था।

हिन्दू महासभा ने सन् 1960 में महंतजी को महासभा का अध्यक्ष निर्वाचित किया था। वे हिन्दू जाति के राष्ट्रपति कहे गये। देश की बिगड़ती हुई स्थिति को देखते हुये महंतजी ने हिन्दू राष्ट्रपति के अनुरूप आचरण करके हिन्दू जाति और धर्म की रक्षा का अथक प्रयास किया। अखिल भारतवर्षीय हिन्दू महासभा के अधिवेशन में उन्होंने अपने समस्त आलोचकों और विरोधियों को जो उत्तर दिया था। वह ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा ही महत्वपूर्ण था।

सन् 1965 में महंतजी ने अखिल विश्व हिंदू धर्म सम्मेलन का आयोजन दिल्ली में किया। इस सम्मेलन मे विभिन देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। तीन जगतगुरु शंकराचार्यों की उपस्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी। डॉ. राधा कृष्णन ने भी सम्मेलन को सम्बोधित किया था।

सन् 1967 में महंतजी ने गोरखपुर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से हिन्दू महासभा के प्रत्याशी के रूप में कांग्रेस के प्रत्याशी को पराजित कर लोकसभा का चुनाव जीता। लोकसभा में वे हिन्दू महासभा के एक मात्र सदस्य थे। अकेले होते हुए भी लोकसभा के प्रत्येक विवाद में अपनी वाग्मिता, चातुर्य एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व के कारण उन्होंने सदैव सबका ध्यान आकर्षित किया। यों तो उनकी हिन्दू राष्ट्रवादी विचारधारा के कारण मुसलमानों और साम्यवादी सदस्यों में उत्तेजना का वातावरण उत्पन्न हो जाता था तथापि वे अपने विचारों को निर्भीकता के साथ अभिव्यक्त करने से चूकते न थे। नक्सलियों की समस्या पर उन्होंने सदैव कम्युनिस्टों को ललकारा। परिवार नियोजन के प्रश्न पर हिन्दू हितों की हमेशा वकालत की। गोरक्षा अभियान का अखिल भारतवर्षीय स्तर पर नेतृत्व किया। पूर्वोत्तर रेलवे की छोटी लाइन को बड़ी लाइन के रूप में परिवर्तित करने की स्वीकृति उन्हीं के प्रयास से मिली।

गोरखनाथ मंदिर के महंत के रूप में महंत दिग्विजयनाथ जी ने नाथ पंथी मंदिरों और मठों को संगठित करने का प्रयास किया। इन मठों में रहने वाले योगियों को उन्होंने उनके सामाजिक दायित्व से परिचित कराया। नाथ पंथ संबंधी साहित्य के उद्धार का भी उन्होंने सम्यक् प्रयास किया। उन्होंने प्रामाणिक विद्वानों से अनेक ग्रन्थों का प्रणयन कराया। महंत दिग्विजय नाथ ट्रस्ट और गोरखनाथ मंदिर की ओर से अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। 'फिलासफी आफ गोरखनाथ' पुस्तक की सराहना महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज एवं पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रभृति विद्वानों ने की है। इस बहुप्रशंसित पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी गोरखदर्शन के नाम मे प्रकाशित हो चुका है।

गोरखपुर जैसे पिछड़े जनपद की जनता को केवल धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक कार्यों के द्वारा प्रगति के पथ पर लाना संभव न था। उन्हें शिक्षित तथा प्रबुद्ध करना नितान्त आवश्यक था। इसीलिए गद्दी पर बैठते ही महंत दिग्विजयनाथजी से शिक्षा के प्रसार पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने सर्वप्रथम 'गुडलक स्कूल' के नाम से एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की जो बक्शीपुर मे एक किराये के भवन में चलने लगा तथा श्री यदुनाथ चक्रवर्ती उसके प्रथम प्रधानाचार्य थे। कालांतर में इसी विद्यालय से दो विद्यालयों की स्थापना हुई। आर्य समाज मंदिर के संरक्षण में डी.ए.वी. कालेज खुला और महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् के संरक्षण में महाराणा प्रताप इन्टर कालेज की स्थापना हुई। महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् की स्थापना महंतजी ने गोरखपुर के शैक्षणिक जगत् में एक क्रांति सी पैदा कर दी। इस परिषद् के तत्वावधान में प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा प्रदान करने तक की व्यवस्था हुई प्रारम्भिक शिक्षा के लिए महाराणा प्रताप शिशु शिक्षा विहार, रामदत्तपुर में और दूसरा सिविल लाइन्स में खोला गया। हाई स्कूल और इंटरमीडिएट की शिक्षा के लिए महाराणा प्रताप इण्टर कालेज की स्थापना हुई, जो इस जनपद की प्रमुख शैक्षणिक संस्था है। इसी विद्यालय के प्रांगण में महाराणा प्रताप डिग्री कालेज की स्थापना हुई। महिलाओं के लिए अलग से महाराणा प्रताप महिला डिग्री कालेज खुला। गोरखपुर में विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर

उसकी प्रगति और उन्नति में सहयोग देने के विचार से महंतजी ने इन दोनों डिग्री कालेजों को विद्यालय भवन और उसके समस्त उपकरणों के साथ विश्वविद्यालय को दान कर दिया। गोरखपुर की किसी अन्य संस्था ने कभी भी इस प्रकार का दान नहीं किया होगा। वस्तुतः महंतजी संस्थाओं के स्वामित्व के लोभी न थे। उनका उद्देश्य महान था। वे किसी भी मूल्य पर गोरखपुर में विश्वविद्यालयी शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे। इसीलिए इतनी बड़ी सम्पत्ति का दान करते हुए उन्हें तनिक भी हिचक न हुई। विश्वविद्यालय स्थापना समिति के वे वरिष्ठ उपाध्यक्ष थे। उसकी स्थापना में उन्होंने तन, मन और धन से सहयोग दिया।

ओवरी चौक में इन्हीं के नाम से दिग्विजयनाथ हाईस्कूल की स्थापना हुई। भारतीय धर्म और संस्कृति का प्राचीन पद्धति से अध्ययन करने के लिए उन्होंने मंदिर परिसर में ही श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना की। दिवंगत होने के कुछ दिनों पूर्व उन्होंने दिग्विजयनाथ डिग्री कालेज की स्थापना की। उन्होंने एक कृषि महाविद्यालय की स्थापना का प्रयास भी किया था। किंतु आकस्मिक रूप से इह लीला समाप्त हो जाने के कारण यह संकल्प पूर्ण न हो सका।

पौरस्त्य एवं पाश्चात्य ढंग की महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा के साथ महंतजी प्रौद्योगिक शिक्षा की भी व्यवस्था करना चाहते थे। उन्होंने महाराणा प्रताप पालिटेकनीक इन्स्टीच्यूट की स्थापना की। पूर्ण विकसित एवं पल्लवित करके उन्होंने इसे सरकारी संरक्षण में दे दिया। उन्होंने एक इंजीनियरिंग कालेज खोलने की योजना भी बनाई थी। विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ उसी के तत्वावधान में उन्होंने इंजीनियरींग कालेज को विकसित करने में सहयोग दिया। महंतजी ने गोरखपुर में मेडिकल कालेज खोलने का भी प्रयास किया था। उसी प्रयास के फलस्वरूप यहाँ मेडिकल कालेज खोलने की घोषणा हुई। महंतजी ने शिक्षा के विकास का बहुविध प्रयास किया। इस क्षेत्र में उनकी उपलब्धियाँ सदैव स्मरणीय रहेंगी।

महंतजी सन् 1963 से ही अस्वस्थ रहने लगे थें इस समय उनकी अवस्था 70 वर्ष की थी। गोरखपुर के उच्चकोटि के डाक्टरों ने उनका इलाज किया। 1966 में आल इंडिया इंस्टीच्यूट आफ मेडिकल साइंस, नई दिल्ली में दवा कराई गयी। लोकसभा का सदस्य हो जाने पर दिल्ली में निरंतर डाक्टरों से सम्पर्क स्थापित किया। ऐसी अवस्था में भी विवादात्मक प्रश्नों पर विशेष रूप से हिन्दू हितों से सबंधित प्रश्नों पर अपने स्वास्थ्य का ध्यान न रखते हुए अपने आदर्शों को चरितार्थ करने के लिए वे निरंतर सक्रिय रहे।

सितम्बर 1969 के अन्तिम सप्ताह में महंतजी पुनः अस्वस्थ हो गये। डाक्टरों ने पूर्ण निष्ठा के साथ उनकी दवा की। 26 से 28 सितम्बर तक वे दवा के बल पर मृत्यु से जूझते रहे। अनेक बार दिल के दौरे पड़े, किन्तु उनका मस्तिष्क उस समय भी रबात सम्मेलन और मुस्लिम साम्प्रदायिकता का समाधान ढूँढने में ही लगा रहा था। 28 सितम्बर को अपराह्न में उनकी स्थिति

बिगड़ने लगी और उसी दिन 5 बजकर 30 मिनट पर उन्होंने चिर समाधि ले ली।

महंतजी की मृत्यु का समाचार विद्युत गति से चहुँ ओर में फैल गया। अंतिम दर्शन की आकांक्षा से बड़ी संख्या में लोग गोरक्षनाथ मंदिर के प्रांगण में एकत्र होने लगे। श्रद्धालुओं की सुविधा के लिए स्वर्गीय महंतजी के पार्थिव शरीर को 24 घन्टे के लिए गोरक्षनाथ मंदिर के प्रांगण में दर्शनार्थ रखा गया। दूसरे दिन लगभग 15 लाख व्यक्तियों ने उस महामानव के दर्शन किये और उनके प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किये।

देश के कोने-कोने से लोग दर्शनार्थ दूसरे दिन तक गोरखपुर में उपस्थित हो गये। संवेदना के तारों और पत्रों की तो कोई गिनती ही नहीं थी। भारत के लगभग समस्त समाचार पत्रों ने उनकी मृत्यु के समाचारों को प्रथम पृष्ठ पर स्थान दिया और अपने अग्रलेखों के द्वारा उन्हें श्रद्धांजलियाँ अर्पित की। वस्तुतः महंतजी की मृत्यु इस देश के लिए एक राष्ट्रीय घटना थी। श्री महंतजी हिन्दुओं लिए आधुनिक युग के महाराणा प्रताप थे। उनमें ब्रह्मबल और क्षात्रबल का अद्‌भुत समन्वय था। उनकी स्मृतियाँ यावत् चन्द्रदिवाकारौंसदृश जन-मानस पर छाईं रहेंगी।

राष्ट्र सन्त
महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

प्रदीप कुमार राव*

भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता है आत्मशुद्धि अर्थात् स्वयं शुद्धीकरण की। इसी विशेषता के परिणामस्वरूप वैदिक धर्म में जब कुछ विकार आया तो महात्मा बुद्ध पैदा हुए। जब बौद्ध धर्म में विकार उत्पन्न हुआ तो गुरु श्री गोरक्षनाथ तथा शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ। इस्लामी शासन में जब विकृतियों की सम्भावनाएँ बढ़ीं तो भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। इसी शृंखला को बनाये रखने वाले महापुरुषों की जो परम्परा स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, बालगंगाधर तिलक, वीर विनायक दामोदर सावरकर, महामना मदन मोहन मालवीय, डॉ. केशवबलिराम हेडगेवार, सरदार वल्लभ भाई पटेल, माधव सदाशिव गोलवलकर गुरुजी, महन्त दिग्विजयनाथ तक अनवरत दिखाई देती है, गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज उसी परम्परा के वर्तमान में जाज्वल्य नक्षत्र हैं। गोरक्षपीठ के पीठाधीश्वर के रूप में अवेद्यनाथ जी महाराज ने जिस गुरु का उत्तराधिकार प्राप्त किया वे दिग्विजयनाथ जी महाराज हिन्दुत्व और राष्ट्रीयता की वैचारिक विरासत की एक यशस्वी परम्परा सौंपकर ब्रह्मलीन हुए थे। महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज को अपने गुरुदेव से जो विरासत मिली उसका अन्दाजा इन तथ्यों से लगाया जा सकता है कि महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज गुलाम भारत में देश की आजादी के लिए कांग्रेस में रहते हुए भी हिन्दू हितों की रक्षा के लिए तत्पर रहते थे। और उन्होंने सदैव कांग्रेस की उन नीतियों का विरोध किया, जिनसे हिन्दू जाति और धर्म के ऊपर किसी प्रकार के आघात की आशंका थी। महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस जब मुस्लिम तुष्टीकरण के भस्मासुरी मार्ग पर चल पड़ी तो महन्त दिग्विजयनाथ जी ने कांग्रेस छोड़ दी और हिन्दू महासभा के संगठनकर्ताओं की अग्रिम पंक्ति के सिपाही बन गये। 1939 ई. में उन्होंने अखिल भारतवर्षीय अवधूत वेष बारह पंथ योगी महासभा की स्थापना की तथा साधु सम्प्रदाय को एक नवीन दिशा प्रदान की एवं निष्क्रियता और एकान्तिकता के स्थान पर समाज-सापेक्ष कार्यों की ओर प्रेरित किया। भारत की संसद में महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज ने गरजते हुए कहा था- "जब तक धर्मप्राण भारत की पवित्र भूमि पर गोमाता के रक्त की एक बूँद भी गिरती रहेगी; तब तक देश अशान्ति की भट्ठी में जलता रहेगा। मैं तो हिन्दू धर्म का वकील हूँ, संन्यासी होते हुए राजनीति में केवल इसलिए उतरा हूँ, क्योंकि हिन्दू संस्कृति और सभ्यता पर आज चारों ओर से प्रहार हो रहे हैं।"

*प्राचार्य, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

वे कहते थे राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। किसी भूखण्ड में निवास करने वाले उस समूह को ही राष्ट्र कहा जाता है, जो भू-खण्ड की संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, इतिहास आदि को मानता हुआ परस्पर एकता की अनुभूति रखता हो। अत: भारत हिन्दू राष्ट्र है, ऐसा हिन्दू राष्ट्र जहाँ किसी पर अत्याचार नहीं होगा। इस हिन्दू राष्ट्र में रहने वाले प्रत्येक निवासी के साथ न्याय होगा। प्रत्येक नागरिक को अपनी उपासना पद्धति अपनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी, परन्तु राष्ट्र के प्रत्येक निवासी को यहाँ की संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, इतिहास, साहित्य और राष्ट्रीय महापुरुषों को सम्मान की दृष्टि से देखना होगा। वस्तुत: हिन्दुत्व ही वह शक्ति है जो विस्तृत भारतीय भूभाग वाले विभिन्न भाषा-भाषी करोड़ों जनता को एक सूत्र में बाँध सकती है। इस वैचारिक अधिष्ठान पर निर्मित विराट् व्यक्तित्व के धनी गुरु की भौतिक-आध्यात्मिक विरासत को महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने न केवल सँभाला, अपितु गोरक्षपीठ को कई नये आयामों से भी जोड़ा। गोरक्षपीठ के पीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के बहुआयामी विराट् व्यक्तित्व को शब्दों की सीमा में बाँध पाना असम्भव है तथापि विविध स्रोतों से ज्ञात किंचित तथ्यों के आधार पर उनके व्यक्तित्व को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

गोरक्षपीठ के पीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज का बचपन का नाम कृपाल सिंह विष्ट था। आपके पिता श्री रायसिंह विष्ट हिमालय की गोद में बसे देवभूमि के पौड़ी गढ़वाल के काण्डी ग्राम के निवासी थे। 18 मई, 1919 को काण्डी ग्राम में जन्मे बालक को कौन जानता था कि एक दिन वह बालक देश-विदेश के हिन्दू धर्माचार्यों का नेतृत्व करेगा और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रति पूर्णत: समर्पित होकर राष्ट्रीय एकता-अखण्डता के उस यज्ञ का आचार्य बनेगा जिसकी प्रज्वलित अग्निशिखाओं से हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों, विशेषकर छुआछूत को भस्म करने की प्रेरणा एवं सन्देश प्राप्त होगा। किन्तु ईश्वर ने उन्हें भारत भूमि पर इसी महान कार्य हेतु भेजा था सो उसी अनुरूप परिस्थितियाँ करवट लेने लगीं।

महन्त जी से जब उनके बचपन की स्मृतियों पर चर्चा की गयी तो अपने चिर-परिचित दिव्य मुस्कान के साथ वे बोल पड़े कि संन्यासी का बचपन नहीं होता। दीक्षा के साथ ही पिछले जीवन से उसका नाता टूट जाता है और वह नया जीवन प्राप्त करता है। किन्तु अनेक बार के आग्रह पर एक क्षण मौन के पश्चात् महन्त जी अपने बचपन की स्मृतियों में लौटते हुए बताते हैं, "मुझे अपनी माँ का नाम याद नहीं है क्योंकि जब मैं बहुत छोटा था मेरे माता-पिता की अकाल मृत्यु हो गयी। मैं दादी की गोद में पल रहा था। उच्चतर माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा पूर्ण होते ही दादी का भी स्वर्गवास हो गया। परिणामत: मेरा मन इस संसार के प्रति उदासीन होता गया तथा वैराग्य का भाव मन में घर करता गया।"

महन्त जी कहते हैं कि इसी वैराग्य एवं विरक्ति की भावनानुभूति में गृहत्याग के साथ ऋषिकेश में संन्यासियों का साथ मिला। सत्संग से भारतीय धर्म-दर्शन में अध्ययन की रुचि विकसित हुई। उस

समय वाराणसी भारतीय धर्म दर्शन के अध्ययन का प्रमुख केन्द्र था। मैंने काशी में संस्कृत भाषा के अध्ययन के साथ भारतीय धर्म-दर्शन एवं योग-दर्शन का अध्ययन एवं अनुशीलन किया।

महन्त जी से जब यह जानना चाहा कि गृह त्याग के बाद वे कितनी बार अपने पैतृक गाँव गये, महन्त जी का जवाब विस्मयकारी था। उनके इस प्रश्न के उत्तर में ही बाल्यावस्था से ही महन्त जी की निवृत्तिमार्गी प्रवृत्ति का पता चल जाता है। संन्यासी होने के बाद वे एक बार अपने पितृगृह गये। वह भी अपने नैतिक एवं धार्मिक कर्तव्यों की पूर्ति हेतु। महन्त जी बताते हैं-''मेरे पिताजी तीन भाई थे। मैं अपने पिताजी का इकलौता पुत्र था। गृहत्याग एवं संन्यास के दौरान एक बार मेरे एक चाचा ऋषिकेश आये थे। दूसरे चाचा के मन में यह भ्रम उत्पन्न हो गया कि मैं अपनी पूरी सम्पत्ति एक ही चाचा को न लिख दूँ। मुझे अपने हिस्से की पूरी पैतृक सम्पत्ति दोनों चाचा को बराबर देनी थी, अत: मैं इसी कार्य हेतु गया। न्यायालय में मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित होकर मैंने अपनी पैतृक सम्पति दोनों चाचा के नाम बराबर-बराबर कर देने की अपनी संस्तुति दी तो मजिस्ट्रेट ने कहा कि आप अभी किशोर हैं, संन्यामी जीवन बड़ा कष्टमय होता है, कल पुन: गृहस्थ जीवन में लौटने की आपकी इच्छा हो सकती है, अत: अपनी सम्पत्ति देने से पूर्व एक बार और सोच लीजिए।" महन्त जी ने उस समय मजिस्ट्रेट को जो उत्तर दिया वह इस बात का स्पष्ट साक्ष्य है कि वे पूर्णत: संन्यासी स्वभाव प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने कहा- "मैं अतिशीघ्र इस सम्पत्ति से छुटकारा पाना चाहता हूँ ताकि संन्यास जीवन से विमुख होने की सम्भावना ही शेष न रहे।" महन्त जी के दृढ़ निश्चय एवं तेजस्वी मुखमण्डल की चमत्कृत आभा से निरुत्तर मजिस्ट्रेट ने इनकी सम्पत्ति दोनों चाचा के नाम स्थानान्तरित कर दी। इस प्रकार संन्यासी जीवन से पूर्व के अपने जीवन से पूर्णत: नाता तोड़कर धार्मिक-आध्यात्मिक दुनिया की ओर बढ़े उनके कदम फिर वापस नहीं मुड़े।

किशोरावस्था में ही महन्त जी ने कैलाश मानसरोवर की यात्रा की। यह यात्रा उनके संन्यासी जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव सिद्ध हुई। महन्त जी बताते हैं- "उत्तराखण्ड के बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री आदि तीर्थस्थलों की यात्रा और अनेक सन्त-महात्माओं से मिलकर अपनी धार्मिक-आध्यात्मिक एवं योग विषयक जिज्ञासाओं की पूर्ति हेतु बात-चीत तथा सत्संग हम संन्यासियों की जीवनचर्या थी। बदरीनाथ यात्रा के दौरान ही कैलाश-मानसरोवर जाने की इच्छा जागृत हुई। उस समय कैलाश-मानसरोवर का मार्ग और भी दुर्गम था। पैदल यात्रा में लगभग बीस दिन लगते थे। तीन अन्य संन्यासियों के साथ स्थान-नीति को पार कर हम मानसरोवर की यात्रा पर चल पड़े। हम लोगों को यह सूचना थी कि मीठा सत्तू कैलाश मानसरोवर के आसपास के निवासी पसन्द करते हैं और छीन लेते हैं; अत: हम लोग नमकीन सत्तू अपने पास रखे हुए थे। कैलाश-मानसरोवर की यात्रा से एक अलग तरह की आध्यात्मिक अनुभूति हुई और मन में ईश्वर के साथ-साथ भारत माता की इस विस्तारित भूमि के साथ रागात्मक एकता की अद्भुत अनुभूति हुई। कैलाश मानसरोवर की

यात्रा से वापस आते समय अल्मोड़ा से कुछ आगे बढ़े ही थे कि मुझे 'हैजा' हो गया। अत्यधिक उल्टी-दस्त के कारण मैं अचेत हो गया, मेरे साथ के संन्यासियों ने मान लिया कि अब मेरा जीवित बचना कठिन है, अत: वे मुझे उसी दशा में छोड़कर आगे चल दिये। दैवी कृपा से शाम को मुझे होश आया और शरीर में चेतना का संचार हुआ तो अपने आपको अकेला पाकर इस नश्वर संसार का मर्म समझा। मेरा मन विरक्ति और वेदना से भर गया। मैं अकेले धीरे-धीरे चलते हुए हरिद्वार पहुँचा। अब मुझे लगता है कि इस घटना के पीछे ईश्वर की इच्छा छिपी थी। शायद ईश्वर मुझे 'सच' का साक्षात्कार कराना चाहते थे। कैलाश-मानसरोवर की इस यात्रा से मेरा मन बहुत विचलित हो चुका था। मैं संसार की नश्वरता के साथ आत्मा की अमरता के ज्ञान की खोज में बेचैन था कि मेरी भेंट योगी निवृत्तिनाथ जी से हो गयी। योगी निवृत्तिनाथ जी के योग, आध्यात्मिक दर्शन तथा नाथपंथ के विचारों से मैं प्रभावित होता चला गया। योगी निवृत्तिनाथ जी का सान्निध्य मुझे अच्छा लगने लगा, उनके साथ रहकर योग-साधना में मुझे शान्ति मिलने लगी। नाथपंथ के सामाजिक समन्वयवादी दृष्टिकोण एवं हठयोग-साधना की ओर मैं खिचता चला गया। यद्यपि कि उस समय तक मैं नाथपंथ में दीक्षित नहीं हुआ था, मात्र ब्रह्मचारी संत था। निवृत्तिनाथ जी के साथ अभी योग-साधना में कुछ माह बीते ही थे कि प्रकृति ने वर्षा ऋतु का स्वागत किया। चूँकि ऋषिकेश में बरसात के मौसम में मच्छर बहुत लगते थे और अक्सर लोगों को मलेरिया हो जाया करता था; अत: संत-महात्मा वर्षा ऋतु में ऋषिकेश से अन्यत्र चले जाते थे। योगी निवृत्तिनाथ जी के साथ मैं भी बंगाल के मेमन सिंह जाने हेतु वर्षावास के लिए चल पड़ा। योगी निवृत्तिनाथ जी द्वारा मैं तत्कालीन गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के सामाजिक परिवर्तन, हिन्दुत्व पुनर्जागरण एवं राष्ट्रीयता के प्रति समर्पण एवं जनान्दोलनों के नेतृत्व की चर्चा सुना करता था। इस प्रकार महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के प्रति मेरे मन में श्रद्धा का बीज पहले से ही अंकुरित हो चुका था। मेमन सिंह जाते समय निवृत्तिनाथ जी गोरक्षनाथ मंदिर में एक रात विश्राम हेतु रुके। उन्होंने निवृत्तिनाथ जी का गोरक्षनाथ मंदिर में बड़े ही भावपूर्ण ढंग से आवभगत की। यह घटना 1940 की है। गोरक्षपीठ के पीठाधीश्वर महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज से मेरी यह पहली भेंट थी। दूसरे दिन जब हम बंगाल जाने हेतु तैयार हुए तो महन्त जी ने मुझसे अपना शिष्य एवं उत्तराधिकारी बनने की इच्छा व्यक्त की। किन्तु अभी मैं न तो नाथपंथ को ठीक से समझ पाया था और न ही किसी मठ का महन्त बनने के बारे में कुछ सोचा था। संन्यासी जीवन जीते हुए धर्म-दर्शन और योग-साधना के बारे में अभी मैं बहुत कुछ जानने की इच्छा का शमन नहीं कर सकता था, सो बड़ी विनम्रतापूर्वक अपनी अनिच्छा बताकर मैं निवृत्तिनाथ जी के साथ बंगाल के मेमन सिंह के लिए निकल पड़ा। मेमन सिंह में मेरी भेंट उद्‌भट विद्वान् एवं दार्शनिक अक्षय कुमार बनर्जी से हुई। उनके साथ भारतीय-दर्शन और नाथपंथ के बारे में विस्तार से बातचीत होती रही और मैं वहाँ इनके दर्शन साहित्य का अध्ययन करता रहा। गोरक्षनाथ जी के बारे में एवं गोरक्षदर्शन का अध्ययन करने का भी अवसर मुझे सर्वप्रथम यहीं प्राप्त हुआ।

वर्षाऋतु के पश्चात् हम वापस ऋषिकेश आ गये। ऋषिकेश में रहकर मैं योगी शान्तिनाथ द्वारा लिखित प्राच्यदर्शन समीक्षा का अध्ययन करने लगा और शान्तिनाथ जी के बारे में मेरी उत्सुकता बढ़ती गयी। योगी निवृत्तिनाथ जी ने बताया कि शान्तिनाथ जी भी योगी गम्भीरनाथ जी के ही शिष्य हैं और वे कराची से करीब 10 मील दूर एक सेठ के बागीचे में आश्रम बनाकर रहते हैं। योगी निवृत्तिनाथ जी से ही ज्ञात हुआ कि योगी शान्तिनाथ जी दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान और नाथपंथ के ज्ञाता होने के साथ-साथ स्वतंत्रता सेनानी भी हैं। अंग्रेजों द्वारा उन्हें ढाका षड्यन्त्र में बन्दी बनाया गया था। शान्तिनाथ जी से मिलने की मेरी उत्सुकता को देखते हुए योगी निवृत्तिनाथ जी ने योगी शान्तिनाथ जी के यहाँ जाने हेतु योजना बनायी और मुझे लेकर कराची के लिए निकल पड़े।

हम योगी शान्तिनाथ के यहाँ पहुँचे और उनके आश्रम में रहने लगे। उनके साथ भारतीय दर्शन के विविध विषयों पर गंभीर चर्चा में मेरा मन रमता गया। उसी दौरान गम्भीरनाथ जी महाराज एवं दिग्विजयनाथ जी महाराज के बारे में वे कुछ न कुछ बताया करते थे। नाथपंथ के सामाजिक क्रान्ति के विविध पक्षों ने मुझे बहुत हद तक प्रभावित किया। योग के प्रति मैं शुरू से आकर्षित था। गुरु श्री गोरक्षनाथ द्वारा प्रतिपादित 'योग दर्शन' और 'गोरखवाणी' के अध्ययन का अवसर भी मुझे शान्तिनाथ के सान्निध्य में मिला। दो योग्य संन्यासियों के सत्संग में मैं रम चुका ही था। तभी दैवी कृपा से एक घटना ने सब कुछ बदल दिया। हम जिस सेठ के बागीचे में आश्रम बनाकर रहते थे, हमारे भोजन आदि की व्यवस्था उसी सेठ के द्वारा की जाती थी। हमारे भण्डारे में तीन दिन से घी समाप्त हो गया था। सूचना पाने के बाद भी सेठ ने भण्डारे में घी नहीं भिजवाया तो हमें यह महसूस हुआ कि हम सेठ पर बोझ बन रहे हैं और सेठ हमारी भोजनादि की व्यवस्था प्रसन्न मन से नहीं कर रहा है। शान्तिनाथ जी इस घटना से बहुत दुःखी हुए और उस स्थान को छोड़ने का निर्णय ले लिया। इसी घटना से दुःखी शान्तिनाथ जी ने कहा कि गोरक्षपीठ के पीठाधीश्वर महन्त दिग्विजयनाथ जी ने अपने योग्य उत्तराधिकारी के लिए मुझसे कहा था। मैं पत्र लिख देता हूँ तुम वहीं चले जाओ। उसी समय निवृत्तिनाथ जी ने 1940 में गोरखपुर प्रवास के दौरान महन्त दिग्विजयनाथ जी द्वारा मुझे उत्तराधिकारी बनाने के प्रस्ताव के विषय में भी शान्तिनाथ जी से बताया। योगी शान्तिनाथ जी ने जोर देकर मुझे गोरखपुर जाने का निर्देश दिया। तब मैंने उनसे विनयवत् आग्रह किया कि महन्त दिग्विजयनाथ जी द्वारा दो वर्ष पूर्व यह प्रस्ताव किया गया था, अब तक वे हमारी प्रतीक्षा में बैठे नहीं होंगे। किसी न किसी को वे अपना उत्तराधिकारी बना चुके होंगे। मेरी बात पर योगी शान्तिनाथ जी गम्भीर हुए और उन्होंने महन्त दिग्विजयनाथ जी के पास मुझे उत्तराधिकारी बनाने का पत्र डाक द्वारा भेज दिया। पत्र पाने के बाद, जैसे कि महन्त दिग्विजयनाथ जी मेरी प्रतीक्षा में ही बैठे हों, उन्होंने मुझे गोरखपुर आने की स्वीकृति के साथ-साथ यात्रा व्यय भी भेज दिया। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि भविष्य में घटने वाले घटनाक्रमों पर उस अन्तर्यामी योगी शान्तिनाथ की दृष्टि पड़ चुकी थी। मैं इसे दैवी आदेश मानकर निवृत्तिनाथ जी के साथ गोरखपुर आया। गोरक्षनाथ मंदिर में जब मैं महन्त

दिग्विजयनाथ जी के सम्मुख प्रस्तुत हुआ तो उनके मुख-मण्डल पर दिव्य आभामयी मुस्कान ने मुझे सदा-सदा के लिए उनका अपना बना दिया। मैंने मन ही मन उनको अपने गुरु के रूप में वरण किया और उनके साथ रहने लगा। उनकी मनसा-वाचा-कर्मणा में अद्‌भुत एकरूपता तथा हिन्दुत्व और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रति पूर्ण समर्पण से युक्त विराट् व्यक्तित्व के धनी महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के समक्ष मैं समर्पित होता चला गया।''

नाथपंथ में दीक्षा

महन्त अवेद्यनाथ जी की कृपाल सिंह विष्ट से संन्यासी बनकर 'अवेद्य' बनने की वास्तविक यात्रा नाथपंथ में दीक्षा के साथ प्रारम्भ हुई। 8 फरवरी सन् 1942 ई. को गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त दिग्विजयनाथ जी द्वारा इन्हें विधिवत दीक्षा देकर अपना शिष्य एवं उत्तराधिकारी घोषित कर दिया गया। वस्तुत: यह वर्ष भारत के स्वतंत्रता संग्राम का महत्त्वपूर्ण वर्ष था। महन्त दिविग्जयनाथ जी हिन्दू महासभा के माध्यम से आजादी की लड़ाई के एक संन्यासी योद्धा थे। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारत छोड़ो आन्दोलन की घोषणा से देशभर के आजादी के योद्धा हरकत में आ चुके थे। महन्त दिग्विजयनाथ जी भी नेपाल सहित इस सम्पूर्ण क्षेत्र में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जन-जागरण अभियान में व्यस्त रहते थे तथा जर्मनी एवं जापान की मदद से सक्रिय आजाद हिन्द फौज की सहायता कर रहे थे। परिणामत: अवेद्यनाथ जी को गोरक्षनाथ मन्दिर की व्यवस्था की पूर्ण जिम्मेवारी उठानी पड़ी। महन्त दिग्विजयनाथ जी के निर्देशन में वे गोरक्षनाथ मन्दिर से जुड़े विभिन्न धर्मस्थानों एवं संस्थानों की देख-रेख में निष्णात होते गये। महन्त दिग्विजयनाथ जी को स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रहने का पूरा अवसर प्राप्त हुआ। परिणामत: 1944 में गोरखपुर में हिन्दू महासभा का ऐतिहासिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ जिसमें श्यामा प्रसाद मुखर्जी भी सम्मिलित हुए।

इसी कालखण्ड में भारत विभाजन की माँग जोर पकड़ती जा रही थी। मुस्लिम लीग के नेतृत्व में देशभर में साम्प्रदायिक दंगों की आग सुलग रही थी। जगह-जगह हिन्दुओं पर संगठित साम्प्रदायिक आक्रमण आरम्भ हो चुके थे। ऐसे में महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के नेतृत्व में हिन्दू महासभा उत्तर भारत में भारत विभाजन के तीव्र विरोध के साथ-साथ हिन्दू समाज को संगठित करने के भगीरथ प्रयास में लगी हुई थी। अवेद्यनाथ जी महाराज द्वारा गोरक्षनाथ मन्दिर की व्यवस्था संभाल लेने से महन्त दिग्विजयनाथ जी को सामाजिक-राष्ट्रीय आन्दोलन हेतु पर्याप्त अवसर उपलब्ध हुए।

खण्डित भारत की स्वतंत्रता, इस्लामी आतंक, साम्प्रदायिक दंगे और भीषणतम नरसंहारों के साये में प्राप्त हुई। अभी इसकी आग बुझी नहीं कि 1948 में महात्मा गाँधी की हत्या हो गयी। महन्त दिग्विजयनाथ जी की सामाजिक-राजनीतिक सक्रियता से घबड़ाई सरकार को बहाना मिल गया और षड्‌यन्त्रपूर्वक महन्त जी को महात्मा गाँधी की हत्या के तथाकथित षड्‌यन्त्र में गिरफ्तार कर उन्नीस महीने जेल में बन्द कर दिया गया तथा गोरक्षनाथ मंदिर की समस्त चल-अचल सम्पत्ति जब्त कर

ली गयी। उस दौरान अवेद्यनाथ जी महाराज ने नेपाल में रहकर गोपनीय ढंग से गोरक्षनाथ मन्दिर की व्यवस्था एवं महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज को निर्दोष सिद्ध करने हेतु सफल प्रयास किया। गाँधी हत्या के समय की एक घटना का जिक्र करते हुए महन्त अवेद्यनाथ कहते हैं, "नेपाल में रहकर मैं गोरक्षनाथ मन्दिर एवं महन्त जी के मुकदमे की पैरवी कर रहा था कि लखनऊ से प्रकाशित समाचार पत्र 'नवजीवन' ने यह दुष्प्रचारित कर दिया कि महात्मा गाँधी की हत्या महन्त जी की रिवाल्वर से की गयी। यह तथ्य भी मुकदमे में जुड़ गया। तब मैंने गोरखपुर के जिलाधिकारी से सम्पर्क कर यह स्पष्ट किया कि महन्त जी के रिवाल्वर की जाँच कर सकते हैं। जिलाधिकारी ने आकर स्वयं जाँच की।" और फिर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज हँसते हुए बताते हैं कि जेल से छूटने के बाद महन्त जी ने 'नवजीवन' अखबार के मालिकानों को क्षमा कर दिया।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में हिन्दू समाज की एकता का प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो चुका था। जन्मना जाति व्यवस्था के श्रेष्ठतावाद एवं अस्पृश्यता जैसी विकृतियों से हिन्दू समाज के खण्डित तथा कमजोर होने की संभावनाएँ प्रबल होती जा रही थीं। भारतीय शासन विकृत धर्म निरपेक्षता तथा वोट बैंक की राजनीति के अन्तर्गत अंग्रेजों की 'बाँटो और राजकरो' की नीति का ही अनुगामी बना हुआ था। महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज ने सामाजिक-शैक्षिक पुनर्जागरण के साथ-साथ राजनीतिक मंच पर हिन्दू समाज की सिंह गर्जना का अभियान आरम्भ किया और उनके उत्तराधिकारी महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज उनके सक्रिय सहयोगी एवं अनुगामी बने।

राजनीति में महन्त अवेद्यनाथ

धर्म की रक्षा के लिए राजनीति महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज को अपने गुरुदेव से विरासत में प्राप्त हुई। महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के साथ-साथ ही शिष्य रूप में ही महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज राजनीतिक मंच पर भी सक्रिय हो चुके थे। 1962 में उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव में मानीराम विधानसभा से विजयी होकर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज पहली बार विधानसभा के सदस्य बने और लगातार 1977 ई. तक के विधानसभा चुनाव तक मानीराम विधानसभा से चुनाव में विजयी होते रहे। 1980 ई. में मीनाक्षीपुरम् में हुए 'धर्म परिवर्तन' की घटना से विचलित महन्त जी राजनीति मे संन्यास लेकर हिन्दू समाज की सामाजिक विषमता के विरुद्ध जन-जागरण के अभियान पर चल पड़े।

लोकसभा चुनाव में पहली बार महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के ब्रह्मलीन होने पर 1969 ई. के उपचुनाव में महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज को गोरखपुर की जनता ने ससम्मान संसद में भेज दिया। पुनः 1989 ई. में श्रीराम जन्मभूमि आन्दोलन जब अपने उत्कर्ष पर था, तथाकथित सेकुलर राजनीतिक दल यह चुनौती देने लगे कि इस आन्दोलन को जनता का समर्थन प्राप्त नहीं है। इन परिस्थितियों में अयोध्या में हुए धर्म संसद में महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज से लोकसभा चुनाव

जीतकर सेकुलर दलों को जवाब देने का प्रस्ताव पास हुआ और महन्त जी हिन्दू महासभा से 1989 ई. के लोकसभा चुनाव में श्रीराम जन्मभूमि पर भव्य मन्दिर निर्माण के मुद्दे पर सम्पूर्ण हिन्दू सन्त-महात्माओं के समर्थन से चुनावी जंग में कूदे और विजयी हुए। इस चुनाव में भारतीय जनतापार्टी और श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व वाले जनता दल के गठबन्धन का प्रत्याशी भी चुनाव मैदान में था। तत्पश्चात् लोकसभा के 1991 के मध्यावधि चुनाव तथा 1996 के लोकसभा चुनाव में महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज विजयी होते रहे।

लोकसभा में सम्मानित सदस्य होते हुए महन्त जी 1971, 1990 एवं 1991 में भारत सरकार के गृहमंत्रालय की परामर्शदात्री समिति के सदस्य रहे। राजनीति में भी महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की अपराजेयता सभी ने स्वीकारी। 1996 के चुनाव के समय दैनिक समाचार पत्र 'राष्ट्रीय सहारा' ने अपनी टिप्पणी में लिखा- मौजूदा सांसद अवेद्यनाथ सुप्रसिद्ध गोरखनाथ मन्दिर के पीठाधीश्वर हैं। वह जितने बड़े सन्त हैं उतने ही बड़े राजनेता भी हैं। इस मण्डल में वह इकलौते शख्स हैं जिन्होंने पाँच बार विधानसभा और तीन बार लोकसभा का चुनाव जीता है। वह 1962 में पहली बार विधायक बने। हिन्दू महासभा से 1967, 1969, 1974 और 1977 में विधायक चुने गये। स्पष्ट है कि किसी का राज, किसी का प्रभाव, किसी की लहर उनकी जीत को न रोक सकी। यहाँ तक कि जनता लहर में भी वह अपराजेय रहे। 1998 ई. के लोकसभा चुनाव में उन्होंने अपने शिष्य एवं उत्तराधिकारी योगी आदित्यनाथ जी महाराज को चुनाव लड़ने का निर्देश दिया। 1998 से अद्यतन गोरखपुर की संसदीय सीट पर गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की कृपा एवं आशीर्वाद से पूज्य योगी आदित्यनाथ जी महाराज अपराजेय धर्मयोद्धा की प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने सदैव राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं भारतीय संस्कृति की पुनर्प्रतिष्ठा तथा हिन्दू समाज की रक्षा में अपनी राजनीतिक भूमिका निर्धारित की।

सामाजिक समरसता के अग्रदूत

गोरक्षपीठ हिन्दू समाज की विकृतियों के खिलाफ जन-जागरूकता एवं हिन्दू समाज को सामाजिक-राजनीतिक-आध्यात्मिक नेतृत्व देने के लिए ही सदा से प्रतिष्ठित रहा है। नाथपंथ का अभ्युदय ही हिन्दू तंत्र-साधना में पंचमकार के शमन के साथ दिखाई देता है। तथापि बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक से गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के नेतृत्व में गोरक्षपीठ ने सामाजिक परिवर्तन की जो मशाल प्रज्वलित की वह महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज द्वारा देश भर में चलाये गये छुआछूत विरोधी अभियानों से पूर्णत: देदीप्यमान हो गयी। हम लोग पूज्य महन्त जी को 1987 ई. से लगातार सुनते आ रहे हैं। कोई मंच हो, कोई विषय हो; किन्तु महाराज जी के उद्बोधन में हिन्दू समाज की एकता और छुआछूत समाप्त करने की अपील किसी न किसी रूप में आ ही जाती है। यद्यपि कि महन्त जी द्वारा छुआछूत विरोधी एवं हिन्दू समाज में सामाजिक समरसता का

प्रयास तो गोरक्षपीठ से प्राप्त वैचारिक उत्तराधिकार के रूप में प्रारम्भ से ही चलता रहा, किन्तु 1980 ई. में मीनाक्षीपुरम् और उसके आस-पास के क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर कराये गये धर्म परिवर्तन ने महाराज जी को अन्दर से हिला दिया। वे व्यथित हुए और मात्र दुःखी होकर पीड़ा सहकर चुप बैठने के बजाय राजनीति से संन्यास लेकर हिन्दू समाज की एकता और सामाजिक समरसता के यज्ञाभियान पर निकल पड़े।

महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज को जिस राष्ट्र विरोधी एवं गैर संवैधानिक सामूहिक धर्मान्तरण ने विचलित कर दिया वह 19 फरवरी, 1980 को घटित मीनाक्षीपुरम् की घटना है। मीनाक्षीपुरम् का नाम बदलकर 'रहमत नगर' कर दिया गया। बड़े धूम-धाम से आयोजित इस धर्मान्तरण समारोह में आसपास के तेनाक्षी, कडयनल्लुर, वदकरी व वनगग्म् आदि गाँवों के मुसलमान अपने-अपने परिवारों के साथ सम्मिलित हुए। कडयनल्लुर के विधायक श्री सहुल हमीद ने भी सक्रिय भागीदारी निभायी। इस समारोह में एक सौ अस्सी हिन्दू परिवारों (हरिजन) को धर्मान्तरित कर उस दिन एक बजे, साढ़े चार बजे, साढ़े छः बजे जुहर, अझर एवं मकुआरिब हुआ और साथ ही सारा समुदाय कलमा पढ़ता रहा।

मीनाक्षीपुरम् के धर्मान्तिण समारोह से प्रारम्भ यह धर्मान्तरण अभियान आसपास के क्षेत्रों में लगभग एक वर्ष तक चलता रहा, किन्तु मीनाक्षीपुरम् धर्मान्तरण का पूरे देश में विरोध शुरू हो गया। पूज्य महंत अवेद्यनाथ जी महाराज ने धर्मान्तरण के विरोध में अत्यन्त कठोर शब्दों में अपनी आपत्ति दर्ज कराते हुए दुहराया कि यह धर्मान्तरण नहीं राष्ट्रान्तरण के अभियान की शुरुआत है। किन्तु महन्त जी मात्र अपनी आपत्ति दर्ज कराकर चुप नहीं हुए। वे कहते हैं कि -"मुझे यह लगा कि उस मूल कारण पर चोट होनी चाहिए कि जिससे हमारे ही बन्धु-बान्धव हजारों वर्षों की अपनी परम्परा, धर्म और उपासना पद्धति बदलने के लिए तैयार हो जा रहे हैं और मैंने महसूस किया कि जब तक हिन्दू समाज में अस्पृश्यता का कोढ़ बना रहेगा, अपने ही समाज में उपेक्षित और तिरस्कृत बन्धुओं को कोई भी गुमराह कर धर्मान्तरण हेतु प्रोत्साहित और प्रेरित कर सकता है। अतः मैं गाँव-गाँव जाकर छुआछूत के विरुद्ध अभियान छेड़ने का निश्चय लेकर निकल पड़ा। इसी समय मेरे मन में यह बात आयी कि मेरे इस सामाजिक समरसता अभियान पर लोग यह न सोचें कि यह साधु वोट के लिए ऐसा कर रहा है, मैंने राजनीति को तिलांजलि दे दी और चुनाव न लड़ने का निर्णय घोषित कर दिया।"

1980 से गाँवों में लगातार महन्त जी के जनसम्पर्क एवं तथाकथित अछूतों के साथ बैठकर सहभोज ने क्रान्ति पैदा कर दी और सामाजिक परिवर्तन की आँधी में जिस तेजी से समाज बदला वह सभी ने देखा। इस दृष्टि से काशी में डोमराजा के घर पर महन्त जी की अगुवाई में धर्माचार्यों द्वारा किये गये भोजन का देश भर में स्वागत हुआ। दैनिक समाचार पत्र 'आज' ने लिखा-सदियों से बिखरी पड़ी हिन्दू एकता की सभी कड़ियों को परस्पर मजबूती से जोड़कर सशक्त हिन्दू समाज का

पुनर्निर्माण करने के उद्देश्य से छुआछूत मिटाने के प्रयासों को ठोस आधार प्रदान करते हुए गोरक्षपीठाधीश्वर तथा सांसद महन्त अवेद्यनाथ ने अनेक प्रमुख सन्त महात्माओं के साथ गुरुवार (18 मार्च, 1994) को प्रातःकाल काशी के डोमराजा सुजीत चौधरी के घर उनकी माँ के हाथों भोजन कर अस्पृश्यता की धारणा पर जोरदार चोट की। मान मन्दिर स्थित डोमराजा के आवास पर उनके वंशज श्री संजीत चौधरी की देखरेख में सूर्योदय के पूर्व से संतों के स्वागत तथा उन्हें भोजन कराने की तैयारियाँ शुरू हो गयी थीं। आसपास के लोगों ने जब यह सुना कि कुछ ही देर बाद अनेक संत-महात्मा डोमराजा के यहाँ भोजन करने आ रहे हैं तो किसी को विश्वास नहीं हो रहा था। लेकिन नौ बजे के लगभग जब दशाश्वमेध घाट से डोमराजा के आवास की ओर जाने वाली गली में गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के नेतृत्व में धर्माचार्यों के काफिले ने प्रवेश किया तो सभी नागरिक अभिभूत हो उठे। सदियों तक चाण्डाल कहकर पुकारे गये, समाज की मुख्य धारा से अलग अस्पृश्य माने गये इस परिवार के यहाँ देश के वरिष्ठ सन्तों के भोजन का यह दृश्य देखने जनता उमड़ पड़ी। अस्पृश्यता की जड़ अवधारणा पर निर्णायक प्रहार का ऐसा मार्मिक दृश्य देखकर लोगों के नेत्र आनन्दातिरेक से छलछला उठे। संजीत चौधरी की माँ श्रीमती सारंग देवी भोजन कराते-कराते इस कदर भाव-विह्वल हो गयी थीं कि उनकी आँखों से झर-झर अश्रुपात होने लगा। एक पत्रकार ने उनसे पूछा कि आप क्यों रो रही हैं? उनका उत्तर था- "आज संजीत क बाऊ होतन तऽ केतना खुश होतन।" भोजन के बाद परम्परानुसार संजीत चौधरी की माँ ने संतों को दक्षिणा देने का प्रयास किया तो महन्त अवेद्यनाथ ने उन्हें रोका और फिर सन्तों से उन्होंने कहा कि कोई दक्षिणा नहीं लेगा अन्यथा कल ही अखबार वाले छाप देंगे ये सन्त-महात्मा दक्षिणा के लिए ही भोजन करने आये थे। भोजनोपरान्त महन्त अवेद्यनाथ ने डोमराजा के घर में बने रामजानकी मन्दिर के समक्ष सिर नवाया। अन्य सन्तों ने भी उनका अनुकरण किया। बाद में जब एक पत्रकार ने महन्त अवेद्यनाथ से पूछा कि डोमराजा के घर भोजन कर आपको कैसा लगा? उनका उत्तर था- "गंगा के तट पर डोमराजा के घर भोजन कर मैं धन्य हुआ हूँ। क्योंकि सदियों से भारतीय समाज में कोढ़ की तरह जड़ हो चुके छुआछूत को मेरे साथ देश के धर्माचार्यों ने एक बार फिर शास्त्र विरुद्ध घोषित कर हिन्दू समाज की एकता का मार्ग प्रशस्त किया है।" महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज द्वारा चलाये गये सामाजिक समरसता के अभियान का यह चरमोत्कर्ष था।

महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने इससे पूर्व श्रीराम जन्मभूमि पर बनने वाले भव्यतम मन्दिर का शिलान्यास हिन्दू समाज में घोषित किसी अछूत से कराने का प्रस्ताव कर दुनिया को यह संदेश दे दिया कि हिन्दू धर्माचार्य और हिन्दू समाज अपनी सामाजिक विकृतियों को समाप्त करने हेतु संकल्पबद्ध हो रहा है। परिणामत: दुनिया ने देखा कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की जन्मभूमि पर बनने वाले पवित्र एवं विशाल मन्दिर की पहली ईंट एक दलित ने रखी। महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के प्रयास से श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर का शिलान्यास लाखों श्रीराम भक्त हिन्दू जनता तथा परम्परा और

रूढ़ियों को ताड़ने हेतु कृत संकल्पित भारत के विभिन्न हिस्सों से आये विविध पंथों के संत-महात्माओं की उपस्थिति में एक तथाकथित अस्पृश्य द्वारा किया जाना भारत के सामाजिक-धार्मिक इतिहास में सामाजिक परिवर्तन की क्रान्ति का सूत्रपात था। श्रीराम जन्मभूमि पर मन्दिर निर्माण का प्रश्न हिन्दू समाज और भारतीयता की प्रतिष्ठा का प्रश्न था ही, इस मुद्दे ने भारत की राजनीतिक सत्ता के उथल-पुथल का जो दृश्य प्रस्तुत किया उस पर सारी दुनिया की निगाहें टिकी थीं। ऐसे महत्त्वपूर्ण आयोजन पर हिन्दू समाज में व्याप्त अस्पृश्यता जैसे कोढ़ के खिलाफ यह प्रतीकात्मक पहल दुनिया को संदेश देने के साथ-साथ हिन्दू समाज को यह संदेश देने का माध्यम बना कि छुआछूत न तो शास्त्र-सम्मत है, न ही धर्म सम्मत। यह एक विकृति है, रूढ़ि है जिसे धर्माचार्यों, सन्त-महात्माओं एवं हिन्दू समाज ने पूर्णतः खारिज कर दिया है।

महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज द्वारा सामाजिक समरसता हेतु किये गये भगीरथ प्रयासों का संकलन और उनका उल्लेख तो सम्भव नहीं है किन्तु पटना के महावीर मन्दिर में दलित (हरिजन) पुजारी की प्रतिष्ठा के प्रयास का इतिहास में हमेशा उल्लेख किया जाता रहेगा। बिहार जब जातिवादी-साम्प्रदायिक राजनीति के सर्वोच्च शिखर पर था; श्री लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में सत्ता पर काबिज रहने के लिए जातिवाद के विषवेलि को पूर्णतः खाद-पानी प्राप्त हो रहा था; बिहार एक प्रकार से जल रहा था, महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने इस जातिवादी राजनीति के सीने पर चढ़कर बिहार की राजधानी पटना में स्थित महावीर मन्दिर में सूर्यवंशी लाल उर्फ फलाहारी बाबा (हरिजन) को पुजारी नियुक्त कर एक बार फिर भारत की सामाजिक विखण्डनकारी राजनीति को आईना दिखा दिया। समारोह के साथ पुजारी नियुक्त किया गया। इस समारोह में महन्त जी के साथ स्वामी चिन्मयानन्द जी महाराज भी उपस्थित हुए। महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के इस युग-परिवर्तनकारी प्रयास को दुनिया भर में सराहा गया।

महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज सामाजिक समरसता के प्रश्न पर सदैव स्पष्टवादी रहे। उन्होंने इस प्रश्न पर धर्माचार्यों, संत-महात्माओं, राजनीतिज्ञों, किसी को भी क्षमा नहीं किया, यदि वे हिन्दू समाज की एकता के विरुद्ध अथवा अस्पृश्यता के पक्ष में खड़े हुए।

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज एकबार अपने प्रिय एवं पुरी के जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी निश्चलानन्द जी सरस्वती के खिलाफ भी तब तनकर खड़े हो गये जब उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय परिसर में आयोजित समारोह में एक विदुषी महिला को वेदपाठ करने पर रोक दिया। महन्त जी ने इस पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि यह कृत्य कहीं से भी न तो न्यायसंगत है और न ही धर्मानुसार उचित है। यह कृत्य महिला समाज का अपमान करता ही है इससे हिन्दुत्व भी लांछित होता है। कोई भी समझदार व्यक्ति ऐसे कृत्य का समर्थन नहीं कर सकता। आज जबकि जातिवाद, ऊँच-नीच, छूत-अछूत आदि विकृतियों को शह देकर हिन्दू समाज

को बाँटने एवं कमजोर करने का षड्यन्त्र चल रहा है, जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारा महिलाओं के वेदपाठ पर आपत्ति न तो धर्मानुकूल है और न ही युगानुकूल।

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने अपने जीवन का उत्तरार्द्ध पूर्णतः सामाजिक समरसता, हिन्दू समाज के पुनर्जागरण और श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति अभियान को समर्पित कर दिया। उन्होंने 1980 के बाद से ही हिन्दू समाज से अस्पृश्यता उन्मूलन एवं श्रीराम जन्मभूमि पर भव्य मन्दिर निर्माण को अपने जीवन का मिशन बना लिया और अब तक सोते-जागते, उठते-बैठते महाराज जी के बातचीत के केन्द्र बिन्दु यही दो मुद्दे होते हैं।

श्रीराम जन्मभूमि आन्दोलन के नायक

आधुनिक भारत में क्षेत्र और जनमहभागिता के आधार पर 1857 और आपातकाल के विरुद्ध हुए जनान्दोलनों से भी बड़ा या यह कहें कि अब तक के सबसे बड़े उस जनान्दोलन का, जिसने भारत की दिशा बदल दी, नेतृत्व गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने ही किया। पांथिक विविधता और मतभिन्नता से युक्त हिन्दू समाज के धर्माचार्यों में जिस एक नाम पर सहमति थी वह गोरक्षपीठाधीश्वर का ही नाम था। शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध, जैन, सिख, विविध अखाड़ों सहित बड़ी संख्या के मतावलम्बी धर्माचार्य महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के प्रति समान श्रद्धा एवं निष्ठा रखते हैं। हिन्दू समाज में अस्पृश्यता एवं ऊँच-नीच जैसी कुप्रथाओं के खिलाफ देश भर में जन-जागरण अभियान पर निकलकर गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने सर्वप्रथम धर्माचार्यों के बीच अपने-अपने मत-श्रेष्ठतावाद का खण्डन किया और भारत के लगभग सभी शैव-वैष्णव इत्यादि धर्माचार्यों को एक मंच पर खड़ा किया था। परिणामतः जब श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ-समिति का गठन हुआ तो 21 जुलाई, 1984 को अयोध्या के वाल्मीकि भवन में सर्वसम्मति से महन्त जी को अध्यक्ष चुना गया। तब से अब तक श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति के महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज अध्यक्ष हैं और उनके नेतृत्व में भारत में ऐसे जनान्दोलन का उदय हुआ जिसने भारत में सामाजिक-राजनीतिक क्रान्ति का सूत्रपात किया। विकृत धर्मनिरपेक्षता एवं मुस्लिम तुष्टीकरण की राजनीति का काला चेहरा उजागर हुआ। हिन्दुत्व पर नये सिरे से दुनियाभर में बहस शुरू हुई। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की आन्तरिक ताकत का एहसास हुआ। भारत सहित दुनिया के इतिहास में श्रीराम जन्मभूमि आन्दोलन और उसके प्रभाव एवं परिणाम का अध्याय महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज का उल्लेख हुए बिना अधूरा रहेगा।

श्रीराम जन्मभूमि की मुक्ति और उस स्थान पर भव्य मन्दिर निर्माण के लिए महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के नेतृत्व में अत्यन्त योजनापूर्वक जनान्दोलन की रूपरेखा बनी और 1984 से प्रारम्भ किये गये इस चरण का आन्दोलन एक हद तक परिणाम पर पहुँचा और उस स्थान पर स्थित विदेशी आक्रान्ता द्वारा निर्मित हिन्दू समाज को चिढ़ाने और अपमानित करने वाला 'ढाँचा' ध्वस्त कर दिया

गया तथा श्रीराम जन्मभूमि पर कारसेवकों ने भगवान् श्रीराम का 'मन्दिर' अपने हाथों से बना दिया। अब उस मन्दिर को 'भव्यतम' बनाने का कार्य ही मात्र शेष है। लगभग पाँच शताब्दियों से चल रहे संघर्ष को अन्ततः पूज्य महन्त जी के नेतृत्व में एक बड़ी सफलता प्राप्त हुई। महन्त जी ने 1984 के बाद से श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति द्वारा चलाये गये जन-संघर्ष का सफलतम नेतृत्व किया।

महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के नेतृत्व में लगभग दो दशक तक अनवरत चले श्रीराम जन्मभूमि आन्दोलन ने न केवल श्रीराम जन्मभूमि पर हिन्दू समाज को अपमानित करते हुए चिढ़ाने वाला ढाँचा ध्वस्त हुआ अपितु आजाद भारत में हिन्दू विरोधी राजनीति का ढाँचा भी टूटा। भारत सहित दुनिया भर में 'हिन्दुत्व' बहस का मुद्दा बना और हिन्दुत्व पुनर्जागरण के एक नये युग का शुभारम्भ हुआ। हिन्दू समाज के विविध पंथों के धर्माचार्य एक साथ एक मंच पर आये। यह युग भारत में हिन्दू एकता के लिए तो जाना ही जायेगा साथ ही महात्मा गाँधी की इस उक्ति को झुठलाने के लिए भी प्रामाणिक होगा कि 'हिन्दू कायर होता है'। श्रीराम जन्मभूमि आन्दोलन की सफलता के तमाम महत्त्वपूर्ण कारणों में एक महत्त्वपूर्ण कारण गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज का नेतृत्व सभी पंथों के धर्माचार्यों द्वारा सर्वस्वीकार्य होना भी था। भारत के इतिहास में जब भी श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति आन्दोलन पर चर्चा होगी, वह चर्चा महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के बगैर अधूरी मानी जायेगी।

शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा के मसीहा

महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के नेतृत्व में स्वाधीनता आन्दोलन के समय ही गोरक्षपीठ ने पूर्वी उत्तर प्रदेश में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा का दीप जलाया। 1932 ईस्वी में महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् की स्थापना इसी प्रज्वलित दीप के प्रकाश की एक किरण थी। स्वाधीनता आन्दोलन के समय भारतीय मनीषियों को यह महसूस हो चुका था कि आजादी प्राप्त होने के बाद आजाद भारत का नेतृत्व करने वाली पीढ़ी रूप-रंग के साथ-साथ आचार-व्यवहार से भी भारतीय होनी चाहिए। एक तरफ स्वामी विवेकानन्द अंग्रेजी शासन की शिक्षा पर कह रहे थे- ये शिक्षा हमें हमारे महान पुरुषों के इतिहास से नहीं अपितु अंग्रेजों महान पुरुषों के इतिहास से अवगत कराती है। ये शिक्षा हमें दुर्बल बनाती है, सबल नहीं। शिक्षा के माने कण्ठस्थ करना नहीं है अपितु शिक्षा आवश्यकता के अनुरूप ही दी जानी चाहिए। शिक्षा वही है जो राष्ट्रीय पद्धति से दी जाये। स्वामी जी आगे कहते हैं- जब तक लाखों लोग भूखे और अज्ञानी हैं, तब तक मैं इस प्रत्येक व्यक्ति को कृतघ्न समझता हूँ, जो उनके बल पर शिक्षित तो बना परन्तु आज उसकी ओर ध्यान तक नहीं देता। दूसरी तरफ लॉर्ड मैकाले की आवाज गूँज रही थी- हमारे अंग्रेजी विद्यालय प्रशंसनीय ढंग से असाधारण उन्नति कर रहे हैं।. ... मेरी बनाई शिक्षा पद्धति से यहाँ (भारत में) यदि शिक्षा प्रणाली चलती रही तो आगामी तीस वर्षों में एक भी आस्थावान हिन्दू नहीं बचेगा। या तो वे ईसाई बन जायेंगे या नाम मात्र के हिन्दू बने रहेंगे। धर्म या वेदशास्त्रों पर उनका विश्वास नहीं होगा।

मैकाले की शिक्षा पद्धति की अनुगूँज आनन्द कुमार स्वामी की पीड़ा में भी सुनाई देती है, जब वे कहते हैं- इसे अनुभव करना बहुत कठिन है कि कैसे भारतीय जीवन के सातत्य को पूर्णतया विच्छिन्न कर दिया गया है। अंग्रेजी शिक्षा की केवल एक पीढ़ी तथा यह अपने मूल से वंचित ऐसे अल्पज्ञ बौद्धिक अस्पृश्य का सृजन करती है जो पूर्व अथवा पश्चिम, भूत अथवा भविष्य कहीं का नहीं है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में सर्वाधिक भयप्रद है उसकी आध्यात्मिक सातत्य नष्ट होने की सम्भावना। भारत की सभी समस्याओं में सर्वाधिक कठिन तथा परम अनर्थकारी है शिक्षा की समस्या।

युगद्रष्टा महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज ने भारतीय मनीषियों की इन्हीं चिन्ताओं के समाधान तथा लार्ड मैकाले द्वारा उत्पन्न की गयी चुनौती से निपटने के लिए भारतीय शिक्षा पद्धति के अनुरूप शिक्षा का तन्त्र खड़ा करने की नींव 1932 ईस्वी में रख दी। महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने अपने वरेण्य गुरुदेव महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के सपनों को साकार किया। उन्होंने अपनी निष्ठा, सुदीर्घकालीन तपस्या और अनुभव की पूँजी से उत्तरोत्तर समृद्ध और समुन्नत करते हुए महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् को वृहत्तर स्वरूप प्रदान किया। महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् के अन्तर्गत आज तीन दर्जन से अधिक शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थान, चिकित्सा संस्थान तथा सेवा संस्थान संचालित हो रहे हैं। प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक के परम्परागत शिक्षण संस्थानों के साथ-साथ तकनीकी एवं स्वास्थ्य शिक्षा के संस्थानों में हजारों छात्र-छात्राएँ रोजगारपरक पुस्तकीय पाठ्यक्रमों के साथ-साथ भारतीयता तथा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पाठ पढ़ रहे हैं। प्रतिवर्ष 4 दिसम्बर से 10 दिसम्बर तक चलने वाले महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् के संस्थापक सप्ताह-समारोह तथा 4 दिसम्बर को निकलने वाली गोरखपुर महानगर की सड़कों पर शोभा-यात्रा में सम्मिलित समस्त शिक्षण संस्थाओं के हजारों अनुशासित तथा राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत युवा पीढ़ी को देखकर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के साकार स्वप्न का अनुभव किया जा सकता है। सम्भवतः यह देश का ऐसा एकमात्र शिक्षा संस्थान है जो प्रतिवर्ष लगभग साढ़े छः सौ छात्र-छात्राओं को छात्रवृत्ति देता है तथा विद्यार्थियों के समग्र विकास में भारतीयता को सर्वाधिक महत्त्व देता है।

महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् के अन्तर्गत 1949-50 में स्थापित महाराणा प्रताप महाविद्यालय को गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु 1958 ईस्वी में महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज द्वारा समर्पित कर दिये जाने की स्मृतियों को संजोये महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने पुनः 2005 ईस्वी में जंगल धूसड़ में महाराणा प्रताप महाविद्यालय तथा 2006 ईस्वी में गोरखपुर महानगर के रामदत्तपुर में महाराणा प्रताप महिला महाविद्यालय की स्थापना की। शिक्षा के साथ-साथ स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में भी गुरुश्री गोरखनाथ चिकित्सालय, गुरुश्री गोरखनाथ योग संस्थान तथा महन्त दिग्विजयनाथ आयुर्वेदिक चिकित्सालय की स्थापना एवं उनका उत्तरोत्तर विकास महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की जन-सेवा के क्षेत्र की उल्लेखनीय उपलब्धि है, जिनके माध्यम से उनकी यशगाथा पुष्प के सुगन्ध की तरह प्रसरित है।

महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज का विराट व्यक्तित्व एक ऐसे मनीषी का विराट स्वरूप है जिसमें 'धर्म' का साक्षात् दर्शन होता है। उन्होंने भारतीय राजनीति को एक नयी दिशा दी; कथित धर्मनिरपेक्ष राजनीति की दूषित अवधारणा को नकारते हुए धर्माधिष्ठित राजनीति की प्रतिष्ठा की। भारतीय समाज में 'जातिवाद' की विषबेलि को समूल उखाड़ फेंका और बिना किसी की परवाह के सामाजिक समरसता का मूलमंत्र देकर भारतीय धर्मगुरुओं का नेतृत्व किया तथा छुआछूत जैसी कुरीतियों के विरुद्ध जन-जागरण अभियान छेड़कर हिन्दू समाज को एकता का पाठ पढ़ाया। शिक्षा और स्वास्थ्य को जन-सेवा का आधार बनाकर 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई' उक्ति को चरितार्थ किया। श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति आन्दोलन के बहाने पंथों के नाम पर बँटे धर्मगुरुओं को एक मंच पर लाकर राष्ट्रीय स्वाभियान तथा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का शंखनाद किया। महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज अपने युग के एक ऐसे महानायक हैं जिन्होंने राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में एक साथ पुनर्जागरण का उद्घोष किया। भारत के बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के तथा इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में वे जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। वे ऐसे महायोगी हैं जिनका अन्त:करण समता में स्थित है, जिन्होंने इस जीवित अवस्था में ही सबको जीत लिया है, जो जीव-मुक्त हो गये हैं और ब्रह्म में ही स्थित हैं; जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्मतस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

परलोक गमन

गोरक्षनाथ मन्दिर में गुरु पूर्णिमा (आषाढ़ पूर्णिमा, वि.सं. 2071) को अपने सभी भक्तों को आशीर्वाद देकर गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज मृत्युलोक से अनमनस्क से हो गये। ईश्वर की बनायी इस मायानगरी से उनकी अरुचि भाँपते हुए उनके साथ साये की तरह रहने वाले गोरक्षपीठ के उत्तराधिकारी योगी आदित्यनाथ जी महाराज ने 13 जुलाई, 2014 को मानव क्षमताओं के बल पर विधाता को चुनौती देने की क्षमता रखने वाले दुनिया के श्रेष्ठतम चिकित्सा संस्थानों में एक गुड़गाँव, नयी दिल्ली के पास 'मेदान्ता मेडिसिटी' में ले जाने की तैयारी प्रारम्भ की। पूज्य महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने मेदान्ता जाने से अपनी अरुचि दिखाई। गुरु-शिष्य के बीच के हठयोग में प्रकृति गुरु के साथ खड़ी हुई और एअर एम्बुलेन्स से ले जाने में अपनी असफलता महसूस करते ही 'गोरखधाम एक्सप्रेस' से पूज्य महन्त जी को लेकर 'मेदान्ता' तक पहुँच ही गये। महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज श्रेष्ठतम चिकित्सा सुविधाओं से लैश कर दिये गये और उन्हें इस धराधाम पर रोके रखने का हर प्रकार का प्रयत्न प्रारम्भ हो गया। पूज्य महन्त जी महाराज को अपने बीच बनाये रखने हेतु उपचार के साथ-साथ, ज्योतिषीय विधि-विधान एवं ईश्वरीय शक्तियों के लिए धार्मिक अनुष्ठान जैसे वे सभी प्रयास प्रारम्भ हुए जो विज्ञान एवं आस्था दोनों माध्यमों से सम्भव था। किन्तु स्वयं परमपूज्य

महन्त जी महाराज का ही अब इस सांसारिक जीवन से मोहभंग हो चुका था और वे परमात्म तत्त्व के साथ एकाकार होने का हठ ठान चुके थे। बस उन्हें प्रस्थान के लिए अपनी तप:स्थली से दूर 'मेदान्ता' जैसा चिकित्सकीय स्थान मंजूर नहीं था। अपने आराध्य गुरु शिवावतार महायोगी गोरक्षनाथ, गुरुदेव ब्रह्मलीन दिग्विजयनाथ जी महाराज एवं स्वयं की तप:स्थली गोरक्षनाथ मन्दिर से ही ब्रह्मलोक के लिए प्रस्थान करने का जैसे उन्होंने व्रत ले रखा हो। महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के इस संकल्प साधना के आगे विज्ञान हतप्रभ था, विधाता किंकर्तव्यविमूढ़ थे। अन्तत: शिष्य योगी आदित्यनाथ जी महाराज ने गुरु की इच्छापूर्ति का बीड़ा उठा ही लिया और गोरक्षनाथ मन्दिर परिसर तक उन्हें लाने का वह निर्णय लिया, जो कोई योगी ही ले सकता है। योगी जी के इस निर्णय के साथ पूज्य महन्त जी की स्वयं की इच्छा से उत्पन्न उनकी प्राणिक चेतना को रोक रखने की यौगिक शक्ति थी ही, परमात्मा ने भी साक्षात् उपस्थित होकर सहयोग किया।

12 सितम्बर, 2014 को अपराह्न 4.00 बजे दिल्ली से एअर एम्बुलेंस उड़ा। गोरखपुर के आसमान में तड़कती बिजली ने स्वागत किया, बादलों ने गोरखपुर की धरती को धोकर स्वच्छ कर दिया। 15-20 मिनट की मूसलाधार बारिश के बाद बादलों ने पानी रोक लिया। एअर एम्बुलेंस गोरखपुर की धरती पर सायंकाल 6.00 बजे उतरा। साथ चल रहे मेदान्ता एवं गुरु गोरक्षनाथ चिकित्सालय के चिकित्सक विधाता की लीला और महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की यौगिक शक्ति का साक्षात् दर्शन कर रहे थे। एअरपोर्ट पर पहले से तैयार गुरु गोरक्षनाथ चिकित्सालय की एम्बुलेंस महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज को लेकर श्री गोरक्षनाथ मन्दिर परिसर की ओर चल पड़ी। योगी आदित्यनाथ जी महाराज साथ थे। उनके चेहरे पर सन्तोष झलक रहा था कि महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज अपनी इच्छानुसार गोरक्षनाथ मन्दिर पहुँचने जा रहे हैं। लगभग सायं सात बजे गोरक्षनाथ चिकित्सालय में पहले से ही पूज्य महन्त जी के लिए तैयार विशेष चिकित्सा कक्ष में उन्हें ले जाया गया। मेदान्ता से साथ आए चिकित्सक और गुरु गोरक्षनाथ चिकित्सालय के चिकित्सकों की टीम ने अपना सर्वश्रेष्ठ उपचारात्मक प्रयास प्रारम्भ कर दियां किन्तु नाथपंथ के महान साधक के सामने सभी बेबस। पूज्य महन्त जी अपनी ऐहिक यात्रा पूरी कर चुके थे। श्री गोरक्षनाथ मन्दिर परिसर तक पहुँचकर यहाँ की आध्यात्मिक आबोहवा में वे परमशान्ति पा रहे थे। लगभग दो माह तक अपने विधि -विधान को टाल देने वाले विधाता धरती के इस महामानव को अपने में समाहित कर लेने के लिए जैसे स्वयं साक्षात् हों। लगभग डेढ़ घण्टे तक चिकित्सकों की जद्दोजहद काम नहीं आयी। योगी आदित्यनाथ जी महाराज के रूप में अपना ऐहिक जीवन स्थानान्तरित करते हुए गोरक्षपीठाधीश्वर परमपूज्य महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज रात्रि आठ बजकर तीस मिनट पर ब्रह्मलोक पथ पर चल पड़े ...।

भारतीय राष्ट्रीयता के अनन्य साधक, सामाजिक समरसता के अग्रदूत, हिन्दू धर्म-संस्कृति के पथ-प्रदर्शक का मृत्युलोक को त्याग देने के समाचार से देश हतप्रभ था, शोकमग्न था। देखते-देखते

महानगर गोरखपुर की दुकानें बन्द हो गयीं। सड़क पर सन्नाटा तोड़ते शोकाकुल नगरवासी श्री गोरक्षनाथ मन्दिर की ओर चल पड़े। जिला प्रशासन गोरक्षनाथ मन्दिर पहुँच चुका था। अश्रुपूरित नेत्र एवं रुँधे गले से पूज्य योगी आदित्यनाथ जी महाराज ने 13 सितम्बर को जनता दर्शन एवं 14 सितम्बर को समाधि की घोषणा की। गोरक्षनाथ मन्दिर में पशु-पक्षी सभी शान्त थे। पेड़-पौधों ने भी ऐसी चुप्पी माध रखी थी जैसे आज वे हवा के झोंकों के बीच हँसना-मचलना भूल गए हों। शोकमग्न गोरक्षनाथ मन्दिर परिसर के सन्नाटे में शान्तिपाठ का स्वर अपने आराध्य इस महामानव के परलोकगमन का साक्षी बन रहा था।

13 सितम्बर को ब्रह्ममुहूर्त से ही भक्तों का मन्दिर आना प्रारम्भ हो गया। भगवान् भास्कर भी गोरक्षपीठाधीश्वर को ब्रह्मलोक यात्रा पथ को प्रकाशित करने में लगे थे। उनकी इस लीला को मेघों ने ढक रखा था। पूज्य महन्त जी महाराज का समाधियुक्त शरीर दर्शनार्थ स्थापित करने से पूर्व भक्तों एवं दर्शनार्थियों की कतारबद्ध भीड़ बढ़ती जा रही थी। उनके जयघोषों के साथ साढ़े आठ बजे गोरक्षपीठ के उत्तराधिकारी पूज्य योगी आदित्यनाथ जी महाराज ने विधि-विधानपूर्वक परमपूज्य महन्त जी महाराज को भक्तों के दर्शनार्थ प्रस्तुत किया और घण्टों पंक्ति में खड़े रहकर शोकाकुल भक्त पूज्य महन्त जी महाराज का दर्शन कर उन्हें पुष्पांजलि अर्पित करने लगे। उनका दर्शन कर पुष्पांजलि देने का यह क्रम अगले दिन उनके समाधिस्थ होने तक चलता रहा।

14 सितम्बर को निशा की कालिमा का रंग जैसे-जैसे हल्का होता गया, भोर से ही वरुण देवता गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की समाधि के साक्षी बनने को बेताब हो उठे। उन्होंने अपने कोष का सारा जल ब्रह्मलीन महाराज जी को नहलाने हेतु गोरखपुर में उड़ेल रखा था। मूसलाधार बारिश में भी श्री गोरक्षनाथ मन्दिर का परिसर भक्तों-श्रद्धालुओं से खचाखच भर चुका था। देश भर से साधु-सन्त श्री गोरक्षनाथ मन्दिर पहुँच चुके थे। दस बजकर पचास मिनट पर भारत के इस महान राष्ट्र सन्त की समाधि तय थी। समाधि के समय एकाएक जल-वर्षा बन्द हुई और फिर पुष्पवर्षा के साथ गुरु श्री गोरक्षनाथ मन्दिर की परिक्रमा कर विधि-विधानपूर्वक राष्ट्रीयता के अनन्य साधक एवं इस शताब्दी के महामानव ने महासमाधि ले ली। हम सभी विधि के विधान के आगे बेबस खड़े देखते रह गए........।

(परमपूज्य महाराज जी के जीवन-वृत्त का मुख्य अंश उनके अभिनन्दन ग्रन्थ "राष्ट्रीयता के अनन्य साधक : महन्त अवेद्यनाथ" की रचना के समय उनसे बात-चीत एवं विविध प्रामाणिक स्रोतों पर आधारित है।)

Glimpses from the Mathematical Heritage of Bharata

V. Ramanathan*

Abstract: From the myriads of scientific, technological and medicinal marvels of our country, a few glimpses are presented in this descriptive paper in order to enthuse readers to further dig deeper in this topic and unearth several treasures. Encoding numbers through letters words and verses has been the pinnacle of creativity of our ancient scholars by virtue of which the texts were made easy to be remembered. Lyrical verses were possible to be composed for conveying beautiful mathematical results. In this essay, the numbering system and the coding system to represent numbers by alphabets is introduced along with examples.

Introduction

Bharat, known to the world as India, has a scientific heritage that had its mark in almost all spheres of science, technology and medicine. Unfortunately, due to various reasons, paucity of the awareness of such a glorious heritage amidst our students in particular and citizens in large is indeed not desirable. Contrarily there are some sections of the society, due to their hyper-nationalism make tall claims of the heritage without backing it with proper evidence or information. Consequently the newer generations are the collateral damage as they are not given the proper information about our scientific heritage or are made to repel anything and everything concerning India's past. Such information should have been disseminated en masse through the state-funded and regulated education institutions but we have clearly failed in this venture too. This failure is partly designed and partly per chance.

Forces both within the country and those from outside have played a major

*Department of Chemistry, IIT(BHU) Varanasi 221005 U.P. ● युगद्रष्टा ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की 50वीं एवं राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 05वीं पुण्यतिथि के अवसर पर आयोजित सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला में दिनांक 20 अगस्त 2019 को दिया गया व्याख्यान।

influential role in shaping the narrative of the history of our country by and large. It is indeed well known that the colonial scholars interpreted the history of Bharat in such a way that events will not predate the birth of Christ. Consequently several of our country's scientific achievements were either suppressed or have got lost in oblivion. If this is the contribution by the international forces, there exists a faction in our own midst that abhors and would like others too to abhor anything that is to do with India's past. Such a mentality is meted out in the pretext of not getting regressive. For such a faction of our people, India came into existence only from 1947 and for all the centuries prior to that, it was a work in progress where one invader after the other helped civilizing the native people ending finally with the British who readied the nation for enjoying its independence. Incidentally it is this group that has occupied high seats of power and influence in most of the offices of education. Hence it is indeed obvious that information pertaining to the scientific heritage of our country is either thrown out of the window on purpose or was met with a blind eye.

It is indeed in the past few years that resurgence in Indic knowledge system is witnessed within the country. There is a growing interest in learning about our scientific past amidst the common people and scholars of different domains. Many conferences are dedicated to unraveling and relooking at our scientific past. With a similar spirit of creating awareness and enthusing the readers in delving deeper in our country's scientific past, this paper gives a brief glimpse at few elements from India's scientific glory, particularly from the fields of mathematics, astronomy and medicine.

Glimpses from India's mathematical heritage

Unlike the contemporary pedagogy and curriculum, in most of the ancient world and particularly in India, education was not compartmentalized. It was rather holistic and students were taught was considered essential for both their material and spiritual uplift. Mathematics, particularly computation played a major role in all walks of profession ranging from music to temple architecture through town planning. It was referred to as गणित that combined several branches of maths as we recognize today. It is said,

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा
तद्वेदाङ्ग शास्त्रणां गणितं मूर्धनिवर्तते

"Like the crowning crest of a peacock and the shining gem in the cobra's hood, mathematics is the supreme *science*"

From very ancient times, mathematics has played a vital role in shaping our civilization. From early on we had pioneered in the domain of representation of numbers.

The fact that the entire world follows the decimal place value system that has had its origin in Bharat is testimony to our mathematical prowess, succinctly reminisced by none other than Albert Einstein himself in the following words,

"We owe a lot to the Indians, who taught us how to count, without which no worthwhile scientific discovery could have been made" (Quote taken from the pamphlet of ICM 2010)

Numeracy does not confine to merely the knowledge of numbers but in fact encompasses the non-trivial and quite demanding aspect of representation of numbers. Different civilizations evolved their own indigenous representation of numbers like the sexagesimal, vigesimal etc. As mentioned before, the decimal system that originated from India is one of the early representations that is in vogue. Decimal is a system of representation based on the place value of the numbers, we did evolve unique and intelligent systems of writing numbers namely the *bhootasankhyaa* (भूत संख्या), *Aryabhateeya* (आर्यभटीय) *and katapayaadi* (कटपयादि) systems. In the following paragraphs these three systems of Indian numeration are explained briefly.It is indeed pertinent to note that the Indian number systems must be read from right to left as informed by the aphorism अंकानाँ वामतो गतिः

Bhootasankhyaa (भूत संख्या)

As the name implies this kind of numeration use words of elements to represent numbers. This kind of numeration has both advantage and disadvantages. Advantage is that it gives ample scope for the author to use any words of choice to compose the verse in a metrical form. Disadvantage is that certain words become degenerate for instance, the word Brahma could mean 1 as well as 3 or 4 depending on the way one understands the word in its context. From advaitic point view it will be one and Puraanic point of view it will be 3 or 4 because Lord Brahma is supposed to have 3 or 4 faces (depending upon the kind of Purana one reads). Nevertheless this system has widely been used by scholars in yesteryears for explaining the mathematical operations to be performed for a particular task, say calculating the ratio between the ratio between the circumference and diameter of a circle, or for giving the time stamp of a composition. We will see few of them as examples in the paragraphs to follow. . In the following table a summary of possible words and the number that they stand for is summarized.

Number	Words
0	खKha, आकाशaakaasha, अम्बरambara, पूर्णpoorna
1	चंद्रchandra, इंदूindu, हिमकरhimakara, शशिshashi, सोमsoma, कलानिधि kalaanidhi, राजraaja, सुधांसुsudhaansu, नक्षत्रपतिnakshatrapati, राजनीशrajanîsha
2	नेत्रnetra, बाहुbaahu, कर्णkarna, पक्षpaksha
3	अग्निagni, रामraama, त्रिलोचनtrilochana, त्रिपुरtripura, त्रिलोकtriloka, कालkaala, गुण: guna
4	वेदा:veda, युगा:yuga, सागरsaagara
5	भूतbhoota, बाणbaana, पर्वparva, इंद्रियindriya
6	शास्त्रshastra, ऋतुrtu, रसrasa, दर्शनdarshana, आगमaagama
7	ऋषिrshi, पर्वतparvata, द्वीपdveepa
8	मातँगmaatanga, वसव:vasava, दिक्पालका:dikpaalaka
9	ग्रहgraha, रत्नratna, अंकanka, निधिnidhi, प्रजापितprajaapati, रंध्रrandhra

Now let us see some examples. Bhaskara II was one of the pioneering mathematicians of his time who in fact laid foundations for calculus. One of his celebrated works is siddhaanta-shiromanee where the opening verse is:

rasa-guna-poorna-maheesamashaka-n[pasamaye 'bhavatmamotpatti% /
rasa-guna-varsenamayaasiddhaanta-shiromaneeracitah //

This verse is actually a time stamp where Bhaskara II says that he was born in 1036 Shaka era (1114 CE) and that he completed this work when he was 36 years old. rasa-guGa-poorGa-maheesama in the first line represent the numbers 6,3,0 and 1 which corresponds to 1036 when read from right to left. Similarly the words rasa-guna in the second line corresponds to the number 36.

In the agricultural work called Krisiparaashara by paraashara mentions a method to determine the type of cloud in the following verse (v.28)

Shakaabdamvahnisanyuktamvedabhaagasamaav[tam
shesammeghamvijaaneeyaataavartaadiyathaakritam

Here in the first line of the verse, the words, vahni and veda are actually numbers 3 and 4 respectively. Without going into the details, this verse says that the Shaka era

number must be added by 3 and divided by 4 and then few other operations follow to determine the type of cloud.

Madhava was one of most celebrated mathematician cum astronomer of his time. He is credited with most of the mathematical results that were later rediscovered by Europeans either independently or by following him. He uses Bhutasankhya system to give the value of pi in the following verse:

माधवाचार्य पुनः अतोप्यासमसन्नतमां परिधिसङ्क्यामुक्तवान् -
विबुधनेत्रगजाहिहुताशनत्रिगुणवेदभवारणबाहवः।
नवनिखर्वमिते वृतिविस्तरे परिधिमानमिदं जगदुर्बुधाः॥

The second line has the encoding which is decoded as below:

Vibudha = 33, netra = 2, gaja = 8, ahi = 8, hutaashana = 3, triguna = 3, veda = 4, bha = 27, vaarana = 8, baahu = 2. So the number is 282743388233. And the word navanikharvain the last line represents 10^{11}.The meaning of the whole sloka is

$$\pi = \frac{2827433388233}{9 \text{ x } 1011} = 3.141592653592$$

This sloka gives the value of pi correct up to the 10^{th} decimal place.

Let us look at another example from the astronomical work called Aryabhatiya written by Aryabhata. Although Aryabhata had invented another numbering system, he has made use of bhutasankhya too in several places. Let us consider the following example:

गुरुभगणा रशिगुणा आश्वयुजाद्या गुरोरब्दाः
गुरुभगणानाम संख्या जिनयमवेदऋतु हव्य भुजतुल्या

This sloka describes the number of days in Jupiter's revolution around the sun using bhutasankhya system. The exact meaning is, "The revolutions of Jupiter, multiplied by राशि (12) are the years of Jupiter, called Ashvayuja etc.: his (Jupiter's) revolutions are equal to the number of Junas जिन (24), a couple यम (2), the vedas वेद् (4), the seasons ऋतु (6) and fire हव्य (3) i.e., 364224"

Aaryabhameeya (आर्यभटीय) system

This system of encoding numbers was invented and exclusively used by Aryabhata himself in his astronomical treatises. If we give the sentence "bhaapakramogrihaamshah

or - भ अपक्रमो गृहाँशः'' to even the best of sanskrit scholars, they will not be able to translate or understand it fully without the knowledge that here Aryabhata code is in place. The letter bha stands for the number 24 and the sentence would then mean, "the declination of planet (earth) is 24 degrees." So it is imperative to have complete understanding of this type of numeration in order to understand certain astronomical texts.

In this system the Sanskrit consonants are divided into two groups namely varga and avarga as shown below:

Varga consonants and their corresponding numerical value

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
11	12	13	14	15	16	17	18	19	20
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द्	ध	न
21	22	23	24	25					
प	फ	ब	भ	म					

Avarga consonants and their corresponding numerical value

30	40	50	60	70	80	90	100
य	र	ल	व	श	ष	स	ह

The vowels play a different role and they represent the powers of 10 depending on which type of consonants they combine with. Their values are shown below:

	अ	इ	उ	ऋ	ए	ओ	लृ	ऐ	औ
With Vargaconsonants	10^0	10^2	10^4	10^6	10^8	10^{10}	10^{12}	10^{14}	10^{16}
With Avarga consonants	10^1	10^3	10^5	10^7	10^9	10^{11}	10^{13}	10^{15}	10^{17}

Thus the word ख्युघृ would represent the number 43,20,000. The explanation of this decoding is summarized in the following table where the letters A and V stand for Avarga and Varga respectively:

Category Vowel	V !	A r	V r	A u	V u	A i	V i	A a	V a
Given syllable Its value	-	-	- gh 4	y 3	kh 2	- 0	- 0	- 0	- 0

Aryabhata has encoded the entire sine table in this cryptic aryabhatiya numeration in the following verse:

मखि भखि फखि धखि णखि ञखि ङखि हस्झ स्ककि किष्ग श्घकि किघ्व।
घ्लकि किग्र हक्य धकि किच स्ग झश ङ्व क्ल प्त फ छ कला-अर्ध-ज्यास्॥

For a detailed explanation of this sine table, readers are directed to the popular article penned by Roddam Narasimha on this topic and the same is given in the bibliography below.

kamapayaadi (कटपयादि) system

This is the third system of numeration that is widely used by the Indian mathematicians and astronomers. In this system it is only the consonants that represent numbers and vowels do not represent any numbers unless the vowels appear independently, as will be the case when a word will begin with a vowel, when it would represent the number 0. The other consonants are mapped to numbers in the following manner:

1	2	3	4	5	6	7	8	9	0
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द्	ध	न
प	फ	ब	भ	म					
य	र	ल	व	श	ष	स	ह		क्ष

This system offers much greater flexibility in terms of the choice of words for representing a number yet not creating any ambiguity in decoding them. For instance the words Raamaराम and raashiराशि would both represent the number 52.

One of the pioneering Indian astronomers from the past is Nîlakantha whose magnum opus is Tantrasngraha which is one of the exhaustive texts on astronomy. The first and the last line of this text are as follows:

hevishnonihitamkrtsnamहेविष्णोनिहितमकृत्स्नम

lakshmeeshanihitadhyaanaihलक्ष्मीशनिहितध्यानैः

A cursory reading would indicate that the author is merely praying to lord Vishnu and Lakshmi in the first line and the last line respectively. A deeper reading with the aid of katapayadi system of numeration would indicate the Kali-ahargana (which is the number of days elapsed since the beginning of the kaliyuga) corresponding to the dates of commencement and completion of this work. The numbers represented by the two phrases are 1680548 and 1680553 and they correspond to March 22, 1500 and March 27, 1500 in the Gregorian calendar.This also shows the chronosensitivity of scholars who have made creative use of time stamps in their works.

This style of encoding numbers was not just confined to mathematicians and astronomers, rather we find them used by scholars from apparently disconnected fields like religious poets and musicians as well. For instance, Naaraayanabhattatiri of Kerala, the one who re-narrated the entire bhagavatham in 1000 verses in a composition called NaaraayaGeeyam ends by the following sentence:

Aayuraarogyasoukhyamkriishnaaआयुरारोग्यसौख्यम्कृष्णा

Here the first word is a code in Katapayadi that decodes as 1712210 once again representing the number of days elapsed since the beginning of Kali yuga and this corresponds to December 8, 1586 in the Gregorian calendar. The decoding is summarized in the table below:

आ	यु	रा	रो	ग्य	सौ	ख्यम्
0	1	2	2	1	7	1

In another astronomical text called Karanapaddhati by PuthumanaSomayajithe value of pi is encoded in the following verse:

अनूननून्नाननुन्ननित्यैस्समाहताश्चक्रकलाविभद्राः।

चण्डांशुचन्द्राधामकुंभिपालैर्व्यासस्तदर्द्धांत्रिभमौर्विकस्यात्।।

anoonanoonnaananunnanityai

ssmaahataashcakrakalaavibhaktoh

chandraamshucandraadhamakumbhipaalair

vyaasastadarddhamtribhamaurvikasyaat

This sloka gives the circumference of a circle of diameter, *Anoonanoonnaananunnanityai* (10,000,000,000) as *chanraamshuchandraadhamakuCbhipaalair* (31415926536) indirectly giving the

value of pi.

Conclusion

Indian mathematical heritage is a gold mine giving vital information. This essay merely introduces a miniscule portion from the vast oceanic expanse of Indian mathematics. It is indeed about time that the educational bodies of our country take cognizance of this treasure so that these can be introduced in the scholastic systems. It is only worth concluding that even though several scholars in the early twentieth century had unearthed the antiquity of Sulba Sutra that gave the trigonometric relations as we understand today as well as the relations of a right angle triangle that is currently known as Pythagoras theorem, generations of Indian students were kept in dark about this. This is a clear strategy to wipe out the cultural as well as intellectual history of our country rendering her citizens vulnerable to invasions. It is indeed a pity that what Acharya Pingala wrote cryptically as परे पूर्णम् इति to arrive at the coefficients of binomial expansion (see figure below) is almost forgotten by the world because it remembers the triangle named after Pascal who arrived hundreds of years after Pingala.

1

1 1

1 2 1

1 3 3 1

1 4 6 4 1

1 5 10 10 5 1

1 6 15 20 15 6 1

1 7 21 35 35 21 7 1

References and Further Reading:

1) Amartya Kumar Datta, "Mathematics in Ancient India ", 2002 Resonance April

2) A. Seidenberg, "The Origin of Mathematics" in Archive for History of Exact Sciences, 1978

3) A. Seidenberg, "The Geometry of Vedic Rituals in Agni, The Vedic Ritual of the fire Altar" Vol II, Ed., F. Staal, Asian Humanities Press, Berkeley 1983

4) BibhutibhushanDatta, "Ancient Hindu Geometry: The Science of the Sulbas" Calcutta University Press 1932

5) Georges Ifrah, "The Universal History of Numbers" John Wiley and Sons, 2000

6) G. G. Joseph, "The Crest of Peacock: The non-European Roots of Mathematics" Penguin 1990

7) Charles M. Whish, "On the Hindú Quadrature of the Circle, and the Infinite Series of the Proportion of the Circumference to the Diameter Exhibited in the Four S'ástras, the TantraSangraham, YuctiBháshá, CaranaPadhati, and Sadratnamála" Transactions of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland.Vol. 3, No. 3 (1834), pp. 509-523

8) SubhashKak, "Birth and Early Development of Indian Astronomy" Jan 2001 arXiv:physics

9) Kim Plofker, Mathematics in India; Princeton University Press, Princeton, NJ, 2008

10) K. Ramasubramanian and M.S. Sriram, Tantrasagraha of Nlakan .t .ha Somayaji, with a foreword by B. V. Subbarayappa, Culture and History of Mathematics, 6. Hindustan Book Agency, New Delhi, 2011.

11) Kripa Shankar Shukla and K.V. Sarma (Ed.), ¯Aryabhat¯iya of ¯Aryabhata, Critically Edited with Translation, Indian National Science Academy, New Delhi, 1976

12) G. Thibaut, The ´Sulvasu¯tras, The Journal, Asiatic Society of Bengal, Part I, 1875, Printed by C.B. Lewis, Baptist Mission Press, Calcutta, 1875; Edited with an introduction by DebiprasadChattopadhyaya and published by K P Bagchi and Company, Calcutta, 1984; the original also published as a book, Cosmo Publications, 2012

13) S. G. Dani, "Ancient Indian Mathematics: An Overview" http://www.tifr.res.in/~archaeo/FOP/FoP%20papers/ancmathsources_Dani.pdf

14) VenketeswaraPai, K. Ramasubramanian, et al. "KaraGapaddhati of PutumanaSomayâjî (Sources and Studies in the History of Mathematics and Physical Sciences)" Springer; 1st ed. 2018 edition

15) R. Anusha et al. "Coding the Encoded:Automatic Decryption of kaTapayAdi and Aryabhata's Systems of Numeration" 2017 Current Science 112(03):588

16) RoddamNarasimha, "Sines in Terse Verse" 2001 Nature 414, 851

Know Your Armed Forces

Lt Gen Manvender Singh, PVSM, AVSM, VSM (Retd)*

Introduction

The Armed Forces of India are a most dedicated and capable instrument of national power. Individually and collectively, the Indian Army, Navy and the Air Force posses **unfailing will to combat external, internal, collusive, off-shore and out of area threats to national security**. Their organisational strength and deep rooted ethos make them a formidable force that continues to do the nation proud in every contingency including peace keeping missions abroad. Ably supported by various defense agencies, scientific community and industry, the Armed Forces are redoubtably one of the best combat organisation in the world. Nothing above could have been possible without **the encouragement, admiration, respect, trust and faith** reposed by the people of India. It is this inspiration that helps build in the Armed Forces required **self belief, pride and deep sense of commitment**. No soldier could accomplish extraordinary acts of valour and sacrifice without the realization that the **Nation stands solidly behind each of them and their dependents whether it be war or peace.** Despite the most enviable record, the Armed Forces have been historically reactive, cautious to technology and at best an operational level force. The present-day political leadership could reverse the trend and encourage transformation of the force structure to have greater strategic capacity.

As India moves ahead in the New World and its citizenry becomes more aware, searching questions are bound to be asked on the hitherto insulated and often secretive defense services. Undeniably, it is and would be a citizen's right to know about their Armed Forces. This increased urge for awareness has probably led to a flurry of debates on national security over the mass and social media. **Regrettably the quality and tenor of these debates do not do justice to either creating higher awareness about the defense services, or bringing much needed respect to them.** It is in this background that it becomes necessary to 'Know Your Armed Forces' so that comments made on the

---

*Retd. Lt. General, Indian Army ● युगद्रष्टा ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की 50वीं एवं राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 05वीं पुण्यतिथि के अवसर पर आयोजित सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला में दिनांक 17 अगस्त 2019 को दिया गया व्याख्यान।

Services are well thought out and informed decisions made. In this article, it would not be possible to cover the entire range of issues involved as the subject is vast and diverse. **However an effort has been made to touch upon facets concerning military ethos that are either unknown to the citizenry, or at times misrepresented**.

It is often stated globally that the Armed Forces are loved by the people, disliked by the bureaucracy and distrusted by the politician. At the outset let it be clear that the **Indian Armed Forces belong to people, receive mandate for execution of tasks through elected representatives and are entirely dedicated to follow the Constitution if India.**

The Armed Forces

Managing Violence

Human civilisation has been fraught with constant violence and war undiminished even by acceptance of democracy. Of the past 3451 years of recorded history, only 268 have not seen war. In the modern world, War has become in art where **'opposing states prosecute violence in the entire spectrum using military organisations with suspension of international law for subjugation of an adversary and determining future destiny of society'**. It will be quite evident from the very definition that the **military is primarily designed to prosecute and manage violence in all dimensions against an identifiable and declared enemy**. The operative dimensions of the forces include land, sea, air, subsurface, space and cyberspace domains. The relatively new dimension of cyberspace has assumed considerable significance as it has the capacity to network operations in all other dimensions. While the Armed Forces are designed to manage violence, let it be clear that soldiers by nature abhor violence in any form. **Having seen gruesome violence levels that technology has placed at their disposal and the accompanying death or destruction, responsible forces choose to remain restrained unless compelled by the adversary. Soldiers in service cannot be misunderstood for mercenaries working for financial gains.**

Managing Perceptions

Of late, **shaping perceptions by clever use of lexicon and misleading information** spread through state of art information communication technology has added another challenging dimension. The sudden and uncontrollable growth of radicalisation, fundamentalism, regionalism, alienation and polarization can all be largely attributed to the new means of communication. The military has to jointly tackle these new threats along with other government organisations. **In addition, capacity of inimical nations to use internal and external media, non-governmental organisations, lobbies**

and other forms of pressure groups have considerably increased. Therefore, failures to contain aggressive use of information communication technology by the adversary can have far-reaching implications in the hinterland and border combat zone. It also needs to be realised that the real-time speed, reach and size of information that can be transmitted have placed conduct of **operations particularly for ground forces under intense scrutiny and with legal ramifications**. The unbridled power of the media can also shape objectivity of assessments, build pressure and probably force leadership in taking miscalculated decisions. **Content generation and sharing by the citizenry must therefore be more responsible, failing which, inimical interests will carry home the advantage.**

Unlimited Liability

The Armed Forces are an instrument of national power designed to use force when called upon. The mandate for its application is given by the people through the elected government. Such force can be directed against an external enemy, or own citizens who have turned insurgents, terrorists or are simply engaged in creating public disorder. Use of force is bound to cause loss of lives and limbs to those in the line of fire and amongst soldiers as well. While application of force against an external enemy would automatically receive the backing of the nation, confused situations arise when forces are required battle internal threats. It is for this purpose that during violent situations created internally, the Armed Forces are given special legal powers to restore law and order. Ideally, these powers should be used for the shortest possible time. Regrettably, this does not happen and the Armed Forces become crutches for the administration and political establishment who allow festering disputes to prolong.

Of recent, numerous instances have found space in the media calling for judicial intervention against soldiers performing legitimate tasks. Obviously, either a liability for use of force is not understood, or inimical interests are using home-grown proxies to divert and derail the forces from its tasks. It does not mean that erring soldiers should not be proceeded against. However, there is a need to trust the internal disciplinary processes of the Armed Forces which are not only robust, but time tested and swift. It would be most desirable and appropriate if the media and judiciary contribute positively to strengthen existing structures. **It must be remembered that no military organisation could effectively function if the state does not undertake unlimited liability of protecting soldiers for use of force, ensuring their respect, and providing genuine care to soldiers and their dependents**.

Role of the Armed Forces

It is often heard somewhat irresponsibly that 'Armed Forces are meant to kill or be killed'. Nothing is further from the truth. Regrettably such statements show a lack of understanding amongst the populace about their highly professional, humanitarian and patriotic force. In fact the Armed Forces are mandated to **prepare** for possible eventualities, **predict** threats in its entire manifestations, **prevent** reaching a combat situation that could cause incalculable damage, **protect** the borders in all dimensions, undertake **punitive** measures against the enemy if necessary, **provide** assistance to civil administration when called for, and **pursue** any other task assigned by the government in National interest over land, sea or air. Providing options and creating an environment where resolution of conflicts can be accomplished through civility is what the forces try to achieve. **It is reiterated that resorting to violence by application of minimum force for the shortest possible time and with the least collateral damage is a last resort for soldiers.**

Combat, Conflict or Competition

Before we put the Armed Forces in perspective, it is important to understand the manner in which nations enforce their will over the adversary. Direct **combat** for which the Armed Forces were primarily designed, involves use of compelling conventional forces to capture territory, or degrade adversary military capacity. Despite combat becoming a less preferred alternative, it continues to remain relevant. Of late, nations have started to use a wider term called conflict. **Conflicts (of which combat is a part) are designed to defeat the will of an adversary government by creating a state of active antagonism that seeks maximum advantageous space.** Combat therefore is in the military operational domain, whereas conflicts are strategic in nature involving joint responses from multiple government agencies including the military. While the defense structures of most nations keep adequate resources for combat operations, honing capacity for prevention and resolution of conflicts through multiple means are becoming more important.

Strong nations using a **competitive** strategy are now developing asymmetrical capacity designed to self-deter adversaries. For them, creating asymmetry in the periphery not only averts any military embarrassment, but helps protect regional interests or continental influence. Needless to say, asymmetry can only be developed under conditions of strong economy, stable diplomacy, self-reliance and ability to absorb high-technology. On the other hand, asymmetrically weaker nations are forced to divert their scarce resources, find sustained competition unviable, and gradually lose their will to confront. **While it may not be possible for the Indian Armed Forces to competitively develop**

multi-front asymmetry, viable parity in military capacity keeping in mind 'collusivity' would need to be ensured. Such a military structure would obviously require ability to carry out limited multi-front and multi dimensional punitive actions. Paramilitary Forces would also need constant upgrades in order to fulfill their support role.

Resolution of differences through conflict has therefore become complex and ambiguous. While nations choose to avoid direct confrontation, they seem to prefer indirect, unrestricted and often immoral means to achieve their ends. It is this **combination of competition, conflict with options to use combat resources that have given rise to a new concept of war fighting called Hybrid War**. Whatever be the situation the Armed Forces primarily remain a combat resource of a nation to be employed during periods of complete diplomatic failure or uncertainty.

Structure of the Armed Forces

The entire structures of the Armed Forces are designed to jointly defeat contemporary threats to national security, while simultaneously preparing for the emerging environment. This includes resources for maintaining territorial integrity of India, undertaking offensive or defensive tasks for a specified timeframe with defined violence levels, and providing assistance for any other contingency that could develop internally or externally. **Though lesser spoken about, continuous capacity building is vital in order to ensure decisive edge in combat and disallow any military asymmetry with adversaries**. Undoubtedly, maintaining a large Armed Forces establishment is an expensive proposition. Numbers of questions are being raised in the media and Parliament with respect to the size of the Armed Forces and budgetary allocation. As operational level employment of forces recedes, there could be a case for restructuring of forces involving gradual reduction. However, so long as threats exist because of a volatile periphery and unresolved disputes, any restructuring would need to cater for guaranteed deterrence capacity.

Asymmetrical Capacity

In a true democracy like India, the military neither executes violence against an adversary, nor does it partake in any other type of internal conflict management without due authority. However, to execute the will of the people, the Armed Forces have to remain prepared and capable of appropriately dealing with all types of threats, in particular, external threats emerging from unresolved border disputes. In order to ensure viable defense of national borders and provide diplomatic space, **it is most important for the Armed Forces to maintain a combat edge over the adversary. Allowing an**

adversary to gain military asymmetry for use of assertive, coercive or limited force can never be acceptable. It would therefore be most desirable to create definite asymmetry on the western borders in order to undertake proactive punitive actions while being prepared for higher thresholds of conflict. Parity with limited aggressive capability on the ground, and reasonable asymmetry in other dimensions may possibly provide the best option against threats from the North.

Logistic capacity to shift resources in an acceptable timeframe to either of the fronts would need sufficient consideration and funds. **While the Armed Forces remain a third responder in situations of internal strife or calamity,** multi operability of resources would greatly facilitate support to the civil administration. Another factor often not considered other than within the military circles, is the need to provide additional resources for dealing with internal situations arising out of disharmony or cultural fault lines. It must be noted that equipment held with the Armed Forces caters for higher levels of violence and are inappropriate for internal use. As India moves to becoming a major global power, supporting the government in handling out of area contingencies including those emerging from resource rivalries could soon become a possibility. Considerable capacity building would also be required in the fields of sharing intelligence, protecting island territories and space-based assets.

Undertaking Hybrid War

Over the millennia conduct of warfare has considerably changed. From tactical level application of direct force by adversaries in which **capture of territory and plunder** was predominant, warfare graduated to an operational level following the industrial revolution and technological advancements. Mass application of direct force coordinated over land, sea and air designed to achieve **destruction of the adversary military capacity** became more important. However, rapid changes in technology and added dimensions of subsurface, space and cyberspace created an environment with extreme levels of stand-off violence. **Accompanying destruction, high costs, availability of weapons of mass destruction, blurring of military and non-military domains, pressures of globalisation, growth of intelligentsia challenging necessity of military interventions and many other reasons contributed to the present era of hybrid warfare**. For the foreseeable future, India will have to contend with defense against hybrid wars which could be waged by adversaries either individually or collusively.

Hybrid war involves simultaneous use of conventional and unconventional forces in a situation of a temporary or permanent military and non-military asymmetry. Being low cost, clandestine and unrestricted, hybrid conflicts provide

options in which conventional combat operations could be avoided. However, by using unconventional resources to include information warfare, insurgencies, terrorism, crime and manipulated media amongst others, aggressor while retaining invisibility, could exercise flexibility of increasing or decreasing the tempo of conflict. **It also needs to be understood that while earlier forms of war impacted the military or the governance, hybrid wars are designed to engage people as primary targets.** Hybrid wars are therefore designed to paralyse state functioning and cause social panic in a target country, thereby putting adverse pressure on its government. Such social panic could be further accentuated by use of the limited military force to achieve desired goals. Another significant factor of hybrid War is its ability to simultaneously reach the depth areas of the adversary and divert scarce resources. **Besides, hybrid wars become all the more effective in an environment where potential adversaries collude with each other. The very nature of hybrid war is such that it would demand a participative approach of the people and all government agencies.**

Unrestricted War

Unrestricted war is the cheapest form of waging a conflict the art of which has been well-developed along the Indian periphery. Conceptually unrestricted war is use of any means at any time - ends justify the means. There are no rules, morals, limits or set dimensions. Inimical activities can be carried out by creating demographic imbalances by illegal migration, exploiting existing fault lines, subversion, economic manipulation, spreading underground economy, creating threats to infrastructure, agriculture, ecology and supporting insurgencies and terrorism. Creating law and order issues with respect to drugs, smuggling and the use of criminals is also encouraged. Technological superiority in the areas of stealth, biochemical and nonlethal weapons can also contribute significantly to unrestricted war. Developing capability to carry out offensive actions in space and cyberspace can also have a huge impact. Lastly, nations undertaking unrestricted war are hyper media active and simultaneously use legal war to constantly create situations to make adversary population loses faith in governance.

In short, while nations compete with each other and manage their situations of conflict through various means, remaining prepared for combat can never be avoided. It is also true that aim of combat has shifted from capture of territory and destruction or degradation of military to people oriented targets so that they lose confidence in government. **Conduct of combat or warfare must therefore be seen as a shift from the tactical and operational domain to the strategic domain where joint responses and public participation is a necessity. In fact, concept of participatory defense is already finding favour with most developed countries.**

Conduct of The Armed Forces

A few aspects that have received attention in the media with respect to the conduct of the Armed Forces are covered in succeeding paragraphs. There is a need to realise that no quality structure or abundance of resources could possibly substitute for conduct of the Armed Forces painstakingly built over years with immense sacrifice. For maintaining lofty standards and ideals left behind by the soldiers of the past, exceptional care has to be taken during the process of selection, training and subsequent grooming in units. Unsuitable soldiers or officers exhibiting weak discipline or moral courage have to be weeded out from time to time. **It must be remembered that in the Armed Forces it is the soldier's sense of honour that shapes his conscience, while his sense of self pride shapes his actions.** Therefore, to the Indian soldiers 'naam, namak, nishan, iman, izzat & shapath' remain the guiding principles for conduct. These words carry immense significance in the hearts and minds of all soldiers and officers.

Customs & Traditions

While the soldierly attributes of an Indian are legion mainly from the time of the First and Second World Wars, it has to be kept in mind that the then leadership was mostly alien. It is to the credit of the Armed Forces and their zealously maintained culture and traditions that the organisation continues to transform and groom military leaders and soldiers whose calibre and patriotism rivals the veterans of yore. In the services, policies laid down by the hierarchy are converted into standard operating procedures which serve as guidelines for conduct. These procedures are subsequently converted into practices suitably modified to suit respective arms and services in combat or non-combat situations. Over the years successful practices become customs and traditions in regiments, battalions and other services. In order to maintain consistency, ensure that orders are implemented with minimum instructions and supervision, strong customs and traditions play a critical role in the functioning of a military organisation. **The military ethos may at times conflict with civilian values. Therefore the urge to interfere or pass comments/ judgement without adequate understanding may not be in the best service interest. Every time the services are adversely commented upon in public, it must be remembered that some impact would come on service cohesion and the vital officer soldier relationship.**

Social Media

The advent of social media has completely blown away the veil of secrecy and isolation of military cantonments and stations. To the contrary, the informative, interactive, irresistible, invisible and irresponsible power of the social media has created

many challenges. It needs to be realised that imposed information has the potential to inspire implosive situations. **No soldier can remain isolated from the ongoing shift to the information age, in which freedom replaces fear**. Accruing behavioural changes among soldiers of all ranks could cause greater unpredictability, intangibility and unreliability. As percentage of urban soldiers replace the hardy village folk, the rank and file of soldiers will definitely be more educated, liberated, confident, connected and more demanding. Rise of citizen journalism, selfie mentality, collective individualism and silent scorn will make its presence felt. Issues related to military values, organisational relevancy, fiscal probity, incompatible legacies, lack of transparency or falling standards are likely to dominate social and mass media putting considerable strain on service leadership. Influenced perceptions of soldiers, irresponsible content generation or sharing, defamation and obstructionism, gossip and cynicism, undertaking online jobs and many such issues are likely to come up. Challenges posed by the irreplaceable social media will therefore need to be confronted. **The robust military organisation in India must be trusted to deal with future behavioural changes amongst the next generation officers and soldiers. Paranoid comments at this transitory stage may not be a worthy contribution.**

Aspirations of People

For any nation and its people, the **military is a crucial and ultimate resource. It would be natural for the people to expect that the Armed Forces would be capable, cost-effective and in a high state of preparedness to contain multi-front and multi-spectrum threats emerging from a hybrid war.** Besides being able to protect the borders, it would also be expected that the Armed Forces assist the government in every possible way to include undertaking military diplomacy, peacekeeping missions abroad, maintenance of law and order under exceptional circumstances, and assistance during natural calamities. In pursuance of assigned role and tasks, the people would also expect that the conduct of the Armed Forces be always exemplary and inspiring, and that, use of force be restrained, and moral in keeping with established laws and conventions. In the process of using force, the Armed Forces would be voluntarily restrained, moral in conduct and follow laid down laws, human rights conventions and various other international codes accepted by the government. Matching such exacting standards and requirements would by no means be easy. **Therefore, constructive criticism through appropriate forums may have better impact than resorting to emotional outbursts in the social or mass media'.**

Military Effectiveness

Military effectiveness of a nation's Armed Forces is a sum total of force

cohesion and ethical leadership. Force cohesion is a state which brings about complete unanimity and understanding in all ranks with respect to role and mission, guidelines for conduct and behaviour during military operations, and absolute trust and faith in the leadership. None of this would be possible in war if not practiced during peace. It will be surprising to note that cohesion develops fastest in situations of collective uncertainty, fear, fatigue, discomfort, provisions, danger, death, loneliness, separation and self-denial amongst others. In order to develop comradeship during peace time, training conditions are deliberately made harsh. It must also be realised that while it is necessary for soldiers to have exceptional endurance to undertake sustained fighting, officers in addition, have to be mentally robust. Conditions to make endurance and robustness a habit have to be created so that each level of command can effectively execute desired military drills and procedures when in combat. In Indian conditions, such training becomes all the more difficult as soldiers have to be trained for various contingencies in a variety of terrains to include deserts, riverine, mountainous, jungles, high altitudes, glacial, airborne, seaborne and international peacekeeping missions. Training for multi-front and multi-terrain environment becomes all the more challenging under limited financial resources.

While developing human cohesion is critical, added trust and faith in leadership is inescapable for building high morale. Conviction for the cause, complete faith in equipment and weapons, sound administration, transparency in management and a sense of exclusive identity are all necessary to build first-class fighting units. Sustained practice to refine military drills, procedures and manoeuvres also helps build competence and added confidence. Morale of soldiers can never be high without utmost respect and a feeling of care earlier explained in unlimited liability. Assured protection for use of force, commitment to pursue the calling, high state of discipline, support of family and consistency of policies that allow time-tested traditions, are all vital to develop the ultimate battle winning factor called 'spirit'. Cohesion, morale and spirit when combined together bring in soldiers and military units the ability to exhibit great sacrifice and commit exceptional acts of valour. **Those inimical to the Armed Forces and with a desire to weaken soldierly cohesion would make every attempt to create differences within the echelons of military control.**

High Moral Ground

Maintaining ethicality and a high moral ground in conduct of war or peace is also essential. Military leaders are the custodians of service ethos which hinge on national values, discipline and military effectiveness. Maintaining national unity, developing high patriotism amongst all ranks, promoting ideals of sacrifice, ensuring peace, developing harmony in areas of employment and protecting the heritage and dignity of the nation are all important to the forces. **The core values enshrined for the services**

range from duty, honour, loyalty, integrity, courage, respect and selflessness. In order to ensure their service ethos, the military remains secular, apolitical and somewhat insulated from the public. It is the responsibility of the leadership to ensure moral use of force in every eventuality, and that subordinates remain unfailing in their conduct. Therefore, **any dilution to quality of military leadership can only be at the cost of service effectiveness.** It also needs to be stated that officers are committed to living an uncommon life with extraordinary responsibilities and high standards. Any moral fading or corrosiveness due to prolonged combat in an immoral environment can only be overcome through reflection, self policing and institutional strength. As military leaders have to make repetitive discretionary judgements which are morally diverse, they would need to be equally equipped with both competence and character. **No service ethos or effectiveness can be sustained if officers have weak morals and convenient values.**

Leadership in the Armed Forces

Like most organisations, the Armed Forces are managed by a **professional leadership whose responsibility is to ensure an efficient *structure* capable of carrying out assigned *role and tasks* within the laid down principles of *conduct*.** Officers are the custodians of service ethos and effectiveness, and hence, any dilution in the quality of leadership could have serious implications. The Indian Armed Forces have been fortunate to have some of the best officer training academies in the world. Amongst them, the National Defence Academy is the only one of its kind and imparts the spirit of jointmanship in addition to academic excellence. Such has been the quality of leadership training institutions in India that it has become impossible to accommodate requests from friendly foreign countries.

Smart Leadership

As future war fighting becomes more complex, uncertain and violent, military leadership would need to adapt to an ambiguous environment where the adversary is invisible, immoral, unpredictable and smart. Such enemies or adversaries are likely to enjoy collusive patronage and have the capacity to caliberate threats posed by them in order to seriously disupt lives of common people and impair their objective reasoning. Smart leaders of the future will therefore need to be participative, proactive and intellectual in their approach. They will need to be aware, alert, able, astute, accountable, acceptable, adaptable and awe-inspiring at the same time. Absorbing and staying abreast with the latest technology could possibly be the only way to convert vulnerabilities to opportunities.

Command Orientation

The command orientation of the Army is vital and deserves to be protected and strengthened. The entire system is built on a control structure designed to conduct operations at the tactical, operational and strategic level. While tactical leadership responsible for execution of tasks is divided into junior and mid-level leaders, operational and strategic leaders are referred to as senior leadership and concern themselves with planning, preparation and coordination. **Such a command orientation is most essential to ensure adequate layers of overwatch, strict control and constant evaluation so that failures or reversals are minimised**. As stated earlier on many occasions, dilution in the standards of leadership has to be unacceptable if the aspirations of the people are to be met. It must also be well understood that those leaders who prefer convenience to value-based conduct, can never become desirable custodians of military ethos.

In the changed dynamics of communicative and informative power, leadership will need to review their functional styles and adopt a more friendly approach favouring tolerance, equality and fairness. Lack of austerity and probity, misuse of resources, character glitches, display of wrongful intent, inadequate capacity and competence, whimsical and high-handed attitude, indiscretion or recklessness are some of the issues that could seriously weaken command orientation. In addition, indiscreet social behaviour, assuming unjustified perks and privileges, inability to control trickle-down effect, self preservation through image trap, inappropriate conduct, indifferent commitment, and widening leader led gap could all become good reasons for a declining command structure. The most important would however remain the leadership's inability to ensure essentials of 'unlimited liability' which seeks to guarantee protection, respect and care of subordinates.

Such failings of the leadership could manifest in the form of silent scorn and lack of faith amongst subordinate ranks. Commanders would therefore need to look down and find inspiration through 'wisdom of the crowds' to build better cohesiveness, gain honest feedback, and spread accountability and ownership of decision-making. Issues emerging in the social media would need to be taken cognizance of, and assessed during formal off-line forums before issue of a policy direction. Commanders would also need to display greater moral courage, awareness, increase their visibility and face-to-face interaction, improve communication skills to influence, involve subordinates to point of decision-making, be able to adapt and readapt based on shifting patterns of beliefs, and create institutionalised transparent processes in every aspect of administration and human resource management. **While an honest self reflection is a constant exercise within the Armed Forces, misdirected criticisms from competing organisations reflecting Armed Forces leadership to be superior, disdainful, indoctrinated,**

insecure etc are unfounded and lack any credence.

Conclusion

People respect the Armed Forces because they are an oasis of excellence, truly national and righteous besides being strong and unfailing. It would be natural for the citizenry to feel concerned if the high standards of the Armed Forces appear to weaken in any manner. Desirably, **concerns must be expressed at appropriate forums without being disrespectful or insensitive to service needs**. As expressed in the preceding paragraphs, the three services have adequate internal forums to objectively introspect and remove inconsistencies. Every effort is made to remove undesirable colonial legacies, arrest corrosion of values and improve transparency.

Chanakya stated that threats are external and externally abetted, external but internally abetted, internal but externally abetted and internal threats which are internally abetted. For the military it is easy to deal with threats where an enemy is clearly identifiable. Internal threats arising out of situations in which social control has been lost are obviously most difficult for Armed Forces to control. Adverse situations arising out of poor decision-making, lack of departmental synergy, rising domestic instability, fundamentalism, incapacity to manage less visible operational dimensions, insurgencies, terrorism, non-state actors, irresponsible media and inability to meet multi-front obligations must never be allowed. Hybrid war demanding responses ranging from conflict prevention, reconciliation and resolution will necessitate **proactive and participative** defense. For it to be successful, measures to bring social inclusion, improving maintenance of law and order, and creating an effective perception management programme particularly in own periphery and the neighbourhood would be necessary.

Finally, every patriot must make an attempt to understand their obligation towards all security forces, and consciously increase their awareness on defense matters in order to contribute positively. As a first step, defense science departments in all universities must be energised while the activities of the National Cadet Corps are further popularised. **It must never be forgotten that while it takes centuries to build an effective military organisation; inept leadership, an ignorant public, an unjust government, indifferent policies or an irresponsible media can easily destroy the military forces.**

Aayurveda as Modern Medicine: Prospects, Limitations and Challenges

Anant Narayan Bhatt*

Introduction:

The word Ayurveda is made up of two Sanskrit words "Aayur" meaning life and Veda means "knowledge" therefore; Ayurveda is considered as the knowledge to live healthy and happy life. Ayurvedic knowledge originated in India more than 5,000 years ago and is often called the "Mother of All Healing." It stems from the ancient Vedic culture and was taught for many thousands of years in an oral tradition from accomplished masters to their disciples. The classic Ayurvedic text is compiled as "Charak Sambita" in Atharva Veda, which was written by sages like Charak, however, much of it is inaccessible. The principles of many of the natural healing systems now familiar in the West have their roots in Ayurveda, including Homeopathy and Polarity Therapy. Tibetan medicine and Traditional Chinese Medicine have their roots in Ayurveda. Early Greek medicine also embraced many concepts originally described in the classical Ayurvedic medical texts dating back several thousands of years.

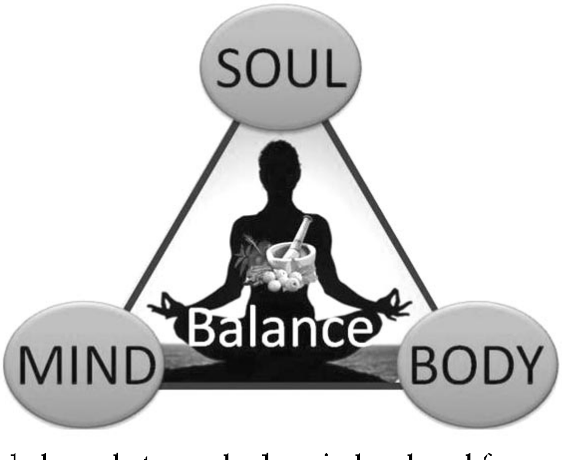

Figure 1: Ayurveda makes balance between body, mind and soul for complete cure of the illness.

*Senior Scientist, Institute of Nuclear Medicine and Allied Sciences, Timarpur, Delhi – 110054, India anbhatt@yahoo.com, anant@inmas.drdo.in • युगद्रष्टा ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की 50वीं एवं राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 05वीं पुण्यतिथि के अवसर पर आयोजित सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला के उद्घाटन अवसर (दिनांक 20 अगस्त 2019) पर दिया गया व्याख्यान।

The concept of Ayurveda is based on a combined study of body, sense organs, mind and soul. Therefore, unlike the various systems of medicine, like allopathy or homeopathy, Ayurveda is not a system of medicine but a science of life and longevity. The philosophy of Ayurveda believes that everything in the universe either dead or alive is connected. If your mind, body, and spirit are in harmony with the universe, you have good health. When something disrupts this balance, you get sick (Figure 1). The factors which can upset this balance are genetic or birth defects, injuries, climate and seasonal change, age, and your emotions. The modern definition of health according to the World Health Organization (WHO) also says it is "the state of complete physical, mental and social wellbeing and not necessarily the absence of disease and infirmity".

According to Ayurvedic scriptures the human body is an assembly of principally following three components,

1. Humours, which is further divided in three Kapha, Pitta & Vata.
2. Tissues or "Dhatu" (Rasa, Rakta, Mansa, Meda, Asthi, Majja & Shukra).
3. Waste products of the body i.e. mala, mutra and sweda.

Thus the total body matrix comprises of the humors, the tissues and the waste products of the body. The growth and decay of this body matrix and its constituents revolve around food which gets processed into humors, tissues and wastes. Ingestion, digestion, absorption, assimilation and metabolism of food have interplay in health and disease which are significantly affected by psychological mechanisms as well as by bio-fire (Agni). Therefore, our food is very important in keeping us healthy and fit.

Fundamental Constitution of the body:

The well being and health of human is dependent on the body structure and composition, therefore Ayurveda focus on the fundamental composition of the body According to Ayurveda, every life on this planet including human body are composed of five basic elements (Pancha-mahabhutas) namely, earth, water, fire, vacuum (ether) and air. There is a balanced condensation of these elements in different proportions to suit the needs and requirements of different structures and functions of the body matrix. The growth and development of the body matrix depends on its nutrition, i.e. on food. The food, in turn, is composed of the above five elements, which replenish or nourish the like elements of the body after the action of bio-fire (Agni). The tissues of the body are the structural entities whereas humours are bio-physiological entities, derived from different permutations and combinations of Pancha-mahabhutas. Further, these five basic elements combined together to form three different characteristics of the life, which is called as humour or "Triguna" (Figure 2) and classified as

1. Kapha, it is composed of Earth and Water elements.
2. Pitta, it is made up of Water and Fire elements.
3. Vata, it is the combination of Vaccum (ether) and Air elements.

There is a popular couplet in Sanskrit describing the fundamental constitution of the body, it read as

"क्षिति, जल पावक गगन समीरा,
पंच तत्व से बना शरीरा"

Figure 2: The five basic components (Earth, Water, Fire, Ether and Air), which forms the body. The combination of two different basic components forms three humours (Kapha, Pitta and Vata).

Energy is required to create movement so that fluids and nutrients get to the cells, enabling the body to function. Energy is also required to metabolize the nutrients in the cells, and is called for to lubricate and maintain the structure of the cell. Vata is the energy of movement; pitta is the energy of digestion or metabolism and kapha, the

energy of lubrication and structure. All people have the qualities of vata, pitta and kapha, but every individual has one of these three as a primary determinant of his Prakriti, one secondary and the third is usually least prominent. The cause of disease in Ayurveda is viewed as a lack of proper cellular function due to an excess or deficiency of vata, pitta or kapha. Disease can also be caused by the presence of toxins.

In Ayurveda, body, mind and consciousness work together in maintaining balance. They are simply viewed as different facets of one's being. To learn how to balance the body, mind and consciousness requires an understanding of how vata, pitta and kapha work together. In the physical body, vata is the subtle energy of movement, pitta the energy of digestion and metabolism, and kapha the energy that forms the body's structure.

Vata: It is the subtle energy associated with movement composed of Space and Air. It governs breathing, blinking, muscle and tissue movement, pulsation of the heart, and all movements in the cytoplasm and cell membranes. In balance, vata promotes creativity and flexibility. Out of balance, vata produces fear and anxiety.

Pitta: It expresses as the body's metabolic system, made up of Fire and Water. It governs digestion, absorption, assimilation, nutrition, metabolism and body temperature. In balance, pitta promotes understanding and intelligence. Out of balance, pitta arouses anger, hatred and jealousy.

Kapha: It is the energy that forms the body's structure like bones, muscles, tendons and provides the "glue" that holds the cells together, formed from Earth and Water. Kapha supplies the water for all bodily parts and systems. It lubricates joints, moisturizes the skin, and maintains immunity. In balance, kapha is expressed as love, calmness and forgiveness. Out of balance, it leads to attachment, greed and envy.

Ayurveda believes that body is a delicate balance between bio-physiological forces (*humours*) and constitution (*prakriti*), which is influenced by mind (*manas*) and "metabolic fire" (*agni*) and all these four thing together determine health and disease. Health or sickness depends on the presence or absence of a balanced state of the total body matrix including the balance between these four constituents. Many factors, both internal and external, act upon us to disturb this balance and are reflected as a change in one's constitution from the balanced state. Examples of these emotional and physical stresses are following:

I. Emotional state

II. Diet and food choices,

III. Seasons and Weather

IV. Physical Trauma

V. Incompatible actions of the body and mind can also result in creating disturbance of the existing normal balance.

Once these factors are understood, one can take appropriate actions to nullify or minimize their effects or eliminate the causes of imbalance and re-establish one's original constitution. Balance is the natural order; imbalance is disorder. Health is order; disease is disorder. The treatment consists proper diagnosis of root cause, restoring the balance of disturbed body-mind matrix by following proper diet, correcting life-routine and behavior, administration of drugs and resorting to preventive Panchkarma and Rasayana therapy. Ayurveda's principle therapeutic aim is to harmoniously restore the balance between bio-physiological forces (*humours*), constitution (*prakriti*), mind (*manas*) and "metabolic fire" (*agni*). Within the body there is a constant interaction between order and disorder. When one understands the nature and structure of disorder, one can re-establish order. Therefore, precise diagnosis is important in Ayurveda.

Diagnosis in Ayurveda:

In Ayurveda diagnosis and treatment of disease is always individual to each patient. The physician (vaidya) takes a careful note of the patient's internal physiological characteristics and mental disposition. He also studies other factors such as the affected bodily tissues, humours, the site at which the disease is located, patient's resistance and vitality, his daily routine, dietary habits, the clinical conditions, condition of digestion and details of personal, social, economic and environmental situation of the patient. The diagnosis also involves the examination of following

I. General physical examination

II. Pulse examination

III. Examination of the face

IV. Examination of tongue and eyes

V. Examination of skin and ear including tactile and auditory functions.

After carefully analyzing all these factors, the Ayurvedic practitioner (Vaidya) may recommend the implementation of lifestyle changes; starting and maintaining a suggested diet; and the use of herbs. In some cases, participating in a cleansing program, called "Panchakarma", is suggested to help the body rid itself of accumulated toxins to gain more benefit from the various suggested measures of treatment. Ayurveda recognizes that each of us is unique; each responds differently to the many aspects of life, each possesses different strengths and weaknesses. Through insight, understanding and experience Ayurveda presents a vast wealth of information on the relationships between

causes and their effects, both immediate and subtle, for each unique individual.

Ayurveda is Personalized Medicine:

Ayurveda has a health-oriented approach, while Allopathy has largely a disease-oriented approach. Since last two centuries we have seen that disease oriented approach is failing continuously for example microbes are becoming resistant to antibiotics, many cancers showing resistance to established radio and chemo-therapies etc. Whereas, Ayurveda works by treating the symptoms of a disease and it helps individuals to strengthen their immune system, which is a holistic approach and helps the person in restoring the harmony and overcoming the disease. Because every individual has different "Prakriti", Ayurveda works on a principle "no two individuals are alike" even when they suffer from similar ailments, therefore different people needs different doses of same drug or altogether different treatment, which is the basis of Ayurveda and we call this as "Personalized Medicine" in modern medical science. Just as everyone has a unique fingerprint, each person has a particular pattern of energy an individual combination of physical, mental and emotional characteristics which comprises their own constitution. This constitution is determined at conception by a four factors (humours, prakriti, manas and agni) and remains the same throughout one's life.

The modern medicine or allopathy practitioners realized this limitation of allopathy that same medicine for similar disease cannot work efficiently and successfully in all patients, therefore modern medicine is developing the concept of personalized medicine, currently; which is one of the basic concept of ancient medicine, Ayurveda. Therefore Ayurveda, which is based on personalized treatments for similar ailments in different patients, has the potential to become the future of personalized medicine in modern medical sciences.

Challenges and Limitations of Ayurveda:

The most important challenge in Ayurveda is precise diagnosis of the disease; along with symptoms, the practitioner needs to identify the "prakriti" and "dosh" of the patient. Clinical diagnostic and imaging methods of Modern medical science can play an important role in this. The next important challenge in Ayurveda is preparation of the drug/ formulation. The classical formulation are already defined in Ayurveda, however traditional Ayurvedic practitioners often modify them to suit the individual constitution (*prakriti*), which confers genetic predisposition (Personalized medicine) toward disease and therapy response, and is vital to ensure medication safety, which determines the efficacy. Modern medicine focuses on one active ingredient molecule in the extract however, in Ayurvedic formulation's medicinal power is a function of its milieu

composing many molecules, not merely due to any single plant extract. Therefore, Ayurveda takes the patient and the medicinal herb both as a whole. When we take a molecule or fractionated extract, the synergy is lost, leading to side effects whereas, Ayurvedic medicines do not have side effects. The major limitation of Ayurvedic drug is the selection of the source plant material. Naturally grown medicinal herbs are believed to be better than cultivated herbs. Similarly, several other factors like season of harvest, geographical location etc. makes the difference in medicinal effects of the medicinal plants. These changes results in batch to batch variation in herbal drugs leading to variable effects in patients. This problem needs to be answered to make Ayurvedic drugs more precise and effective. Ayurveda in modern time is facing these limitations and challenges, while scaling up the drug production on industrial scale, however at smaller scale these challenges are not a problem. Another, most important challenge in front of Ayurveda is that most of its information is available in Ancient Sanskrit language and difficult to translate and understand the medical knowledge in Sanskrit language. Therefore, if physicians have good knowledge of Sanskrit they can translate the Ayurvedic knowledge easily.

Summary:

Keeping all these virtues of Ayurveda in mind, we can say Ayurveda is medicine with intelligence. It gives personalized approach of treatment, which is the science of 21st century and beyond. However, the potential of Ayurvedic philosophy and medicines needs to be recognized and converted into real life treatment paradigm. We need to interpret logic of Ayurveda when, adopting modern science tools in drug development and validation. Validation of a combined (Ayurveda and modern medicine) therapeutic approach with superior efficacy and safety is likely to be a major leap in overcoming some of the current frustrations to treat difficult chronic disorders like Cancer, diabetes mellitus, arthritis using only modern medicines. Ayurveda may not be a complete alternative to modern medicine, but it certainly is a complementary therapy that can be used alongside modern medicine. Another important aspect is to document the cases and publish the case study in some good scientific and medical journals to establish it as evidence based medicine on global platforms.

Indian Criminal Judicial System

Vijay Krishna Pathak*

India has the oldest judicial system in the world. No other judicial system has a more ancient or exalted pedigree. In Ancient time, Dharma (Sacred Law), Vyavahar (Evidence), Charitra (History) and Rajasasan were the four legs of law for administration of justice. History of Indian legal framework takes us to the aged past when Manu and Brihaspati gave us Dharam Shastras, Narada the Smritis, and Kautilya the Arthshastra. An investigation of these significant books would uncover that we in antiquated India had a genuinely all around created and advanced arrangement of organization of equity. Kautilya'sArthshastra describes as to how in Mauryan empire the judicial system was well established and Law courts were situated at centre of ten villages which were called as "Sangrahana" and also at the meeting place of districts which were called "Janapadasandhishu".

The Modern criminal judicial system is based on **common law system**, borrowed from British system of justice, of course, and as is common in "common law systems", it follows the **adversarial system** of justice.

Common Law System is the system followed by UK and its former colonies, it is one of the three major systems that are followed in the world, the other two being the civil law system and the religious law system, Common law principles are in general based on good conscience and equity and justice, and laws are customs, legislations as well as precedents and are known for their complex nature. Comparative law suggests that adversarial system of law is that system where judgment is delivered upon hearing both sides of the argument, the jury or the judge does not go fact finding but relies on the arguments of both sides to find the truth.

The criminal justice delivery system has the following components:

§ The people

§ The law enforcement (legislature, police, authorities)

---

*Public Prosecutor, Anti-Corruption Bureau, CBI, New Delhi ● युगद्रष्टा ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की 50वीं एवं राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 05वीं पुण्यतिथि के अवसर पर आयोजित सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला में दिनांक 18 अगस्त 2019 को दिया गया व्याख्यान।

§ The judiciary (the prosecution, the defence counsel and the judge)

§ The correctional facility (rehabilitation centres, remand homes, prison cells, etc.)

Objective of Criminal Justice System:-

The Criminal Justice System is essentially an instrument of social control against the behavior which the society considers so dangerous and destructive, that it either strictly controls their occurrence or outlaws them outright. So the main objective of the criminal justice system is to prevent the occurrence of crime, to punish the transgressors and the criminals, to rehabilitate them, to compensate the victim and to maintain law and order in the society.

Does Indian Criminal Justice System has achieved its objective:-

National Crime Records Bureau released report as Prison Statistic India 2015 and as per this report 67.2 % of our total present population comprises of under trial prisoners that means that two out of every three prisoners in India is under trial i.e. a person who has been accused or charges with committing an offence but has not been convicted. Number of increasing crime and pendency of cases day by day shows that the mechanism for prevention of crime is not working properly. Currently there are more than 2.8 crore cases are pending in various courts across India with more than 60,000 matters pending before the Supreme Court. In rule of law Index prepared by World Justice Project India's Global Ranking in 2015 was 59 among 102 countries and this index was prepared on the basis of 44 indicators covering 8 broad areas like, order and security, criminal justice etc.

Impediments in the Effecting Functioning of Criminal Justice System:

Indian Criminal Justice system is infested with multiple problems; some of them are being mentioned here. Today, the Indian Criminal Justice System is suffering from several maladies; some of these could be diagnosed as under:

1. Huge pendency / Arrears of CourtCases;
2. Lengthy Procedure;
3. Time Consuming and Expensive Legal Process;
4. Abnormal Delays in Litigation;
5. Non-Accountable Bar;
6. Lack of Coordination between Police and Prosecution;
7. Faulty and Slipshod nvestigation;
8. Unnecessary Detentions Causing Overcrowding of Jails;
9. Enormous Workload on Courts;

10. Alien Model;
11. Lack of a Speedy Dispute Resolution Mechanism;
12. Lack of Judges with respect to population ratio;
13. Delayed Trial;

Need of reform the present system:

- The Indian Criminal Justice System is old system which has not been substantially reformed since our independence and still it works on pre-independence colonial model established by Britishers. In 2000, the government formed a panel headed by Justice V.S. Malimath, the former Chief Justice of Kerala and Karnataka, to suggest reform in the century-old criminal justice system. The Malimath Committee submitted its report in 2003 with 158 recommendations but these were never implemented. However with passage of time certain recommendations became law. In my opinion following areas are required to be given an attention for better administration of justice at it should be immediately reformed:-
- **Increase the no. of Courts and Judges:** There is a need for more judges in the country and more judges should be appointed to decreses the pendency of cases.
- **Separate criminal division in higher courts:** The higher courts should have a separate criminal division consisting of judges who have specialised in criminal law.
- **Police Investigation:** Hiving off the investigation wing of Law and Order. There should be a separate wing of investigation and police personal involved in maintenance of law and order should not be allowed to investigate the cases.
- **Director of Prosecution:** Director of Prosecution, should be appointed having experience of Prosecution of not less than 10 years and he should be independent. Director of Prosecution should report directly to the Chief Minister of State.
- **Power for court to summon any person:** Court's power to summon any person, whether or not listed as a witness if it felt necessary.
- **Right to silence:** A modification to Article 20 (3) of the Constitution that protects the accused from being compelled to be a witness against himself/herself. The court should be given freedom to question the accused to elicit information and draw an adverse inference against the accused in case the latter refuses to answer.
- **The right of accused:** A schedule to the Code be brought out in all regional languages to make accused aware of his/her rights, as well as how to enforce them.

- **Presumption of Innocence:** The courts follow "proof beyond reasonable doubt" as the basis to convict an accused in criminal cases which is an unreasonable burden on the prosecution and hence a fact should be considered as proven "if the court is convinced that it is true" after evaluating the matters beforeit.
- **Justice to the victims:** The victim should be allowed to participate in cases involving serious crimes and also be given adequate compensation. If the victim is dead, the legal representative shall have the right to implead himself or herself as a party, in case of serious offences.
- **Victim Compensation Fund:** A Victim Compensation Fund can be created under the victim compensation law and the assets confiscated from organised crimes can be made part of the fund.
- **Simplify the Language of Law :** Language of Law is required to be simplified which can be understood by common man and it should be available in regional language also.
- **SP in each district:** Appointment of an SP in each district to maintain crime data, an organisation of specialised squads to deal with organised crime.
- **Witness protection:** The dying declarations, confessions, and audio/video recorded statements of witnesses should be authorised by law. There should be a strong witness protection mechanism. Witnesses should be treated with dignity.
- **Arrears Eradication Scheme:** To settle those cases which are pending for more than two years through Lok Adalat on a priority basis.
- **Offences classification:** It should be changed to the social welfare code, correctional code, criminal code, and economic and other offences code instead of the current classification of cognisable and non- cognisable.
- **Central law for organized crime and terrorism:** Though crime is a state subject, a central law must be enacted to deal with organised crime, federal crimes, and terrorism.
- **Periodic review:** There should be a Presidential Commission for a periodical review of the functioning of the Criminal Justice System.

Conclusion:

If the administration of criminal justice wants to give good result, it is the duty of the courts to act with the great promptitude. Innocent person should be released immediately and the guilty person should get punished as early as possible. The problem in delay of the cases is not new in India it has been existence since a long time. On the

one part judicial system is under strain and on the other part it has shaken the confidence of the people. The Supreme Court made it clear that speedy trial is the essence of criminal justice and the delay in trial by itself constituted the denial in justice. In India judiciary system is expected to be the sword, sentinel and shield of rights of the humblest millions with an assurance to bring justice.

Referred Materials :

1. NCRB report on Prison Statistic India, 2015
2. Law Index by World Justice Project, 2015
3. Malimath Committee Report, 2003

नाथ पंथ का लोककल्याणकारी हठयोग

सलिल कुमार पाण्डेय*

हठ का तात्पर्य है बहुत आग्रह पूर्वक और बराबर यही कहते रहना कि अमुक बात ऐसी ही है अथवा ऐसी ही है अथवा ऐसे ही होगी या होनी चाहिए। दृढ़तापूर्वक की हुई प्रतिज्ञा या संकल्प हठ है।[1]

'हठयोग' योग का वह अंग है या प्रकार जिसका प्रचलन नाथ-पंथियों ने अपनी साधना के लिए किया था और जिसमें ईश्वर प्राप्ति के लिए नेति, धोती क्रियाओं, कठिन मुद्राओं और आसनों का विधान किया गया। इसमें शरीर के अन्दर कुण्डलिनी और अनेक प्रकार के चक्रों का भी अधिष्ठान माना गया है। इसके सबसे बड़े आचार्य योगी मत्स्येन्द्र नाथ (मछंदरनाथ) और उनके शिष्य गोरखनाथ माने जाते हैं।[2]

योग के विषय में अनेक मनीषियों ने गम्भीर चिन्तन-मनन किये हैं। यद्यपि "योग" शब्द का सामान्य अर्थ जोड़ या संयोग होता है तथापि यह शब्द व्यापक अर्थों में व्यक्ति के परमात्मा के निकट जाने से है। "जीवात्मा का परमात्मा से संयोग ही योग कहा जाता है।"[3] मानव को सांसारिक भोग लिप्सा में निरन्तर लगे रहना अच्छा लगता है, परन्तु मानव-जीवन का एकमात्र लक्ष्य भोग लिप्सा ही नहीं है, बल्कि उसके आगे बढ़कर "योग साधना" है। योग-साधना से शारीरिक शक्ति तो बढ़ती ही है आन्तरिक ऊर्जा का भी विकास होता है जो अन्ततः परमात्मा के सान्निध्य का कारण बनता है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि -'सभी योगी का ध्येय आत्मा की मुक्ति है और प्रत्येक योग समान रूप से उसी ध्येय की ओर ले जाता है।"[4] योग, भोग के आगे त्याग का पथ-प्रदर्शक होता है। राग की सीमा से परे विराग उत्पन्न करता है, स्वार्थ की संकुचित प्रवृत्ति के आगे परमार्थ का विस्तृत द्वार खोलता है। इतना ही नहीं वह स्व सत्ता को परम सत्ता में समाहित कर देता है। वह समस्त प्रकृति के साथ व्यक्ति का तादात्म्य स्थापित करा देता है। अरविन्द का मत हैं कि -"जो कुछ उच्चतम तत्त्व है उसके साथ अपनी सत्ता को सभी भावों में एक हो जाना है - 'योग' ...... समस्त प्रकृति और सभी जीवों के साथ एक हो जाना ही योग है।"[5]

भारतीय मान्यता है कि व्यक्ति परमात्मा का अंश है। उसे परमात्मा से सान्निध्य करना ही

*प्रबन्ध सम्पादक, चेतनता, ग्राम-भिलोरा, पोस्ट-नौसड़, जनपद-गोरखपुर (उ.प्र.) मो.-9415878790

चाहिए, इसी में उसके जीवन की सार्थकता है। चिदानन्द सरस्वती का कथन है कि "योग का अर्थ है ससीम आत्मा का असीम आत्मा से मिलन। जीव की एकदेशीय चेतना का परमात्मा में विलय ही योग है।"[6] योगी की महत्ता साधारण शब्दों में नहीं कही जा सकती।

उसके क्रियाकलाप असाधारण होते हैं, उसमें आध्यात्मिकता तथा दार्शनिकता के भाव कूट-कूट कर भरे होते हैं। योग का पथ काँटों से भरा है, उस पथ पर चलना कठिन कार्य है, पर योगी अनेक संकटों का सामना करने में समर्थ होता है। योगी के लक्षण के विषय में ध्यान बिन्दु उपनिषद् का मन्तव्य है कि "बीजाक्षर परम बिंदु है, उसके ऊपर 'नाद' स्थित है, जो सशब्द है। उसके अक्षर ब्रह्म में लय हो जाने पर ही शब्दहीन परम पद की स्थिति है। अनाहत शब्द से भी परे जो है, उसको जो योगी जान लेता है, पा लेता है, उस योगी के सभी संशय नष्ट हो जाते हैं।"[7]

योगी की एक निश्चित, कुछ शब्दों में सीमित परिभाषा नहीं की जा सकती है। योगी सांसारिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों मान्यताओं को अच्छी तरह समझता है तभी उपयुक्त से सान्निध्य तथा अनुपयुक्त से दूरी करता है। वेदव्यास का विचार है कि -"जो ज्ञान और विज्ञान से तृप्त हो चुका है, जो सबसे उच्च स्थान में स्थिर हुआ है, जो जितेन्द्रिय है तथा जिसकी दृष्टि में मिट्टी, पत्थर और सोना समान है, उस यात्री का योग सिद्ध हुआ ऐसा कहते हैं।"[8]

तटस्थता, निष्पक्षता तथा पारदर्शिता योगी के लक्षण हैं। उसका इन्द्रियों तथा परिस्थितियों पर विशेषाधिकार होता है। भर्तृहरि ने कहा है कि "योगी व्यक्ति विरक्तिरूपी स्त्री के साथ बड़े वैभवशाली राजाओं की तरह सुख और शांतिपूर्वक सोता है। पृथ्वी ही उसकी सुन्दर शय्या है, भुजलता ही बड़ा तकिया है, आकाश ही वितान है, अनुकूल पवन ही उसका पंखा है, चन्द्रमा ही उसका प्रकाशमान दीपक है।"[9]

हठयोग से मानव की आन्तरिक प्रवृत्तियों की कुवासनाएँ समाप्त होती है, जिस प्रकार भगवान का कच्छप रूप सर्वस्व का आधारभूत है उसी प्रकार हठयोग सम्पूर्ण योगों का आधार स्तम्भ है। स्वात्माराम योगीन्द्र कहते हैं कि "हठयोग तो सम्पूर्ण तापों से तप्त मनुष्यों का आश्रय स्थल मठ है। हठयोग सम्पूर्ण योगों से युक्त मनुष्य के लिए कच्छपरूप भगवान के समान आधारभूत है।"[10] हठयोग सबके लिए लाभकारी होता है। दृढ़ संकल्प युक्त कार्य सबके लिए लाभकर होता है। हठयोग युवक में ऊर्जा, वृद्ध तथा रोगी आदि में आशा का संचार करता है। दूसरे शब्दों में हठयोग अपने लक्ष्य की प्राप्ति में बहुत सहायता करता है। योगीन्द्र का मत है कि "युवा हो, वृद्ध हो, अतिवृद्ध हो, रोगी हो या दुर्बल हो सब योगांगों में आलस्य न करते हुए अभ्यास से सिद्धि प्राप्त कर लेता है।"[11]

हठयोग शरीर में कान्ति का संचार करता है। मुख पर प्रसन्नता उत्पन्न करता है, वाणी-विकार को दूर कर उसमें माधुर्य लालित्य एवं प्रभाव विकसित करता है। नेत्रों की निर्मलता को चिरस्थायी बनाने में हठयोग का विशेष महत्व है। हठयोग से रोगों का अभाव होता है। हठयोग की विलक्षणताओं

के विषय में योगीन्द्र का मत हैं कि ''देह की कृशता, मुख पर प्रसन्नता, वाणी की स्फुटता, नेत्रों की निर्मलता, रोग का अभाव, बिंदु-जय, अग्निदीपन तथा नाड़ी-विशुद्धि, ये हठयोग के लक्षण हैं।''[12]

हठयोग के महान साधक गुरु गोरखनाथ कहते हैं कि योगी को संसार में उसी तरह रहना चाहिए जैसे कमल पानी में रहता है। योगी अवधूत आँख से सब कुछ देखता है और कान से सब सुनता है पर वह मुख से कुछ कहता नहीं है। शरीर खूब भारी हो, पर यदि गुरु से भेंट न हुई तो वह शरीर दो कौड़ी की है। वे ज्ञान को गुरु मानते हैं चित्त को चेला कहते हैं और मन को मित्र। यदि ये सब अनुकूल हैं तो व्यक्ति सबके साथ है (स्वयं में स्वस्थ है)। यदि ये सब नहीं तो व्यक्ति अकेला (अस्वस्थ) है।

हठयोग में अनेक प्रकार के आसनों की चर्चा मिलती है जो दैहिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में परम सहायक है। नाथ पंथ के संतों ने जिस हठयोग की अवधारणा दी वह लोककल्याणकारी तथा मानवता का पथप्रदर्शक है। हठयोग की समसामयिक उपयोगिता से विश्व आकर्षित हो रहा है।

संदर्भ-

1. वर्मा, रामचन्द्र-मानक हिन्दी कोश पृ.-512।
2. वर्मा, रामचन्द्र-मानक हिन्दी कोश पृ.-512।
3. जीवात्म परमात्म संयोगम् योगम्। - पिंगलि सूरन्ना (कलापूर्णोदयमु, 5।142)
4. विवेकानन्द साहित्य तृतीय खण्ड पृ.-31।
5. अरविन्द, भागवत मुहुर्त।
6. चिदानन्द सरस्वती-विश्वसूक्ति कोश पृ.-901 पर उद्धृत।
7. ध्यानबिन्दु उपनिषद् 2-3।
8. ज्ञानविज्ञान-तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः।। (गीता 6-8।)
9. मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता।
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः।।
स्फुरन्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासंगमुदितः।
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिनृप इव।। भर्तृहरि-वैराग्य शतक।
10. अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठो हठः।
अशेषयोगयुक्तानामाधारकमठो हठः।। स्वात्माराम योगीन्द्र हठ प्रदीपिका 1-10।
11. युवा वृद्धोऽतिवृद्धो व व्याधितो दुर्बलोऽपि वा।
अभ्यासात् सिद्धिमाप्नोति सर्वयोगेष्वतंद्रितः।। स्वात्माराम योगीन्द्र हठ प्रदीपिका 1-64।
12. वपुः कृशत्वं वदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले।
अरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं नाड़ीविशुद्धिर्हठयोग-लक्षणम्।। -स्वात्माराम योगीन्द्र हठ प्रदीपिका 2-78।

हम और हमारा जीवन

शिप्रा सिंह*

मानव जीवन के क्रमिक विकास का मुख्य आधार मानव के अन्दर निहित जिज्ञासा की प्रवृत्ति है। उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति की प्रबल इच्छा ने उसे सभ्यता का निर्माता बना दिया। विज्ञान भी मानता है कि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। विज्ञान के इस सिद्धान्त के आधार पर मानव जीवन का क्रमिक विकास होना पाया जाता है। जैसे- आग की खोज, कच्चे खाद्य पदार्थ के स्थान पर पका भोजन खाना, पाषाणोपकरणों की खोज, पहिये का आविष्कार, पशुपालन, कृषि का विकास, धातुओं की खोज आदि।

तदनन्तर मानव में सहयोग एवं सामूहिक कार्य संस्कृति का विकास हुआ। सभ्यता के साथ, संस्कृति के विकास ने धरती पर संस्कृति में युगानुकूल परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ एक सम्पूर्ण जीवन-दर्शन को जन्म दिया। ऐतिहासिक/वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर ऐसा समझा जाता है कि कदाचित् 56 लाख वर्ष पहले पृथ्वी पर ऐसे प्राणियों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्हें हम मानव कह सकते हैं। इसके बाद आदि मानव के कई रूप बदले और कालान्तर में लुप्त हो गये।

आज हमें आदि मानव के इतिहास की जानकारी मानव-जीवाश्मों, पत्थर के औजारों और गुफाओं की चित्रकारियों से मिलती है। सर्वप्रथम एशिया तथा अफ्रीका में स्तनधारी प्राणियों की 'प्राइमेट' नामक श्रेणी का उद्भव हुआ था। उसके बाद लगभग 240 लाख वर्ष पहले 'प्राइमेट' श्रेणी में एक उपसमूह उत्पन्न हुआ जिसे होमिनॉइड कहते हैं। इस उपसमूह में 'वानर' यानि 'एप' शामिल थे और फिर बहुत समय बाद, लगभग 56 लाख वर्ष पहले, हमें पहले होमिनिड प्राणियों के अस्तित्व का साक्ष्य मिलता है।

'होमिनिड' वर्ग होमिनॉइड उपसमूह से विकसित हुए। दो प्रकार के साक्ष्य से यह पता चलता है कि होमिनिडों का उद्भव अफ्रीका में हुआ था। पहला तो यह कि अफ्रीकी वानरों (एप) का समूह होमिनिडों से बहुत गहराई से जुड़ा है। दूसरा सबसे प्राचीन होमिनिड जीवाश्म, जो आस्ट्रेलो-पिथिकस

*विभागाध्यक्ष, बी.एड. विभाग, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

वंश के हैं, पूर्वी अफ्रीका में पाए गए हैं और उनका समय लगभग 56 लाख वर्ष पहले का माना जाता है। इसके विपरीत अफ्रीका से बाहर पाये गये जीवाश्म 18 लाख वर्ष से अधिक पुराने नहीं हैं।

'होमिनिड' होमिनिडेइ नामक परिवार के सदस्य होते हैं; इस परिवार में सभी रूपों के मानव प्राणी शामिल हैं। होमिनिडों को कई शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है। इन शाखाओं को जीनस (वंश) कहते हैं। इन शाखाओं में आस्ट्रेलोपिथिक्स और होमो अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। होमो लैटिन भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ है 'आदमी'। यद्यपि इसमें पुरुष और स्त्री दोनों शामिल हैं। वैज्ञानिकों ने होमो को कई जातियों में बाँटा है और इन प्रजातियों को उनकी विशेषताओं के अनुसार अलग-अलग नाम दिये हैं। इस प्रकार जीवाश्मों को होमो हैविलिस (औजार बनाने वाले), होमो एरेक्टस (सीधे खड़े होकर पैरों के बल चलने वाले) और होमो सैपियंस (प्रज्ञ या चिन्तनशील मनुष्य) के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

मानव की उत्पत्ति और विकास पर अनवरत विमर्श जारी है। धर्म, दर्शन एवं विज्ञान के अपने-अपने मत और निष्कर्ष हैं। उपर्युक्त मम्बन्ध में पाँच मौलिक प्रश्न विचार-दर्शन के केन्द्र-बिन्दु हैं- हम (मानव) कौन हैं? हम कहाँ से आए हैं? हम क्यों आए? हमें कहाँ जाना है? हमारे लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग क्या है? इन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर में दुनिया के ऋषि, महात्मा, दार्शनिक, वैज्ञानिक इत्यादि सभी युगों-युगों से अनवरत प्रयत्नशील हैं। अनेक दावों के बाद अब तक उपर्युक्त प्रश्नों के सर्वमान्य उत्तर प्राप्त नहीं हैं। तथापि हिन्दू संस्कृति के ऋषियों, आचार्यों, दार्शनिकों के अनुभवजन्य मत सर्वाधिक तर्कसंगत, सुसंगत एवं ऐसे मानव सभ्यता-संस्कृति के मार्गदर्शक हैं, जहाँ मानव जाति सुख-शान्ति से अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण करता हुआ मानव जीवनोद्देश्य को प्राप्त कर सकता है।

हम (मानव) कौन हैं?

भारतीय दर्शन एवं अध्यात्म में हम (मानव) कौन हैं, की विस्तृत व्याख्या आत्मा स्वरूप में मिलती है जिसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आत्मा मानव के अन्दर विद्यमान चेतन-शक्ति है। इस विश्व का संचालक परमात्मा है। आत्मा इस परम चेतन परमात्मा का अंश है। जिस प्रकार जलप्रपात में पानी के छींटे उत्पन्न होते हैं पुन: उसी में विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार विभिन्न जीवधारी परमात्मा से उत्पन्न होकर परमात्मा में विलीन हो जाते हैं। यह उत्पन्न होकर विलीन होना इसलिए रचा गया है कि इस विश्व में जो प्रेम का रस है सभी उसका रसास्वादन करें और उस आनन्द से परितृप्त होकर अपने को धन्य मानें। इस विश्व का सृजन ऐसे सुन्दर ढंग से हुआ है कि मानव अपने कर्तव्य एवं भाव-दृष्टि ठीक रखे तो उसे पग-पग पर आनन्द, उल्लास, सौन्दर्य और

शान्ति का अनुभव होता रहे। किन्तु दु:ख की बात है कि हम रास्ता भूलकर भ्रम-जंजाल में पड़ते हैं; उल्टी रीति से सोचते और करते हैं, फलस्वरूप जीवन दु:खमय हो जाता है। हमें इसे सुधारना चाहिए। यह सुधार ही मानव जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। यह सुधार ही हमें मुक्ति दिला सकता है।

हम (मानव) कहाँ से आये हैं?

मानव प्राकृतिक चक्र प्रक्रिया के अन्तर्गत पृथ्वी पर आया है। इस सम्बन्ध में वर्तमान समाज दर्शन में अपनी-अपनी अवधारणाएँ व आधार हैं, जो वैज्ञानिक/तार्किक व सामाजिक मान्यताओं के आधार पर सत्य प्रतीत होती हैं, किन्तु पूर्ण सत्य से बहुत दूर होती हैं। जैसे- कोई कहता है कि 'मैं अपनी माँ के गर्भ से आया हूँ', और कोई ये कहता है कि 'मैं विज्ञान की उपलब्धता के कारण ट्यूब बेबी के रूप में आया हूँ', या 'भगवान् के वर से आया हूँ।' उपर्युक्त मत पूर्ण सत्य की अल्पज्ञता के कारण हैं। क्योंकि जिस प्रकार मानव का शरीर प्राण-वायु के बिना मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार बिना प्राण-वायु अथवा आत्मा के प्रवेश के माँ के गर्भ में जीवात्मा का प्रवेश नहीं होता है।

सामान्यत: अस्पतालों में अधिकांश डॉक्टर अपने समस्त वैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग के बावजूद असफलता प्राप्त होने पर परमात्मा से प्रार्थना करने को बोलते हैं, क्योंकि परमेश्वर ही पूर्ण सत्य व वास्तविक नियन्ता है। हमारे शरीर को संचालित करने वाली आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है, आत्मा परमात्मा से अलग होकर इस मृत्युलोक में आयी है। परमात्मा ने आत्मा को शरीर धारण कर स्वतंत्रतापूर्वक कर्म करने की प्रवृत्ति दे रखी है। मानव इसी स्वभाव के कारण सांसारिकता से बद्ध होकर भले-बुरे कर्म करता है। मानव का यह जन्म-मरण चक्र चलता रहता है। परमात्मा ने मानव को कर्म की स्वतंत्रता इसलिए दे रखी है कि मानव अपने जीवन को विकसित कर भले-बुरे कर्म का अन्तर समझ सके, उसकी सृष्टि को सुन्दरतम बना सके।

हम (मानव) यहाँ क्यों आये हैं?

हमारे (मानव के) जीवन-मरण का मुख्य आधार कर्मफल का सिद्धान्त है। मानव अपने अच्छे-बुरे कर्मों के अनुरूप जन्म ग्रहण करता है और उसका भोग करता है। मानव शरीर पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों का ही प्रतिफल और परमात्मा का प्रसाद है। परमात्मा ने मानव को इस पृथ्वी पर सार्थक जीवन जीने के लिए भेजा है। मानवीय सामाजिक मूल्यों के निर्धारण के साथ निष्काम-कर्म-योग साधना के आधार पर इसी मानव शरीर से परमात्मा में एकाकार हो जाने की शक्ति प्राप्त मानव को ही प्राप्त है। आत्मा मानव का शरीर परमात्मा में एकाकार होने के लिए ही प्राप्त करती है।

वर्तमान समय में मानव अर्थवाद व तर्कवाद की ओर अग्रसर है। आज समाज में बहुतायत

मानव अपनी संतानों को डॉक्टर, इंजीनियर, व्यवसायी, अधिकारी इत्यादि समाज के उत्कृष्ट पदों की प्राप्ति कराने में गतिमान है, किन्तु मनुष्य बनने या बनाने की प्रक्रिया में हमारा ध्यान बहुम कम है।

हमें (मानव को) कहाँ जाना है?

भारतीय धर्म-दर्शन की लगभग सभी धाराओं की मान्यता है कि मानव आत्मा का शरीर रूप है। आत्मा परमात्मा का ही अंश है। अतः आत्मा की यात्रा परमात्मा परमात्मा में विलीन होने की ही है। अंश का अंशी में मिलन ही पूर्णता है। आत्मा का परमात्मा में समाहित हो जाना ही मुक्ति अर्थात् जन्म-पुनर्जन्म कीश्रृंखला का उच्छेद है। मानव-जीवन वस्तुतः शरीर में स्थित आत्मा की ही यात्रा है अतः मानव-जीवन का अभीष्ट भी मुक्ति है। अर्थात् हम जहाँ से (परमात्मा से उत्पन्न) आए हैं हमें पुनः वहीं (परमात्म तत्त्व में विलीन होना) जाना है। अन्यथा जन्म-पुनर्जन्म के बन्धन में मृत्युलोक की बार-बार यात्रा अवश्यम्भावी है।

हम (मानव) कैसे जायेंगे?

मानव अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य 'परमात्मा में एकाकार की स्थिति' में कैसे जायेगा, इसके प्रति अनेक धार्मिक मार्ग व विधियाँ हमारे वेदों, पुराणों, उपनिषदों आदि अनेक धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित हैं, किन्तु उपर्युक्त में वर्णित विधियों व नियमों के साथ वर्तमान में जीवन का निर्वहन सहज नहीं है।

परमात्मा में एकाकार होना अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति का कोई भी प्रमाणित साक्ष्य नहीं हैं जिनका परीक्षण एवं सत्यापन किया जा सके। यही कारण है कि अधिकांशतः परमात्मा की सत्ता को मानते हैं किन्तु मोक्ष प्राप्ति के धार्मिक/आध्यात्मिक विधियों को अपनी उपयुक्तता व सुलभता के अनुरूप संशोधित स्वरूप में लेते हैं, जो धीरे-धीरे पंथ के स्वरूप में विकसित हो जाती है। पतंजलि एवं गोरखनाथ जैसे ऋषियों का मानना है कि अष्टांग योग = यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि के द्वारा क्रमिक अभ्यास एवं साधना के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने ज्ञान, कर्म और भक्ति को मुक्ति का मार्ग कहा है।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कर्म की प्रधानता स्वीकार करते हुए प्रासंगिक चौपाई लिखी है-

"कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जे जस करहि ते तस फल चाखा।"

मोक्ष हेतु तत्त्वज्ञान अनिवार्य है। मोक्ष का अर्थ जन्म-मरण से मुक्ति होना है। पृथ्वी लोक पर उत्पन्न प्रत्येक मानव/जीव की मृत्यु होती है, जो सार्वभौमिक सत्य है।

अन्ततः मोक्ष धर्म की वह अवधारणा है जो जीवन में आस्था व कर्म के रूप में मानव को दुर्व्यसनों से दूर रहते हुए धार्मिकता के निर्वहन हेतु आन्तरिक शक्ति प्रदान करता है जिससे वह स्वस्थ सुसंगठित व धार्मिक समाज का निर्माण करता है। इसलिए मानव को अपनी अन्तरात्मा की आवाज को सदैव सुनते हुए मानवता रूपी धर्म के निर्वहन हेतु सदैव कटिबद्ध रहते हुए अग्रसर रहना चाहिए, तो निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी।

जीवन उद्देश्य

मानव जीवन का उद्देश्य जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होना है। यह तभी सम्भव है जब वह अपने श्रेष्ठतम जीवन-मूल्य को विकसित करता हुआ, जीता हुआ, सदाचरण एवं सच्चरित्रता का पर्याय बने। मानव जीवन का उद्देश्य मात्र शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं है, शरीर का भरण-पोषण नहीं है, इन्द्रियों का सुख नहीं है अपितु संयमित, नियमित एवं आदर्शपूर्ण जीवन-यापन भी है। भोग और कामना ही मानव जीवन की उपलब्धि नहीं अपितु संयम, नियम, आदर्श, अध्यात्म-चिन्तन भी जीवन का हिस्सा है। मानव जीवन मात्र संकीर्णता और बद्धता, स्वार्थ और लिप्सा तथा कामना-वासना का नाम नहीं है। नश्वर भौतिक सुख, क्षणिक इन्द्रिय-सुख तथा लौकिक समृद्धि ही जीवन नहीं है, अपितु सांसारिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता, भोग के साथ योग, कामना के साथ साधना, तन के साथ मन, बद्धता के साथ मुक्ति और नश्वरता के साथ अनश्वरता, मृत्यु के साथ अमरता ही पूर्ण जीवन है। वास्तविक और अविच्छिन्न जीवन का अर्थ यही है। यही जीवन सार्थक है, सात्विक है, परमोद्देश्य प्राप्त करने वाला है, लक्ष्य सिद्ध करने वाला है।

भारतीय ऋषियों ने लौकिक तथा पारलौकिक जीवन का समग्रता के साथ विचार किया। जन्म-मृत्यु के साथ आत्मा की अमरता कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए मुक्ति अथवा मोक्ष को जीवन का परम उद्देश्य माना। मुक्ति के दो मार्ग स्वीकार्य किये- एक सामान्य मानव जीवन जीते हुए अर्थात् भौतिक संसार का आनन्द लेते हुए मुक्ति पाना तथा दूसरा आजीवन ब्रह्मचारी रहते हुए परमात्मा के साथ एकाकार होकर विविध उपासना पद्धतियों के विविध मार्गों से होते हुए निवृत्ति मार्ग के अनुसरण के साथ जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होना। इन दोनों मार्गों की अपनी-अपनी विशिष्टताएँ हैं। तथापि कठिन मार्ग पहला है। प्रथम मार्ग में मोह-माया तथा मृत्युलोक एवं भौतिक जीवन के विविध आकर्षण मुक्ति की तरफ बढ़ते मानव जीवन की बड़ी बाधा है। किन्तु मृत्युलोक का यही मायाजाल सृष्टि का सौन्दर्य है, सृष्टि की पहचान है और दुनिया का वास्तविक रंगमंच। सर्वाधिक या यों कहें अपवाद को छोड़कर अधिकांश मनुष्य इसी पथ का पथिक बनना पसन्द करता है और इसी राह का राही भी।

भारतीय ऋषियों ने अपने साथ-साथ इस कंटकाकीर्ण लौकिक जीवन रूपी पथ के पथिकों को जीवन जीने तथा मुक्ति पाने के भी व्यवस्थित एवं व्यावहारिक मार्ग खोजे। अनेक पीढ़ियों की सिद्धि, उनके अनुभव, उनकी दिव्य दृष्टि से मानव जीवन को मुक्ति का मार्ग देने का मंत्र पुरुषार्थ है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समुच्चय रूप है। यही जीवन का अभीष्ट उद्देश्य है।

पुरुषार्थ उस सार्थक जीवन-शक्ति का द्योतक है जो व्यक्ति को सांसारिक सुख भोग के बीच अपने धर्म-पालन (कर्तव्य-पालन) के माध्यम से ईश्वर-प्राप्ति या मोक्ष की राह दिखलाता है। पुरुषार्थ जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा अन्तिम लक्ष्य को दृष्टि में रखकर चार तत्त्वों को समाहित करता है- 1. धर्म, 2. अर्थ, 3. काम, 4. मोक्ष। इन चारों के विस्तृत अर्थ पर विचार कर लेना चाहिए। धर्म, अर्थ, काम का सम्बन्ध हमारे दैनिक जीवन से है। अन्तिम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष हमारे पहले तीन कार्यों पर आधारित जीवन का परमोद्देश्य है।

प्रथम पुरुषार्थ **धर्म** है। धर्म शब्द का बड़ा व्यापक अर्थ है। इसमें हमारे वे सभी कर्तव्य सम्मिलित हैं जो भिन्न-भिन्न धार्मिक, सामाजिक या नैतिक मान्यताओं से सम्बन्ध रखते हैं। प्रत्येक परिस्थिति में मनुष्य का क्या-क्या कर्तव्य होना चाहिए, यह सब धर्म शब्द के अन्तर्गत समाहित है। धर्म उन उपयोगी सिद्धान्तों के समूह हैं जो हमारे दैनिक जीवन और समस्याओं का हल प्रस्तुत करते हैं। हमारे सुबह सोकर उठने से लेकर रात के सोने तक हम जो भी अच्छा कर रहे होते हैं, वह सब धर्म के अन्तर्गत है। मानव का यही धर्म मानवता का धर्म है। धर्म द्वारा ही मानव में प्रेम व भक्ति की भावना का जन्म होता है, जो अपने विकसित स्वरूप के साथ समाज मानव जीवन को आदर्श रूप में स्थापित करता है।

धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग है नैतिकता। नैतिकता एक ऐसा अनुशासन है जो व्यक्ति की चेतना में संवेदना को जन्म देकर और उसे पोषित करने हेतु वातावरण प्रदान करता है। संवेदना एक ऐसा गुण है, जो प्रत्येक मानव में होना चाहिए। जब तक हम अपने और अपने आस-पास की चीजों के प्रति संवेदनशील नहीं होंगे तब तक हम सही मायने में अपने धर्म का पालन नहीं कर सकेंगे। धर्म शब्द सुनने में बड़ा लगता है। यदि किसी व्यक्ति से यह कहा जाता है कि अपने धर्म का निर्वहन करे तो यह शब्द सुनने वाले व्यक्ति के लिए भारी महसूस होता है। जबकि धर्म एक सहज जीने वाला पुरुषार्थ है, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के अपने कर्तव्य होते हैं। उन कर्तव्यों के प्रति संवेदनशील होना ही धर्म है। उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी के जीवन का कर्तव्य मात्र विद्यालय में प्रवेश लेकर कक्षाएँ पढ़कर डिग्री प्राप्त कर लेना ही नहीं है। विद्यार्थी जिस विद्यालय में पढ़ रहा है उसके विद्यालय में प्रवेश से लेकर निकलने तक विद्यालय की सम्पूर्ण गतिविधियों का पालन करते हुए शिक्षा एवं ज्ञान प्राप्त करना उसका कर्तव्य है। विद्यालय विद्यार्थी का दूसरा घर है, जहाँ से वह

शिक्षित होता है, ज्ञानी होता है, समझदार बनता है, कुशल बनता है, दृष्टि पाता है। वहाँ की स्वच्छता, अनुशासन, सम्पूर्ण परिसर संस्कृति, पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ सभी का पालन अपने घर की तरह करना ही विद्यार्थी का धर्म है। यही वास्तविक शिक्षा है।

उपर्युक्त उदाहरण मानव के परिवार के साथ-साथ उसके समाज एवं कार्य-क्षेत्र सभी पर लागू होता है। वस्तुतः मानव की संवेदनशीलता का विकास ही धर्म है। जो प्रयास मनुष्य को उसके कर्तव्य के सही दिशा में ले जाए वह धर्म है। धर्मप्रधान पुरुषार्थ व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व संस्कृति के सर्वांगीण अभ्युदय का कारण बनता है।

मानव मात्र के लिए श्रेष्ठता के पथ पर बढ़ने में सहायक धर्मोत्पत्ति के दस लक्षण मनु ने बताए हैं, उन्हें धर्म के दस लक्षण भी कहा जाता है।

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।" (मनुस्मृति, 6/62)

अर्थात्- धैर्य, क्षमा, मनःसंयम, न्यायपूर्ण जीवन, बहिरंग व अंतरंग की पवित्रता, विषयों के अधोगामी प्रवाह को रोकना, विवेकबुद्धि/आत्मज्ञान, मन-वचन-कर्म से व्यक्ति का शुद्ध होना व प्रिय सत्य बोलना, आत्मनियंत्रण (आवेश में न आना) - ये दस लक्षण धर्म के बताये गये हैं। व्यावहारिक जीवन की दृष्टि से परिष्कृत व्यक्तित्व हेतु अनिवार्य ये सद्गुण हैं, जो किसी भी सभ्यता-मान्यता को मानने वाले व्यक्ति को अस्वीकार्य नहीं हो सकते। सभी के लिए वह कल्याणकारी गुण है।

कुछ धर्म सामान्य धर्म होते हैं, कुछ विशेष। दान सामान्य धर्म है परन्तु रोगी ऐसे पदार्थ आकर माँगे जो उसे नुकसान करेंगे तो उसे वह पदार्थ न देना विशेष धर्म है। इसी प्रकार अपराधी को क्षमा कर देना अहिंसा नहीं, कायरता है। फोड़े पर चीरा लगाना चिकित्सक का विशेष धर्म है, हिंसा नहीं। इस प्रकार धर्म सदैव देश, काल, परिस्थिति व औचित्य के साथ देखकर उसका निर्धारण किया जाना चाहिए। आपद्धर्म केवल आपत्तिकाल तक के लिए होता है और वह भी उतने ही अंश जितने अंश में आपत्तिकाल चल रहा हो। मरणासन्न रोगी को वैद्य ने लहसुन दे दिया तो जरूरी नहीं कि अच्छा होने पर भी लहसुन उसका खाद्य हो जाय। युगधर्म वह है जो उस समय काल के लिए किया जाने योग्य कर्तव्य है। स्वतंत्रता संग्राम में देश के लिए लड़ना युगधर्म था तो आज पीड़ित मानवता की सेवा युगधर्म है।

वस्तुतः धर्म हमें कर्तव्य की प्रेरणा देता है साथ ही फल की ओर से तटस्थ रहने का आदेश भी देता है। धर्म का लक्ष्य संवेदना का जागरण है तथा पारस्परिक सद्भाव का विकास भी है। इस भावना का जितना विस्तार होगा, धर्म की उतनी ही रक्षा होगी।

अर्थ एक पवित्र शक्ति है। अर्थ का व्यय शुभ सात्विक कार्यों में होना चाहिए और उसे ईमानदारी से कमाना चाहिए। गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने के लिए 'अर्थ' शक्ति की जरूरत है, शेष आश्रम इसी गृहस्थ जीवन के भरोसे रहते हैं। इसलिए गृहस्थ का यह पुण्य कर्तव्य हो जाता है कि वह सत्य आचरण द्वारा सात्विक कमाई करे और स्वयं अपने तथा समाज के लिए कल्याणकारी कार्यों में उसका उपयोग करता रहे।

मानव संसार भर की दौलत पाकर भी तृप्त नहीं हो सकता। इसलिए अर्थ को धर्म का आधार देकर कार्य करना चाहिए। यदि कोई विलासी-सुख साधनों में लिप्त है केवल धार्मिक होने का दिखावा कर रहा है तो वह धीरे-धीरे संवेदना की दृष्टि से निष्ठुर होता चला जायेगा, उससे धर्म भी उतना ही दूर हो जायेगा। धर्मप्रधान अर्थशास्त्र की स्थापना हेतु ऋषिगणों का कहना है-

"**शतहस्तं समाहरं सहस्रहस्तं संकिर।**" -अथर्ववेद (3/24/5)

अर्थात्- सैकड़ों हाथों से कमाओ किन्तु हजारों हाथों से बाँट दो।

अर्थ के प्रवाह प्रक्रिया को अवरुद्ध नहीं करना चाहिए। इसे विवेकसम्मत दान की पुण्य प्रक्रिया का आश्रय लेकर समाज को श्रेष्ठ बनाने वाले कार्यों में नियोजित करना ही धर्म है। "**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।**" का दर्शन देने वाली भारतीय संस्कृति अर्थोपार्जन व उसकी सुरक्षा हेतु शील-संयम व उदारता को प्रमुख मानती है और अर्थ का पुरुषार्थ धर्म के आधार पर व्यय करने की प्रेरणा देती है।

अर्थ की अधिकता व अल्पता भी परिस्थिति के अनुरूप मानव के मूल धर्म के निर्वहन में बाधक हो जाता है इसलिए अर्थ की आवश्यकता/उपलब्धता के प्रति संत कबीरदास जी कहते हैं-

"साईं इतना दीजिए, जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।।"

उपर्युक्त के मार्मिक अर्थ का पूर्णतया मानव द्वारा आत्मसात किये जाने के उपरान्त अर्थ के वास्तविक सदुपयोग के साथ धार्मिकता का विकास होता है।

काम का अर्थ है इच्छा। काम का उदय मन में होता है इसलिए काम को 'मनसिज' भी कहा जाता है। मानव मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति कामना अर्थात् इच्छा है। यही कामना सांसारिक भोगों का कारण है तो यह काम भगवत् प्रेम उत्पन्न करता है जिसकी पूर्ति ईश्वरोपासना में होती है, और जो मुक्ति का कारण बनती है।

काम भी धर्म पर आधारित होना चाहिए जिससे हमारे विषयभोग एवं इच्छापूर्ति के प्रयत्न से

सामाजिक व्यवस्था न बिगड़े, समाज में अशान्ति न पैदा हो। हमारा भोग भी समाज के लिए सुखकर हो। काम का औचित्य की मर्यादा में रहकर यदि सम्पादन किया जाय, तो वह उल्लास तथा आत्मिक आनन्द देता है तथा धर्मप्रधान होने के कारण मोक्ष का मार्गी बनता है।

काम धर्ममय तब बनता है जब काम का ज्ञान के रूप में परिष्कार किया जाता है। इन्द्रिय-संयम से उसका आरम्भ होता है किन्तु अन्त होता है ब्रह्म से साकार होकर – मोक्ष में। आज जो काम रूपी संकट दिखाई दे रहा है वह काम का धर्म से विलग हो जाने के कारण है। यदि हमें समाज को, व्यक्ति को सही दिशा में अग्रगामी बनाना है तो काम को धर्म के आधार पर प्रतिष्ठित करना होगा।

मानव जीवन में धर्म को वास्तविक आत्मसात के उपरान्त आध्यात्मीकरण तथा अर्थ के सदुपयोग के साथ काम की भावना को संयमित, निर्यंत्रित व सामाजिक स्वीकृति के साथ विकसित आदर्श जीवन-शैली ही उन्नतिशील समाज की आधारशिला रखता है। मानव द्वारा वास्तविक रूप में धर्म, अर्थ व काम के मध्य परस्पर सामंजस्य स्थापित कर आत्मा में एक परमसुख की शान्ति प्राप्त कर विदेह होने की स्थिति भी **मोक्ष** कहलाती है।

मोक्ष मात्र मृत्यु के उपरान्त प्राप्त होने वाली स्थिति नहीं है, मोक्ष मानव को जीते-जी भी प्राप्त होता है। दैनिक जीवन-व्यवहार में सही चिन्तन करके तथा जीवन जीने की कला द्वारा मानव जीवन के संत्रासों से मुक्ति पाता हुआ मानव सार्थक जीवन जीते हुए मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

आत्मतत्त्व का ज्ञान मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक है। संसार में मानव का जन्म कर्म करने के लिए हुआ है। कर्म ही बन्धन व मुक्ति का काराण है। हम अनासक्त भाव से कर्म करें। परिणाम ईश्वर पर छोड़ दें। मानव को कामनायुक्त कर्म का त्याग करना चाहिए जिससे यह सारा जगत् मोक्षमय बन जाए, अपने सभी कर्मों को परमसत्ता में अर्पण करते हुए पुरुषार्थ करे तो मानव इसी जीवन में मोक्ष पा सकता है।

मोक्ष किसी लोक विशेष में जा बसने जैसी उपलब्धि नहीं है। इसका सीधा सा अर्थ है- भवबन्धनों से छुटकारा। दूरदर्शी विवेकशीलता को जगाकर आत्मज्ञान, आत्मबोध ही परमात्मा का दर्शन है, जिसे यह अनुदान मिल जाता है वह जीवनमुक्त होकर आत्मभाव का विस्तार करता है। शरीर उसके लिए वैसा ही होता है, जैसे सर्प के लिए केंचुली। इसी स्थिति को परमात्मा में एकाकार होना, ब्रह्मलीन होना, मुक्त होना, परमगति को प्राप्त होना, कैवल्य, निर्वाण आदि अनेक रूपों में धर्मग्रन्थों में वर्णित होना पाया जाता है।

मानव जीवनोद्देश्य की प्राप्ति के साधन रूप में जीवन-मूल्य का विकास

मनुष्य का जन्म भगवान् का सबसे बड़ा उपहार है। सृष्टि में लाखों-करोड़ों योनियाँ हैं। धरती पर रहने वाले, आकाश में उड़ने वाले और जल में निवास करने वाले अगणित प्रकार के पशु-पक्षी, कीट-पतंगे, जीव-जन्तु इस संसार में रहते हैं। उनमें से किसी को भी वे सुविधाएँ नहीं मिलीं जो मानव को प्राप्त हैं। व्यवस्थित रीति से बोलने और सुसंगत रूप से सोचने की क्षमता मनुष्य के अतिरिक्त और किसी को नहीं मिली है। हममें से अधिकांश लोग जीवन की वस्तुस्थिति को समझने में भारी भूल करते हैं। हम समझते हैं कि प्रकृति द्वारा जो कुछ सुविधाएँ हमें प्राप्त हैं, वे विशुद्ध रूप से हमारे निज के उपयोग के लिए हैं। किया भी यही जाता है। हमें यह सोचना चाहिए कि परमात्मा ने हमें प्रकृति के रुप इतनी विशेषताएँ, इतनी सम्पदा, इतनी सुविधाएँ क्यों प्रदान की? मनुष्य को निरुद्देश्य वे सुविधाएँ नहीं मिल सकती हैं, जो आज उपलब्ध हैं। मनुष्य को मिली हुए विशेष सुविधाओं के पीछे उसका कुछ विशेष प्रयोजन है।

परमात्मा ने अपनी सृष्टि को सुन्दर, सुखी, सुव्यवस्थित एवं सुविकसित बनाने के लिए अपने एक विशेष सहायक के रूप में मनुष्य का सृजन किया और उसके ऊपर यह उत्तरदायित्व सौंपा कि वह संसार को अधिक सुरम्य, अधिक सरस बनाने के लिए अपनी प्रतिभा का उपयोग करे। मानव की अनेक विशेषताओं से भरे-पूरे जीवन का एक उद्देश्य यह भी है।

हमें प्रथमत: चाहिए कि सादा जीवन जीयें। उस स्तर का जैसा कि औसत मानव को जीना पड़ता है। यदि हम भौतिक वैभव को लक्ष्य मानेंगे तो परमार्थ के लिए न फुरसत मिलेगी न इच्छा उठेगी। इसलिए धन-प्रधान जीवन लक्ष्य को बदलकर उसे परमार्थ-प्रधान बनाना चाहिए।

दूसरा, हमें अपने प्रत्येक कार्य में उत्कृष्टता का दृष्टिकोण समन्वित करना चाहिए। जो कार्य करें इस सोच के साथ कि यह सब हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए नहीं वरन् इस सम्पूर्ण संसार को अधिक सुन्दर, समुन्नत तथा सुखी बनाने के लिए कर रहे हैं। संसार को अच्छा बनाने के लिए हमें अपने आपको अच्छा बनाना चाहिए। अपने आपको हम जितना अच्छा बना लेते हैं, उतना ही संसार का एक अंश उत्तम बन जाता है।

प्रयत्न यह किया जाना चाहिए कि हमारी दैनिक गतिविधियों में सद्गुणों की मात्रा निरन्तर बढ़ती रहे। पुरुषार्थ, परिश्रम, नियमितता, स्वच्छता, मधुर भाषण, मानसिक संतुलन, धैर्य, नम्रता, गुणग्राहकता, आत्मीयता, निष्पक्षता, न्यायप्रियता, उदारता, संयम, सज्जनता, सच्चरित्रता, शिष्टता, सतर्कता, शौर्य, साहस, श्रद्धा, कृतज्ञता आदि सद्गुणों को अपने विचारों एवं क्रियाकलापों में जितना अधिक समावेश होता चलेगा, उतनी ही आन्तरिक महानता बढ़ेगी और जीवन-लक्ष्य की पूर्णता सरल

होती जायेगी।

हर दिन को एक नया जन्म और हर रात को एक नयी मृत्यु समझने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रातःकाल जैसे ही आँख खुले चारपाई पर पड़े-पड़े ही यह भावना की जाय कि आज का दिन एक नया जन्म है, इसे अच्छे ढंग से व्यतीत करेंगे। इस सन्दर्भ में दिनभर की योजना बना लेनी चाहिए। विवेक, धन और समय यह तीन शक्तियाँ मनुष्य के पास सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उन्हें उपयुक्त कार्य में लगाया जा सके तो जीवन की सार्थकता का पथ सहज ही प्रशस्त हो सकता है।

प्रत्येक मनुष्य में अनेक दोष भरे रहते हैं और अनेक गुणों का भण्डार रहता है। हमें निरन्तर इन्हीं दोनों पक्षों को ठीक करते रहना है। जो दोष हैं उन्हें हटाया जाय और जिन गुणों की कमी है उन्हें बढ़ाया जाय।

जीवन निर्वाह के लिए हमें अनेक प्रकार के छिटपुट कार्य करने पड़ते हैं। उन्हें प्रसन्नता से करें पर उनके पीछे दृष्टिकोण ऊँचा रखें। स्वार्थपरता की संकीर्णता यदि दृष्टिकोण में से निकाल दी जाय और उसमें कर्तव्यपालन की भावना जोड़ दी जाय तो सामान्य से दिखने वाले छिटपुट कार्य ही उच्चकोटि के पुण्य परमार्थ बन सकते हैं।

रात्रि को सोते समय हमें एक जीवन की समाप्ति का अनुभव करना चाहिए। अपनी प्रगति की दिशा में प्राप्त हुई सफलता के लिए भगवान् को धन्यवाद देते हुए - भूलों के लिए पश्चाताप करते हुए परमात्मा की गोद में शान्तिपूर्वक सन्तोष और आनन्द का अनुभव करना चाहिए। महान गुणों का विकास महान कार्य करने से ही होता है। सद्भावनाओं की परिपुष्टि सत्कर्मों से ही होती है। उत्तम विचार और उत्तम कार्य से ही सुसंस्कार बनते हैं और उन सुसंस्कारों की मात्रा के अनुसार ही आत्मबल की वृद्धि होती है। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर हमें कुछ-न-कुछ धन परमार्थ कार्यों के लिए लगाना ही चाहिए। पानी में घुसने पर ही तैरना आता है। परमार्थपूर्ण कार्य करने से ही वह प्रयोजन पूरा होता है जिसके लिए हमें मनुष्य शरीर मिला है।

आत्मा और परमात्मा का जीवन-मूल्य के सृजन में योगदान

सच्चे अर्थों में आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध आत्मा का परमात्मा को प्रसन्न करना ही नहीं वरन् अपनी भक्ति भावना, प्रेम प्रकृति को विकसित करना है। विचारों और कार्यों में जीवन-मूल्य की प्रकृति झिलमिलाने लगे यही पूजा की सार्थकता है।

हमारी सोच प्राणिमात्र के हित-साधन की आकांक्षा से ओत-प्रोत रहे और कर्म का प्रत्येक अंश विश्व-मानव की सुख शान्ति की अभिवृद्धि करने वाला हो। जो प्राणिमात्र में ईश्वर को समाया

हुआ देखता है और बुराइयों मे बचकर उत्कृष्ट बनने के लिए प्रयत्न करता है, वह मुक्तिमार्ग का स्वाभाविक पथिक बन जाता है।

समयानुसार व्यवहार की कोमलता या कठोरता का अन्तर रहना स्वाभाविक है और आवश्यक भी, पर उसके मूल में अपना स्वार्थ साधन नहीं, दूसरों के हित की साधना एवं दूरवर्ती स्थिर फल देने वाली योजना ही सन्निहित होनी चाहिए। इसी में जीवन-मूल्य की सफलता और सार्थकता मानी जा सकती है। इस उद्देश्य में हम जितने सफल होते जाते हैं, परमात्मा उतना ही हमारे निकट आता जाता है। जीवन-मूल्य से युक्त आत्मा में अनेक आध्यात्मिक विशेषताएँ पायी जाती हैं। ऐसी आत्मा केन्द्रित व्यक्ति अपने निज को उज्ज्वल बनाने के साथ-साथ दूसरों का भी बहुत भारी हित कर सकने की शक्ति से सम्पन्न होते हैं। चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से चमकता है। जब वह चमक उसे प्राप्त नहीं होती है तो अमावस्या के दिन यथास्थान रहते हुए भी उसका अस्तित्व लुप्तप्राय ही रहता है। उसी प्रकार परमात्मा से दूर रहने वाले मनुष्य बहुधा मनुष्यता से रहित ही पाये जाते हैं। आत्मा परमात्मा का एक अंश मात्र है। उसे जो कुछ शक्ति और प्रतिभा प्राप्त है, वह परमात्मा की विभूति है। इन्हीं प्रतिभा को जाग्रत कर मानव जीवन-मूल्य का सृजन करता है। जीवन की सार्थकता जीवन-मूल्य पर ही निर्भर रहती है।

आत्मा को मूल्यों की शक्ति प्राप्त होती है, वह उपलब्धि उसे परमात्मा से ही मिली होती है। कर्म-फल बन्धन से प्राप्त शरीर में मन द्वारा अनेक कुप्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं। जिनका आत्मा की आवाज पर शमन किया जा सकता है। मोती समुद्र से ही निकलते हैं। उनका उपयोग कहीं भी किसी कार्य के लिए किया जा सकता है। इसी प्रकार जीवन-मूल्य का वरदान भी परमात्मा से प्राप्त होता है। अन्धा लाठी के सहारे अपनी मंजिल पार करता है। आत्मा भी इस पाप-ताप के अन्धकार से भरे संसार से जीवन लक्ष्य मूल्य प्राप्त करने की यात्रा परमात्मा का आशीर्वाद प्राप्त करके ही पूर्ण करता है।

जिसने सच्चे मन से परमात्मा का आश्रय लिया उसे सम्मति का वरदान मिला। मति का सही दिशा में लगना न लगना ही जीवन-क्रम की सफलता-असफलता का आधार होता है। जिसको जीवन के सदुपयोग की चिन्ता हो गयी, जिसने सत्य, धर्म और पवित्रता का अवलम्बन ग्रहण कर लिया उसे अपने भीतर आत्म-सन्तोष और बाहर से सहयोग एवं सम्मान की तरंगें उठती दिखाई देंगी और वह उसी आनन्द में मग्न होकर जीवन-मूल्यों की सफलता का रसास्वादन कर रहा होगा। यह अवसर परमात्मा की कृपा एवं अपने सदाचरण से ही मिलता है।

ज्ञान-कर्म-भक्ति जीवन-मूल्य के विविध घटक

मानव व्यक्तित्व के क्रमशः चार आधार हैं- शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा। इन चारों को पवित्र बनाने के लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग की तीन साधनाओं का क्रम अपनाना पड़ता है। कर्मयोगी बनकर शरीर को, ज्ञानयोगी बनकर मन एवं बुद्धि को और भक्ति योगी बनकर आत्मा को परिष्कृत किया जाता है। जीवन की समस्त विकृतियों, अनुभवों, उलझनों, अशान्ति आदि का बहुत कुछ मूल कारण मनुष्य का अपना अज्ञान ही होता है, यही परम शत्रु है। चाणक्य ने कहा है कि - "अज्ञान के समान मनुष्य का और कोई दूसरा शत्रु नहीं है।" शेक्सपियर ने लिखा है- "अज्ञान ही अन्धकार है।" प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने कहा- "अज्ञानी रहने से जन्म न लेना ही अच्छा है, क्योंकि अज्ञान समस्त विपत्तियों का मूल है।" अज्ञान मानव जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। यही जीवन की समस्त विकृतियों और कुरूपता का कारण है। सुख-सुविधापूर्ण जीवन बिताने के पर्याप्त साधन उपलब्ध होने पर भी कई लोग अपने अज्ञान और अविद्या के कारण अशान्त देखे जाते हैं। इसके विपरीत ज्ञान और विद्या के धनी सन्त-महात्मा, ऋषि प्रवृत्ति के व्यक्ति सामान्य साधनों में, यहाँ तक कि अभावों में भी सुख, शान्ति, सन्तोष का जीवन बिता लेते हैं।

ज्ञान जीवन का सार है, ज्ञान ही आत्मा का प्रकाश है जो सदा एकरस और बन्धनों से मुक्त रहने वाला है। ज्ञान जीवन का सर्वोपरि तत्त्व है। ज्ञान धन जीवन का बहुमूल्य धन है। सभी प्रकार की भौतिक सम्पत्तियाँ समय पर नष्ट हो जाती हैं, किन्तु ज्ञान धन प्रत्येक स्थिति में मनुष्य के पास रहता है और दिनोंदिन विकास को प्राप्त करता है। ज्ञान अमोघ शक्ति है जिसके समक्ष सभी नकारात्मक शक्तियाँ निष्प्रभ एवं सत्य प्रकाशमान हो जाता है। ज्ञान जीवन का प्रकाश-बिन्दु है जो मनुष्य को सभी द्वन्द्वों, उलझनों, अन्धकारों की दीवार से निकालकर शाश्वत पथ पर अग्रसर करता है।

ज्ञान मनुष्य के चरित्र और व्यावहारिक जीवन को उत्कृष्ट बनाता है। ज्ञानी शुभ कर्म एवं सदाचरण के द्वारा अपने आन्तरिक व बाह्य जीवन को पवित्र एवं उत्कृष्ट बना लेता है। ज्ञान का ध्येय सत्य है और सत्य ही आत्मा का लक्ष्य है। ज्ञान मनुष्य को सत्य के दर्शन कराता है। सार्थक जीवन की आधारशिला ज्ञान है। बुद्धिमता की सच्ची कसौटी यह है कि मनुष्य अपनी सच्ची जीवन दिशा निर्धारित करे। कर्म का महत्त्व तब है जब उससे हमें अपना जीवन लक्ष्य प्राप्त करने में सफलता मिलती है। ज्ञान ही इस संसार की सर्वोपरि सम्पत्ति है।

ज्ञान को आत्मा का नेत्र कहा गया है। नेत्रविहीन व्यक्ति के लिए सारा संसार अन्धकारमय है। ज्ञान के आधार पर हमें धर्म का, कर्तव्य का, शुभ-अशुभ का, उचित-अनुचित का विवेक होता है और इस सांसारिक पाप प्रलोभनों के आकर्षणों के पार देख सकना सम्भव होता है। अज्ञानी व्यक्ति

यह सब जान नहीं पाते। इन्द्रियों की वासना और प्रलोभनों के कारण मनुष्य पतन की गर्त में गिरता जाता है। भौतिक जीवन की सफलता और आत्मिक जीवन की पूर्णता के लिए सबसे प्रथम सोपान ज्ञान की प्राप्ति है। विद्यालयी शिक्षा 'ज्ञान' की प्राप्ति के लिए एक साधन मात्र है। ज्ञान का स्तर इससे ऊपर है। स्वाध्याय ज्ञान प्राप्ति का बाह्य उपाय है, चिन्तन एवं मनन आन्तरिक उपाय हैं।

मनुष्य का जीवन एक आदर्श कर्म-विद्यालय है। इसमें स्नातक वे समझे जाते हैं जो कर्म को जीवन के ध्येय का साधन मानकर उसे कुशलतापूर्वक निभाते हैं। विद्यार्थी अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने का लाभ तब पाता है जब वह लगनपूर्वक, भावनापूर्वक अध्ययन कार्यों में लगा रहता है। जिस तरह स्वाध्याय की चमक यह व्यक्त करती है कि विद्यार्थी का भविष्य उज्ज्वल है उसी प्रकार कर्म की उच्च भावना यह बताती है कि इस मनुष्य का हृदय उत्कृष्ट और विशाल है। कार्य करने की लगन एवं भावना समस्त परिस्थितियों को अनुकूल बनाती है। कर्म में कुशलता प्राप्त करने का नाम योग है। अच्छी भावपूर्ण कविता लिख लेने वाले को कहते हैं कि वह कुशल कवि है। अच्छा भवन बना लेने वाले को कहते हैं कि कुशल कारीगर है। किसी काम की दक्षता प्राप्त कर लेना ही उस कर्म की कुशलता हुई। आध्यात्मिक भाषा में इसे ही योग कहते हैं।

कर्म साधना के लिए कोई विशेष कार्य ही होना चाहिए, ऐसी बात नहीं, सभी तरह के कार्य व्यवसाय, खेती, शिल्प, कला, नौकरी, मजदूरी आदि अपने-अपने स्थान पर अपना महत्त्व रखते हैं। प्रत्येक कार्य अपने स्थान पर उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना दूसरे कार्य। छोटे समझे जाने वाले कार्यों को भी भली प्रकार करते हुए मनुष्य जीवन में उत्कृष्टता प्राप्त कर सकता है। इसी तरह बड़े कार्य को ठीक तरह से न करके वह जीवन में असफल भी हो सकता है। कार्य के छोटे-बड़े होने का इतना अधिक महत्त्व नहीं है। सबसे महत्त्वपूर्ण है कार्य करने का ढंग और उसमें सन्निहित भावना। एक व्यक्ति किसी अच्छे काम को ही लापरवाही एवं अपनी कमजोरियों से बिगाड़ कर जीवन में असफल हो सकता है तो दूसरा व्यक्ति अपने साधारण से काम को रुचि, लगन एवं तत्परता के साथ पूर्ण करके उसे जीवन की सफलता का आधार बना लेता है। अन्तर यही है कि पहला व्यक्ति कार्य को भार मानता है और दूसरा उसे साधना मानकर चलता है।

एक छोटे बच्चे एडीसन को उसकी माँ वैज्ञानिक बनाने के विचार से एक बड़े वैज्ञानिक के पास ले गयी और उनके पास अपने बच्चे को रखने की प्रार्थना की। उस वैज्ञानिक ने बच्चे को अपने पास रख लिया और झाड़ू लगाने का काम सौंपा। वह बालक बड़ी तन्मयता के साथ घर में झाड़ू लगाता। वैज्ञानिक बालक की कार्यकुशलता से बड़ा प्रसन्न हुआ। उसमें उसने कर्मयोगी के लक्षण देखे तथा उसी आधार पर उसे विकसित होने का अवसर दिया और वही उस वैज्ञानिक की देखरेख में आगे चलकर महान वैज्ञानिक बना। यदि बालक पहले ही यह सोच लेता कि यहाँ तो झाड़ू लगाने

का काम है, यहाँ क्या सीखने को मिलेगा? तो शायद वह अपने जीवन की महानता को प्राप्त न कर पाता। अन्य साधारण व्यक्तियों की तरह ही अपना जीवन बिताता।

जब किसी कार्य को पूर्ण लगन के साथ किया जाय तो मनुष्य की सोयी हुई शक्तियाँ जागृत हो उठती हैं। उनमें कार्य करने की क्षमता एवं शक्तियों का विकास हो जाता है और इसी से वह एक से दूसरे कार्य में सफलता प्राप्त करता चला जाता है। प्रत्येक कार्य एक कला है चाहे वह छोटा हो या बड़ा। प्रत्येक कार्य का मौलिक आधार समान है। जिस तरह एक कलाकार अपनी कला से प्रेम करता है, उसमें तन्मयता के साथ खो जाता है, उसी तरह प्रत्येक कार्य को पूरी तन्मयता एवं मनोयोग से किया जाय तो वह कार्य ही निश्चित समय पर वरदान बनकर मनुष्य को धन्य कर देता है। प्रत्येक कार्य एक खेल जैसा लगे तभी मनुष्य उसमें सफलता अर्जित कर सकता है।

एक बात सामान्यत: कही जाती है कि मनुष्य का कर्म में अधिकार है उसे प्रत्येक अच्छा-बुरा कार्य करने की स्वतंत्रता है। वहीं दूसरी ओर निर्देश है कि मनुष्य सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता। वह एक माध्यम मात्र है। इन कथनों के विरोधाभास को समझने के लिए गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। मनुष्य में जो चेतना पूर्ण गतिमान है उसका कारण तो वह विराट शक्ति है, किन्तु कर्मगति की दिशा मनुष्य की अपनी है। परमात्मा विद्युत की भाँति गतिशीलता की शक्ति तो देता है किन्तु उस शक्ति से संचालित मनुष्य-यंत्र किस ओर जाता है इसका उत्तरदायी वह नहीं है। विद्युत धाराएँ केवल प्रेरणा देती हैं। अब आगे उपभोक्ता का कर्तव्य है कि वह उनका उपयोग रोशनी करने में करता है या किसी के प्राण लेने में। गैस मोटर को धकेलती भर है उसके चलने का ढंग संचालक पर है। अनासक्ति कर्मयोग का यह फल कदापि नहीं है कि तटस्थ रहकर कुछ भी अच्छा-बुरा किये जाओ, कोई भी गुण-दोष हमारे लिये नहीं आयेगा। अनासक्ति कर्मयोग का केवल यह अर्थ है कि अपने कर्मों के फल से प्रभावित होकर कर्मगति में विराम न आने दें। दिन-प्रतिदिन अपने कर्मों में सुधार करते हुए परम पद की ओर बढ़ते जायें।

भक्ति का स्वरूप नि:स्वार्थ प्रेम का है। प्रेम का विकसित रूप ही आध्यात्मिक गुणों- श्रद्धा, भक्ति विकास आदि के रूप में प्रकट होता है। जो वस्तु मनुष्य, समाज के विकास और नैतिक उत्कर्ष में सहायता देती है, वह प्रेम ही है। यदि मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम का आदान-प्रदान न रहा होता और मानव जाति का प्रगति के मूल में प्रेम का प्रेरक भाव न होता तो नैतिक क्षेत्र में उसने कोई भी उन्नति न की होती।

प्रेम विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली सत्ता है। उसी के आधार पर मनुष्य समाज जीवित है, यह न होता तो मनुष्य बड़ा दरिद्र एवं अविकसित रहा होता। मनुष्य को केवल अपना ही ध्यान रहता

उसे समाज सेवा के लिए प्रोत्साहन न मिला होता। प्रेम की शक्ति का साम्राज्य आज सुव्यवस्थित और सुनियोजित विश्व के रूप में देखने को मिल रहा है। इस उदात्त भावना का दर्शन संसार के सभी धर्मों में पाया जाता है। परमात्मा को प्रेममय समझकर प्रेम मार्ग द्वारा उनकी साधना सभी देशों के भक्तों एवं साधकों में देखी जाती है।

हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि भौतिक विकास के साथ-साथ परमात्मा के शुद्ध प्रेम के लिए अपने आपको, अपनी आत्मा को, अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण मानव समाज को विकसित करना चाहिए। इस विकास के मार्ग पर जितना अपना अहंभाव नष्ट होता जायेगा हम उतना ही परमात्मा की सत्ता में समाते चले जायेंगे। एक श्रेष्ठ जीवन-मूल्य का विकास करते जाएंगे। अगली पीढ़ी के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते जायेंगे। यही जीवन सार्थक है, सोद्देश्यपूर्ण है और सफल है।

Traditional Medicine System: Siddha

Manish Kumar Tripathi*

India is known for its diversity at a global scenario concerning culture, language, religion, and the way of treatment for diseases. In India, a lot of methods like Ayurveda, Unani, homeopathy, and Siddha, are used for the treatment of diseases. Ayurveda is a type of medicine system which was grown in Indus valley civilization and based on available evidence; it came into the practices around the 6th to 7th century B.C.[1-5]. Ayurveda, is a Sanskrit word, means knowledge (Veda) of life (Ayur)[6]. Mostly scriptures and texts of Ayurveda are in Sanskrit. A detailed description of Ayurveda medicine system is found in the Atharva Veda. There are two primary texts Charaka Samhita & Susruta Samhita for Ayurveda. Ayurveda is practiced in Indian subcontinent mainly generally more than 90 percent of the Indian population used Ayurvedic medicine in a different form; it is used as an alternative system in the treatment of disease.

In the ancient time human adopting some methods for the cure of disease and wound healing, they are mainly dependent on the plants and animal originated substances their evidence are found in the various literature[1]. But, all communities had their traditional healing practices which based on their geographical scenario and available raw materials and the traditional medical systems had its philosophy with respect to man and nature, body and mind, body and environment, dissimilar to western biomedicine system (Allopathy) which is only focused about diseases and its evidentiary causes[1]. The traditional healing process was practiced not only with medications but also with faith in magical rites and rituals.

In Ayurvedic system, disease treatment is personalized and specific for a particular person on the basis of constitution of persons and equilibrium between prakruti (Vata, Pitta and Kapha) which is responsible for the physical, physiologic & mental character as well as disease vulnerability of person who was suffering with chronic disease due to imbalance of prakruti. According to Ayurveda, prakruti is helping to understand the patient's doshas or health condition. Disturbances in doshas are linked with a range of Ayurvedic treatments like herbal remedies, dietary restrictions, yoga, massage, meditation

*Research Scholar, Department of Chemistry, IIT (BHU) Varanasi 221005 U.P.

and breathing exercises (Pranayama) so that Vata, Pitta, and Kapha maintain equilibrium, thus Ayurveda is trying to keep a person healthy without curing of disease.

Ayurvedic medicine system is distinct from the traditional medicine system as well as from modern science also concerning the philosophical, epistemological foundation, conceptual framework, and practical outlook. But the primary intention of all kind of medicine systems is to attain the mortality of mankind.

Other traditional medicine systems, except Ayurveda and Siddha having very less or no knowledge of metal and minerals for drugs purposes[3]. According to B V Subbarayappa, "Around the fourth century AD the seeds of new thinking coupled with esoteric practices, but inspired by Chinese alchemy, began to sprout. In the following five or six centuries, this manifested itself in the form of Rasastra (Sanskrit tradition) and Siddha (Tamil tradition)[1].

Prof. Brigitte Sébastia tells about the concept of metal used in the drugs, according to him, "Siddha and Ayurveda medicine share many theoretical concepts. Siddha medicine possesses, however, some unique diagnostic methods: elaborated readings of pulse, and of urine using one drop of sesame oil for quantifying the imbalance of the three dosahas and determining the disease. But its determining difference from Ayurveda is its anchorage in Tamil culture and esoteric alchemy and tantrism." Thus from the above, it is clear that the ancient south Indian peoples used metals and minerals mostly into the drugs in comparison to north Indian peoples.

Drug formulation based on metals and minerals are quoted as herbo-metallic preparations, and it gets popularized among Chinese and Indian traditions[1]. Herbo metallic drugs are more potent and sustainable over herbomedications[7]. In Indian culture, other traditional medicine systems like Siddha, Unani, Homeopathy, and Yoga, are also used for disease treatment, as mentioned in the Indian legislature[3]. Out of these Siddha got popularity mainly in between Tamil speaking peoples, which mainly used herbo-metallic drugs for disease cure[6]. In Siddha medicine system, 225 metals and minerals based drugs have medicinal importance. According to Siddha literature, there are five parts on which Siddha system used metal and minerals in preparation of medicines which are as follows-

S.No.	Division	Type	Numbers
1.	Ulôkam	Metal and its ores	11
2.	Uppukal	Water-soluble salts	25
3.	PâmâGam	Water-insoluble Inorganic substances	64
4.	Uparacam	Minerals (water-insoluble Inorganic substances which do not produce vapor on heating)	120
5.	Pañcacûtam	Mercury and its salts	5

Along with these 225 metal/mineral substances also use plants and animals originated substances into the traditional pharmaceutical processes. Almost every conventional medicine systems used own specific pharmaceutical processing techniques to convert metal and minerals based materials to potent substances along with plant and animal originated products for HMP processing. In the synthesis of HMPs used calcination, sublimation, distillation, dissolution, fusion separation, combination, purification, incineration, etc. method[8]. Purified metal and minerals via adopting specific processing methods would not show any trans effect in the body when minute quantities are used, resulting purified metals are most active than herbal medicines as described in Siddha texts. According to Siddha medicine system, a single HMPs can cure various diseases only by changing the carriers like honey, milk, herbal extracts, etc. Thus the potency of the drug will be varied in accordance with the nature of carriers of the drugs for better therapeutic results associated with specific dietary menus[6]. The main focus of current work is to understand working principles of Siddha medicine system along with disease cure potency and the nature of materials for Siddha system briefly.

Basics concepts of Siddha Medicine[9]

Concept of Siddha medicine and Ayurveda are same; both are show conflict only on the sequences of the physiological components [Vatham, Pitham and Kapam] for different stages (like childhood, adulthood and old- age) of a human being.

According to Siddha medicine psychological and physiological functions of body ascribed on the basis of seven elements, first is saram (plasma) governs growth, development, nourishment; second is cheneer (blood) guides nourishing muscles, imparting color and improving intellect; third is ooun(muscle) dictates shape of body ;fourth is kollzuppu (fatty tissue) regulates oil balance and lubricants in joints; fifth is enbu (Bone) governs body structure and body positionsas well as movement; sixth is moolai (nerve) governs strength and sukila (semen) governs reproductivity.

Physiological components[9]

Siddha system has five elements like air, water, fire, earth, and ether are characterized in the form of vatha, pitha, and kapha, which makes a foundation for corporal things. The appearance of five elements (Panchabhootham) in the human body is distinct but makes the human body. The distribution of this element in the human body are as follows:

Earth : Bone, Flesh, Nerves, Skin, and Hair

Water : Bile, Blood, Semen, Glandular secretions and Sweat

Fire : Hunger, Thirst, Sleep, Beauty, and Indolence

Air : Contraction, Expansion, and Motion

Ether : Stomach, Heart, Neck, and Head

Panchabhootham theory divided raw materials or crude drugs into five categories based on elements.

Metals	Predominant
Gold	Earth
Lead	Water
Iron	Air
Copper	Fire
Zinc	Space

For example, gold metal exhibit characteristic of the element earth, which is the major element in its preparation and other metals could be attached with them.

Generally, three elements – air, fire, water are used broadly in the Siddha system because these three elements are responsible for the construction of the human constitution. Therefore these components- kapha (Water), Pitta (Air) and Vata (Fire) are called humor, and if these components are unbalanced, then causes a different type of disease in human being. Their ratios make human physically healthy and mentally fit and working as a bridge between human (microcosm) and the whole world (macrocosm).

Siddhars told that vata is self-originated and equivalent to the god energy, and imbalance of vata creates so many diseases. Pittawa governs characteristic of fire, like burning, boiling, heating, and similar sensations. The name Pittawa was given to heat content in liquid bile, which is responsible for the explosion of waste materials in the form of urine and feces and also governs beauty, the sight of the eye, peace of mind and

beauty of skins. Kapha supplied moisture to body and regulates digestion and sensation like taste to the tongue. Pulse is an indication or presence of humor in the system provides a correct way of diagnosis.

Diagnosis[10]

During diagnosis, eight things are required generally, which is known as astasthanapariksa. These are

1. na (tongue): black in vatha, Yellow or red in pitha, white in kapha, ulcerated in anaemia.
2. varna (color): dark in vatha, yellow or red in pitha, pale in kapha
3. svara (voice): normal in vatha, high pitched in pitha, low pitched in kapha, slurred in alcoholism.
4. kan (eyes): muddy conjunctiva, yellowish or red in pitha, pale in kapha.
5. sparisam (touch): dry in vatha, warm in pitha, chill in kapha, sweating in different parts of the body.
6. mala (stool): black stoll in vatha, yellow in pitha, pale in kapha, dark red in ulcer and shiny in terminal illness.
7. neer (urine): early morning urine is examined; straw color indicates indigestion, reddish yellow in excessive heat, rose in blood pressure, saffron color in jaundice and looks like meat washed water in renal disease.
8. nadi (pulse): the confirmatory method recorded on the radial artery.

The methodology of drugs[10]

Siddha system is the one of the most ancient traditional medication systems which uses metals and minerals predominantly in Indian traditional medicine system that's why the Siddha system becomes more advanced than Ayurveda. The use of metals and inorganic substances in the Siddha system was justified by the fact that to preserve the body from deteriorating materials that do not decompose quickly should be used. Another reason was that the rivers of south India was not perennial, and herbs were not available up to the whole year. Siddhars classify drugs in three categories: thavaram (herbal product), thathu (inorganic substances) and jangamam (animal products). Thathu drugs are further classified as follows

1. Uppu: water-soluble inorganic substances or drugs that give out vapor when putting into the fire.
2. Pashanam: drugs not dissolved in water but emit vapor when fired.

3. Uparasam: similar to pashanam but differ in action.
4. Loham: insoluble in water but melt when fired.
5. Rasam: soft drugs.
6. Ghandhagam: drugs which are insoluble in water.

Classification of Siddha medicine based on properties:

1. Suvai (taste)
2. Guna (character)
3. Veerya (potency)
4. Pirivu (class)
5. Mahimai (action).

Classification of Siddha medicine based on drug applications:

1. Internal medicine: Internal medicine was used through the oral route.
2. External medicine: External medicine includes certain forms of drugs and also specific applications like a nasal, eye, and ear-drops.

Classification of Siddha medicine based on pharmaceutical preparations:

1. Kudineerchuranam(decoction powder): Fine powder of drugs.
2. Chendooram: It is a red colored powder which is synthesized from metallic compounds.
3. Chunnam: Alkaline in nature.
4. Kalangu: dependentmainly onHg
5. Karpams: It is herbal or non herbal specifically, and it is synthesiieddaily.
6. Karruppu: Hg and S are necessarily present,whichis dark black.
7. Legiyamsand rasayanams: It has ghee, honey, and sugar, along with herbal-powder and juices.
8. Mathiraiand vadagam: This is a pill which is prepared from the fine powdered paste.
9. Maappagu: A type of medicinal syrup, and it contains aromatic herbs, honey, and sugar.
10. Mezhugu, kuzhambu, kalimbu,and mai: A type of waxy feel.
11. Ney: It is medicated ghee and also contains fat-soluble plant species.
12. Pakkuvamand theenooral: Aherbal medicine mixed with honey.

13. Parpam: prepared by via calcination process.

14. Patangam: HavingHg, camphor, etc.

15. Thailam: A type of medicated oil; mainly used sesame seed oil, coconut oil, castor oil, for preparation of medicated oil.

16. Theeneer: It is distilled essence, which contains vapourisablematerial of the drugs.

Mercury is used in Siddha system basically through five different ways like rasam (Hg), lingam (red sulphide of Hg), veram (mercury perchloride), pooram (mercury subchloride) and rasa-chinduram (red oxide of Hg). This is known as panchasutha.

Synthesis of Siddha drugs[9]

When metals and minerals are converted into medicines strictly adhering to the classical guidelines specified in the traditional texts, they are devoid of any toxicity even at the level of 100 TEDs (therapeutic dose). These literatures reveal that ancient scholars had considered the possibility of toxicity of metallic preparations, and emphasized the necessity of taking great care over this point. They evolved specific methods using various pharmaceutical techniques like shodhana, jarana, marana etc. which have their own significance in detoxifying and increasing the therapeutic potential of metals (11).

Siddha pharmacology is also known as gunapaadam, which deals with the study of Siddha drugs. Since Gunam means properties of medicines, padaam means detail study. Thus gunapaadam means detail study of drugs. There are so many herbs, minerals, animal products are used in the formation of medicine. Generally, medication is characterized into four categories:

1. Raw Drugs
2. Basic principles
3. Purification process
4. Preparation process

Raw drugs[9]

On the basis of origins of raw materials, raw drugs are categorized as follows

1. Plant origin (Mooligai Vaguppu)
2. Metal and Metal origins (Thathu Vaguppu)

3. Animal origin (seevamvaguppu)

Plant originated drugs raw[9]

Mooligai Vaguppu further will be classified into 11 sub-divisions which based on the parts used in medicine formation. Roots, leaves, barks, flower, and fruits of plants are used in medicines.

Metal and metal originated drugs raw[9]

Siddha system frequently used metals and metal minerals in preparation of medicines for the treatment of disease generally 220 minerals have medicinal importance.

Siddhars have expertise in the preparation of drugs by using metals like chendooram and parpam and chunnam, mezhugu and preparation of heat prevalent materials, i.e. kattu. The preparation of metal-containing drugs possible if and only if the man who synthesized have a strong knowledge of Inorganic substance. These ions are ground with herbs or herbal juice and then put it into the fire in a controlled manner. Such type of process gives long life to drugs, and its potency will be improved that's why these drugs provide perfect result in a small number of dosages.

Animals Originated Drugs Raw[9]

Fleshes of some animals are used for the preparation of Siddha medicine like Kasayam prepared by using chicken or frog fleshes. Fresh water snails are used for the treatment of piles. Some other parts like urine, feces, skulls, blood, bones, etc. of animals are used in the preparation of medicine and which play a very crucial role in the treatment. For example,perandabhasmais used, which is made of human skull bones and the skulls of dogs.

Working Principle for Siddha Medicine[9]

According to Siddha and Bhagavatgeeta tells that the formation of the universe and human being by the composition of Panchabhootham are Nilam (earth), Neer (water), Thee (fire), Vali (air) and Aagayam (space). Gunapaadam depends on Panchabhootham (five elements) and Suvai (taste). Panchabhoothamis related to specific metals which play a significant role in medicine preparation, and Suvai also have a substantial role in the Siddha system. Experiences of flavor will be possible only if when drugs are taken through mouth, i.e. orally. Generally, there are six tastes which are sweet, sour, salt, pungent (spicy), bitter and astringent. The relations of these tastes with panchabhootham are as follows :-

Suvai (Taste)	Panchabhootham (Elements)
Inippu (Sweet)	Earth + water
Pullippu (Sour)	Earth + Fire
Uppu (Salt)	Water + fire
Kaippu (Bitter)	Air + Space
Kaarppu (Pungent)	Air + Fire
Thuvarppu (Astringent)	Earth + Air

Classification of Drugs raw material based on tastes:

Medicinal Herb	Predominant Taste
SesamumIndicum	Sweet
TamarindusIndicus	Sour
Cassia Tora	Salty
AndrographisPaniculata	Bitter
ElettariaCardamomum	Pungent
SaracaAshoka	Astringent

Purification process[9]

The aim of purification of raw drugs is done for accuracy of minerals or metals concentration so that body sustains drugs. During purification processes cleaning, frying soaking and grinding with herbal juices until impurities will be removed. No medicinal preparation would be done without prior Suddhi process. By this process, toxic and unwanted materials are removed, resulting give better results.

Preparation process[9]

Preparation of medicines from herb originated raw materials are based on the taste, and the procedure for preparation of these medicines are given in Siddha literature. Since tastes sweet, salt and sour are an exit in the category of compatible flavors whereas bitter and pungent are in a class of inimical tastes.Medicinal preparation for metals and minerals and animal originated drugs are based on antagonistic (Opposed) drugs (Sathru Sarakku) and synergistic (friendly) drug (Mithuru Sarakku). For the synthesis of drugs take all raw drugs and mixed well and ground them in proper ratios, as mentioned in literature by following definite principle.

Generally, Siddha system classifies all medicinal preparation methods in 64 parts, 32 are for internal medications, and 32 for externally used medicines.

Summary

Methodology of Siddha medicine system is mostly similar to Ayurveda, but in the Siddha medicine the use of metal and minerals is predominant, which makes fabulous and potent for providing better treatment. Pulse reading and urine testing are essential features of Siddha medicine for prolonged disease. Pulse reading measurement was developed by the Siddha's and was utilized in the diagnosis and treatment of diseases. According to the Siddha system, imbalances of humour cause health problems. Siddha medicine used metals or minerals like mercury, silver, arsenic, lead, sulfur, which makes the Siddha system unique, and its affectivity is also very high in treating disease.

- Ayurveda and Siddha both are different in the sequences of Vata, Pitha, and Kapha for certain group of the age range.
- Siddha system used heavy metals into drugs for disease treatment without any trans effect on the human body.
- For disease treatment, Siddha practitioners firstly diagnose pulse, urine, Saliva, mala, and blood to know the exact health status.
- Siddha systems are personalized with respect to drugs for the disease for a specific person.
- Utilizing shodhana, jarana, maranamethods which have their own significance in detoxifying and increasing the therapeutic potential of metals into the Siddha medicines.

Thus. Siddha medicine is more potent with use of metal and mineral along with herbs, which is able to diagnose chronic diseases.

References

1. Subbarayappa B V. The roots of ancient medicine: A historical outline. J. Biosci 26:135-144, 2001.
2. White D G. The Alchemical Body. Chicago, The University of Chicago press, Chicago - 60637, 1996.
3. Sebastia B, Preserving identity or promoting safety? The issue of Mercury in Siddha medicine: A brake on crossing the Frontires Asia, 2015, 69: 933-969.
4. Eugene Wilson GVR, Neera Vyas, A Agarwal and G P Dubey: Herbs used in Siddha medicine for arthritis - A review. IJTK. 2007, 6: 678-686.
5. Little L, An introduction to the tamil Siddhas: Tantra, Alchemy, poetics and Heresy within the context of wider tamilshaiva world. Indian Folklife, 2003, 2: 14-19.
6. Subbarayappa B V. Siddha medicine: An overview, Lancet 1997, 350: 1841-44.
7. A Kumar AGCN, A V R Reddy, A N Garg: Bhasmas Unique Ayurvedic Metallic–Herbal Preparations, Chemical Characterization, Biol Trace Elem Res, 2006, 109: 231-254.

8. Thiyagarajan R, Kaantham, KuGapâmam - Part 2 & 3 (ed. IV). Chennai, Tamil Nadu, India, Deparment of Indian medicine and homeopathy, Chennai - 600106, 2004.128 – 143.

9. https://www.infinityfoundation.com/mandala/t_es/t_es_tiwar_siddha.htm

10. https://www.brainkart.com/article/Siddha-system-of-medicine_35557/

11. M. Tofanelli, L. Pardini, M. Borrini, F. Bartoli, A. Bacci, A. D'Ulivo, E. Pitzalis, M. C. Mascherpa, S. Legnaioli,G. Lorenzetti, S. Pagnotta, G. De HolandaCavalcanti, M. Lezzerini and V. Palleschi, Spectroscopic analysis of bones for forensic studies, Spectrochim. Acta, Part B, 2014. 99, 70–75, DOI: 10.1016/j.sab.2014.06.006.

Buddhism in Thailand

Rajesh Ram*

Sixth century B.C. is a remarkable period in the cultural and religious history of India. It is the period of spiritual unrest and intellectual ferment in the country. The appearance of the Buddha in the spiritual field is the most important event in the religious history of the country. Buddha was the first man who realised the importance of human beings and prescribed a path (Atthangika-Magga) for them, where there was a hope of realizing the Dhamma in this very life by each individual if he rightly followed the noble path.[1]

During the time of the Buddha there was a very powerful order to his followers in India. All the cities, towns and villages of Jambudvipa, especially of northern India, were lighted with the yellow-light emitting from the yellow robes of wayfarers, wandering for the welfare of many. There was the talk of Buddha, Dhamma and Sangha every-where in the towns, the cities and the villages etc. among the followers of Buddha and also among others. Thus the spread of Buddhism in different parts of India can easily be seen in the Pali texts, where there are descriptions of the carika of the Buddha and his followers.

Thus Buddha's Dhamma was limited in the country till 218 years after the Mahaparinibban of the Buddha. Immediately after that there is the remarkable role of Emperor Ashoka who did much for the propagation of Buddhism in the neighbouring countries of India. He sent nine missionaries to different parts of India for the propagation of Buddhist thought. He sent nine missionaries headed by learned and experienced monks to different places who did a great deal for the growth of the seed of Dhamma in the heart of the people. The Mahathera Sona accompanied by the Mahathera Uttara arrived at Suvannabhumi (Siam, Cambodia, Burma, Malaya Peninsula and Sumatra) and delivered Brahmajalasutta. Thus during the time of Ashoka, Buddha-Dhamma crossed the boundary of India and planted itself in the hearts of people in those countries.[2]

Thailand is the country of living Buddhism. She got the light of Dhamma very early. There are many archaeological evidences which prove this fact. A number of

*D. Litt Scholar, Magadh University, Bodhgaya (Bihar)

remains of religious structures, ruins of the images of the Buddha inscribed terracottas, definite symbols of Buddhism like the Dharmacakra are available in places like Pong Tuk and Phra Pathom. However, for giving a brief survey of the flourishing of Buddhism in Siam (Thailand), it seems describable to present a study under the following four heads, namely:

1. First Period : Theravada Buddhism,
2. Second Period : Mahayana Buddhism,
3. Third Period : Theravada Buddhism from Pagan
4. Fourth Period : Lanka Vamsa

First Period in the Third Century B.C. i.e. Theravada Buddhism

The introduction of Buddhism in Thailand is seen in the earliest period of the history of the faith. It is said that Buddha-Dhamma was first introduced in Siam when Nakon Pathom was its capital city. This is evident from archaeological remains found at Phra Pathom Pagoda. There are many such antiquities where the wheel of Dhamma is seen carved on them.[3] They were the objects of worship before the innovation of the Buddha's images and such sculpture was fashionable with the devotees of Buddha in India prior to the existence of image of Buddha. It was the earliest form of Buddhism known as Theravada Buddhism which was introduced into Thailand before 43 B.C. (500 Buddhist Era).

Later on the practice of worshipping the Buddha was changed. The people made the image of Buddha in all sizes as described in the scriptures and began worshipping it. Making of Buddha image for worshipping became popular in India. The Indians introduced such worship in Siam. The images of Buddha were made after Indian style. A careful study of these images from archaeological point of view reveals that the making of images started in India during Gupta dynasty and the characteristics of these images were introduced into Siam in about 357 A.D. This proves that the Indians, especially from Magadh introduced Buddhism into Siarn in the earliest period, perhaps at the time of Dvaravati.

A large number of ruined sanctuaries and some fine sculpture of the Dvaravati indicate the strong influence of the Gupta period. When Hiuen Tsang came in the first half of the seventh century A.D. he found the art of making of Buddha image in a flourishing condition. Such archaeological remains found in Nakon Pathom, Rajaburi, Suphanburi, Lopaburi – the seat of the Mon administration of Dvaravati and Nakonrajasima attest to this fact.[4]

Second Period in the Seventh Century A.D. i.e. Mahayana Buddhism

Later on another form of Buddhism which was called Mahayana Buddhism came into existence and became popular in India. The Indians took this form of Buddhism to different places. First of all it went to Sumatra, then to Java and again to Cambodia. It is also said that a group of Indian monks especially from Magadh went to Burma, Mon and Dvaravati with the Mahayana form of Buddhism[5]. But Theravada Buddhism was deeply rooted and well established from the early period and it was accepted by the people in those countries.

It is further said that during 757 A.D., the king of Srivijaya in Sumatra became very powerful. He extended the boundaries of his country in the Malaya Peninsula. Mahayana form of Buddhism was flourishing there. The king of this land tried to spread their faith in the provinces occupied by them. It is evident from the monuments of Mahayana type, built by the kings of Srivijaya. The great Relics Pagoda at Jaiya and the old Grand Pagoda at Nakorn Sri Thammarata speak of this fact. During the course of excavation or at the time of ordinary digging by the people, the images of the Buddha, Bodhisattvas and the sculptures showing Mahayana influence are found in the provinces like Nakorn Sri Thammarata, Trang, Padaloong, Kedah, Patani, Java, Sumatra etc.

In this context it is also seen that during 1017 A.D., a king from Srivijaya lineage came from Nakorn Sri Thammarat to occupy Lopaburi. Immediately after him his son became the ruler of Cambodia and during this period Siam and Cambodia were under the sway of this dynasty. As a result of that the religion, culture, arts, architecture of Cambodia had its influence on Siam. A stone inscription of this period bears evidence that Lopaburi was a centre of the monks of Sthavira (Thera) and Mahayana Schools. Thus through Cambodian kings, the Mahayana form of Buddhism came to Siam.[6] There are also materials which speak that side by side with role of the Buddhism there was also the role of Hinduism in the country. So both Hinduism and Buddhism can be seen flourishing side by side in Cambodia and Siam. During the middle of the thirteenth century A.D., one of the Thai kings became powerful and Laos came under him and the political supremacy of Cambodia came to an end. During this period the Theravada Buddhism and Pali language flourished in Siam and Laos. King Shri Suryavamsa Rama Maha-Dharmikarajadhiraja was a great patron of Buddhism. With a view to propagating the faith, he built many temples in the country and sent some learned monks and scholars to Ceylon to get an advanced traditional knowledge of Buddha-Dhamma. He also invited a great monk named Mahasami Sangharaja from Ceylon to preach the Dhamma in his country in 1361 A.D. He inspired the people and made an active effort for the propagation of Buddhism. Under his patronage, Buddhism as well as Pali literature obtained a firm footing in the country. From that time onwards Buddhism flourished in Siam and the

neighbouring regions.

Third Period in the Eleventh Century A.D. i.e. Theravada Buddhism from Pagan

King Aniruddha became a very powerful king in Burma in 1057 A.D. Pagan was his capital at that time. He was a man of great valour. He conquered the Mon city-states and extended his territory to Lanna right down to Lopaburi and Dvaravati. Thus he extended his kingdom right up to Thailand especially to the north-western provinces and central parts covering the area now known as Chiang-mai, Lopaburi and Nakon Pathom[7]. He had not only the aim of conquering the countries, but also he liked to conquer the hearts of the people. He was a patron of Buddhism. He had immense faith in the Triple Gems and liked to see flourishing state of Buddha-Dhamma in his kingdom. He ardently supported the Theravada form of Buddhism and helped in its growth. He spread Buddhism and at the same time extended his power.

During the time of king Aniruddha there was a decline of Buddhism in India. It had become almost extinct there. Pagan took Buddhism from India especially from Magadh. Later on the original source of Magadh was disrupted and as a result of that some changes were seen in the form of Buddhism in Pagan. It is further said that being far away from India, Pagan developed its own form of Hinayana Buddhism. In course of time when Pagan became very powerful and extended its territory up to Thailand, it taught its own religion. Thus during this period the form of Buddhism as was prevalent in Pagan came to Thailand. Thus Burmese Buddhism exercised great influence over the country especially in the northern part of Thailand. It is also provad by the Buddhist Relics found in North Thailand which bear a striking Theravada influenc.[8]

The history of Thailand is full of struggles. There was constant friction in the neighbouring tribes. Thus the Thai people migrated from the original homeland existing in the valley between the Huang Ho and Yangtze Kiang in China to the southern part. During the course of their migration they separated into two groups. One of the two groups settled in the land of Salween River, Shan States and other areas as far as Assam. This group is called Thai Yai (Big Thai). The other group went on moving southwards and finally settled in the place known as Thailand today. This group of people came to be known as Thai Noi (Small Thai). However, the present Thai people are descendants of these migrated Thais.[9]

It is said in this context that during the period of the movement towards the southern direction, the Thai came into contact with the form of Buddhist practised in Burma. It had a very clear and bright form during the reign of king Aniruddha who helped immensely in the growth of the faith in the country.

There are scholars who are of opinion that Mahayana Buddhism spread in China in the beginning of the Christian Era. China was the original home of Thai people. It may be a fact that the Thai people were acquainted with some general features of Buddhism in China. Later on when the Thais migrated and settled down in Thailand and were able to form self-government and establish their independent state, they want on making an effort to move south-wards to capture the land. In this way they came into close contact with the Khmers and became acquainted with Mahayana Buddhism as well as Brahmanism. Thus it is seen that both Theravada as well as Mahayana forms of Buddhism were existing in Thailand during this period. It may be observed in passing that Northern Thailand, from Sukhothai District upwards, while in the central and southern parts of counrtry many Mahayana beliefs and practices, inherited from the days of the Suryavarmana and the Srivijayas, still persisted.

Fourth Period in the Thirteenth Century A.D. i.e. Lanka Vamsa

The history of the spread of Ceylonese form of Buddhism in Thailand is most remarkable from the religious and cultural points of view. Parakramabahu I - the Great ruled over Ceylon during twelfth century A.D. He was a powerful king. He had great faith in the Buddha's teachings and therefore, he gave patronage to Buddhism. He followed the example of Emperor Ashoka and did much for the propagation of the faith. According to the tradition of the southern school of Buddhism, he convened the seventh Buddhist council under the Chairmanship of Yen. Kassapa Thera. The doctrines of the Buddha together with discipline (Dhamma and Yinaya), were collected as well as recited. He also arranged to make regulations concerning the various sects of monks in order to have a uniform standard of monastic life and in this way he also exerted for the unity of the different orders of the monks. Due to such effort, Buddhism flourished in Ceylon. The activities of king Parakramabah were also loved by the people of neighbouring countries.[10]

Buddhist monks from various countries like Burma, Pegu (Lower Burma), Kambuja, Lanna (North Thailand) and Lanchang (Laos) went to Ceylon with a view to acquainting themselves with the pure form of the Dhamma preached by the Buddha. A number of monks were also sent from Thailand to Ceylon to obtain a first hand knowledge of monastic learning and activities of Buddhism, in course of time many batches of monks returned from Ceylon well versed in the knowledge of monastic and spiritual discipline. Many Ceylonese monks also came with them. The monks in this way established themselves first in Nakorn Shri Thammarata in South Thailand. The form of Buddhism they adopted and practised had much influence on the Ceylonese Buddhism. It is proved by the archaeological evidences such as Stupas, Buddha images etc., some of such Relics are still existing.

With the settlement of the new batches of experienced monks in Nakorn Shri Thamrnarata, there was a natural growth of religious and cultural activities in that area. The whole of the area was found with the spiritual atmosphere. The news of such cultural activities spread to Sukhothai which was the capital of Thailand. The king was also impressed by such activities and he invited some of these monks to his capital. He, being very much impressed by their achievements, extended support for the propagation of Buddhism. This is evident from the rock inscription of 1227 A.D.

Receiving royal patronage and support, the monks completely engaged themselves in the propagation of the Dhamma in the whole of the country. Buddhism gradually became very popular and was widely practised by the people. Thai kings such as king Maha Dharrnaraja Lithai of Sukhothai dynasty and king Borom Trai Lokanatha of early Ayuthia dynasty gave up the domestic life and took the life of monks for the propagation of Buddhism as well as for their own purification by following the path of the Buddha. In this period the study of Pali scriptures became popular. In this way Theravad Buddhism which came from Ceylon got a sound footing in Thailand and therefore, this period is regarded as the period of Sinhalese Buddhism or Lankavamsa.

At present Buddhism is a living religion in Thailand. It is generally known as 'the Land of the Yellow Robe'. Entering into the country of Thailand, one is naturally introduced to two things. The first thing is the Buddhist temple having characteristic architectural features of their own and the other thing is the sight of the Yellow Garb of monks and novices moving here and there in the country busy with religious activities and studies. These two things evidently remind visitors of Buddhism as a dominant force in Thailand.

It is the only country where the king is constitutionally stipulated to be a Buddhist and traditionally styled as the upholder of religion. Also it is here only that Buddhist doctrines have deeply penetrated and patterned the life of the citizens completely. The present Government of Thailand has declared its policy of upholding Buddhism as a means of moral education of the people and to give effect to such policy, it is rendering all the necessary assistance to the Buddhist church of Thailand in its study, practice, promotion and propagation of Buddhism. The Religious Affairs Department under the Ministry of Education serves as the intermediary between Church and State.

Out of the 26,113,756 population in Thailand based on household registration of the Department of Local Administration, Ministry of Interior recorded on December 31, 1979, the percentage of the population religiously distributed, as mentioned in 1979 Annual Report of the Department of Religious Affairs, Ministry of Education is as follows:

Buddhists	-	95.24% - 43,918,741
Muslims	-	4.02% - 1,853,773
Christians	-	0.60% - 276,683
Hindus, Sikhs and others	-	0.13% - 59,948
Unidentified	-	0.01% - 4,611

The Buddhist Sangha still exists, the practice of the monastic rule is regarded by the Vinaya texts through Maha Thera Council. The monasatic head of the order is the Sangharaja or the Supreme Patriarch who supervises the activities of the Sangha (Community of monks) and also makes an effort for the growth and prosperity of Buddha-Dhamma in the country and also in foreign lands.

References

1. Buddhadasa Bhikkhu : *Buddha-Dhamma for Students*, Siva Phorn Limited Partnership, Bangkok, 2511 B.E.
2. Direck Jayanam : *Buddhism in Thailand*, The Buddhist Association of Thailand, Bangkok, 2504 B.E.
3. H.R.H, Prince Damrong : *Buddhism in Siam*, The Buddhist Association of Thailand, 2504 B.E.
4. Karuna Kusalaya : *Buddhism in Thailand: Its Past and Its Present*, Buddhist Publication Society, Kandy, Ceylon, 1965.
5. Sir Charles Elliot: *Hinduism and Buddhism*, London, 1954.
6. H.R.H. Prince Dhaninivat : *A History of Biddhism in Siam*. The Asia Foundation Bangkok Branch, Bangkok, 1960.
7. Phya Anuman Rajdhon : *Introducing Cultural Thailand in Outline*, Bangkok, 1962.
8. Nilakanta Sastri, K.A. : *South Indian Influence in the Far East*, Madras, 1949.
9. *2500 Years of Buddhism*: Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, New Delhi, 1971.
10. *World Fellowship of Buddhists Review*, Vol. XI, July-Oct., 33, Bangkok, 1974.

Indo-Lao Cultural Contacts

Vijay Shankar Shrivastava

In the absence of historical records on the past history of Loas, no one can have an exact date of the period from where started and developed the cultural relations between India and Loas. But it is certain that there had always been contacts between these two countries at the religious, cultural and social levels. Indo-Lao contacts might go back even to the pre history or presumably to the Vedic age of India.

In South-East Asia, almost all the countries that had been Indianised according to George Coedes had close contacts with India were penetrated with Hindu culture and its elaborate paraphernalia of rites and rituals, gods and goddesses and myth and legends.[1] Attention of scholars as well as of laymen have been drawn to the subject of Indian expansion in the past in Champa (Laos), Kambuja (Cambodia), Siam (Thailand), Java, Sumatra, Bali and Borneo where archaeological discoveries had been made long ago by the French and Dutch Scholars.

From the sixth century A.D., the southern part of what is now Vietnam constituted the important kingdom of Champa. This history of this empire was mostly troubled, owing to the frequent devastation of the country by Japanese, Khmer and Chinese invaders. This fact is verified by the records that the indigenous kindgom in southern Laos was named as Funan which existed during the early century of the Christian era. Funanese forced the Cham people out of the Champasak region in the sixth century A.D. and by the seventh century they formed a new kingdom called as Chenla. According to one inscription king Fa Ngum, a brave Lao leader carved out an independent kingdom on upper Mekong river valley region in the twelfth century A.D.

By its natural geographical configuration, the Indo-Chinese peninsula in which are incrusted Burma, Thailand, Cambodia, Laos and Vietnam had been divided into two distinct zones of influence separated from each other by a long cordillera starting from South China, forming a natural border and barrier between Laos and China, stretching southward to the south Vietnam sea. The western side of the cordillera which includes Laos, Thailand and Cambodia and Burma was of Indian civilization. The eastern

*Associate Professor, Deptt. of History, Ram Lakhan Singh Yadav College, Aurangabad (Magadh University Bodhgaya), Bihar

side which lies the long eel shaped state of Vietnam was of Chinese influence.

Religious Heritage from India

The Lao people strongly believe that both Brahmanism and Buddhism were brought into Laos not at the point of swords like many other religions in the world but freely and peacefully. That has always been the habitual non-violent manner of India in the relations with her neighbours, whether in the past or the presents. In both countries, the national religion was Hinduism, mainly of Shaivite type. The prevalence of Brahmanism in Laos is attested by inscriptions and archaeological evidences of the country. The Phou Lokhon inscription in Sanskrit records the erection of a Shivalinga by the king Mehendravarrnan. The remains of the temple of Wat Phu, on the Lingaparvata containing Bhadreshvara are still extent to the south west of the Champasak in South Laos.[2]

The Vat Luong Kan inscription begins with a verse paying homage to Brahma, Vishnu and Shiva and refers to a ceremony performed by the king. Then follows a description in prose of the great king - Maharajadhiraja Sri Mana Sri Devanika - in grandiloquent style - comparing him with Yudhishthira, Indra, Dhananjaya, Indrayumna, Sibi, Mahapurusha, Kanakapandya, the great ocean and Meru.[3] Then the king performed various religious ceremonies beginning with a grand sacrifice to Agni and made a gift of many thousands of cows. We find a clear reference of Agnihotra sacrifices, images of Vishnu and Shiva and the establishment of a holy place of pilgrimage. The images of the gods and temples similar to those of India were made in various parts of Laos. No one knows how and when Brahmanism came into existence in Laos. But none-can, however, deny that the minds of Lao people are so impregnated with Brahmanism that some Brahmanical rites are still practiced in the present day alongside. Buddhism especially on great occasion (the Birth, Wedding and Death). The names of Indian gods (Indra, Visnu, Siva etc.) are quite familiar to Lao people. In their prayer to Lord Buddha, they never fail to invoke these divinities.

The Lao people are grateful to India for the great cultural, social and religious heritage bequeathed to them. They are very proud of Dhamma of Lord Buddha to which they are entirely devoted. Buddhism has spread its roots so deep into their minds that it has left an impressive mark upon their social and cultural life and even today, influences and guides to a great extent their daily life. 99% of the population of Lao are Buddhist.

The social system was theoretically based on the four castes but Chinese accounts indicate that in questions of marriage and inheritance older ideas connected with matriarchy and a division into clans still had weight. In Laos one can observe the Indian and Lao ways and customs which are similar in many ways. The way of greeting a

friend or a very-very important personality by joining the palms at the level of the heart with a slight bow of the head, the betel chewing, the simple way of dressing especially by man consisting of Lungi in silk or cotton, a shawl carelessly thrown upon the shoulders a light shirt and on great occasion the Bundhagala (closed neck), coat are but believed to come from India.

Lao script and language derived from Sanskrit and Pali. There is a great similarity between Hindi and Lao words. For example, the name in Hindi of some flowers such as Gulab and Champa are exactly the same in Lao language.

The words Dharmashala in Hindi and Shala Dham in Lao have exactly the same meaning and refer to the same thing.

So, the mutual relationship between India and Laos in the past had taken its roots only in relations, cultural and social affinities.

References

1. Coedes George, *Indianised States of South East Asia*, Honololu, 1963, p. 5.
2. Marshal, Henri, *Le temple de Wat Phu*, p. 2.
3. Majumdar, R.C., India and South East Asia, Delhi, 1979, p. 179.

Emerson and His Hindu Philosophy

Kavita Mandhyan*

Abstracts: The luster and aura of Emerson's literature is beyond the mundane world. His assimilated knowledge of divinity from Vedanta and religious scriptures can be seen at every sphere of his writing as poems, essays, and lectures series etc. His philosophy is amalgamation of thoughts, amalgamation of soul and supra-mental notion. Emerson merged American transcendentalism into Indian Vedantic Philosophy and declined the oneness of Almighty and divinity of man. Transcendentalism makes an Endeavour to explore the soul of man .In one line, he declares – The over soul is beauty, love, wisdom, and power. How a man can come with the highest bliss? It is the work of soul and wisdom. It is a religious experience which Emerson felt in ecstasy. It's all about the amalgamation of individual soul with the over soul.

Keywords: Vedanta, Transcendentalism, oriental Philosophy, Brahma, Indian Scriptures.

Emerson – essayist, poet and philosopher of America. His philosophy is perennial because it arose from a desire to make all things new, to seize life freshly, experience it first hand and use it to build beyond the old. Ralph Waldo Emerson was born in Boston, Massachusetts, on May 25, 1803. His ancestors had been in America for seven generations. He descended of a long time of clergymen. The family was always poor. Emerson lost his father at the age of only eight years old. By means of scholarship, he arranged his education. He started preaching on divinity at everywhere. Dogged by illness and driven by ambition, he was finally ordained as the minister of the second church of Boston in 1829. He married to Ellen Tucker, settled in the heart of New England and won the fame as a preacher , but after the death of his wife he left the position of pastor due to lack of good conscience to perform religious rituals. During the journey of England, he met Coleridge, Wordsworth and Carlyle who became lifelong friends and correspondence.

*Dept. of English Literature, Maharana Pratap P.G. College, Jungle Dhushan, Gorakhpur • युगद्रष्टा ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की 50वीं एवं राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 05वीं पुण्यतिथि के अवसर पर आयोजित सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला में दिनांक 18 अगस्त 2019 को दिया गया व्याख्यान।

He made his preaching and lectures main source of income and he delivered about 1,500 lectures. His bent towards sacred writings of the east probably began during his Harvard days and he made its lifelong source of name fame and internal peace. He dived deep into the Hindu scriptures, such as Manusmriti, Vishnupurana, The Bhagvad-Gita and Katha Upnishad. He studied and found the concept of 'selfhood' after that elaborated the concept of self on oneness. He found that Upnishads are measure source of true philosophy of the Universe. Antaratma is soulaly associated with cosmic whole Brahma. According to the Upnishad, The self with in you, is main enlightenment. All his writing are the revelation of Hindu scriptures. His doctrine of self –reliance, his concept of the fundamental unity of all the oneness of man, God and nature reveals the Hindu Philosophy. When he writes 'The Over Soul', it finds fine expression of Bhagwad-Gita. He proved that oriental philosophy is greater than all. Even the themes and titles of Emerson's poetry derived from Hindu Scriptures.

Ralph Waldo Emerson was the first American writer who explained Indian Philosophy and his deep study of scriptures grew over time. Indian Philosophy found in a new genre and in a new recognition. Emerson had dived deep into the scriptures and fetch Indian philosophy in America much more before Swami Vivekanand had visited America for our religious cause. We should know the ways in which the scriptures of India influenced Emerson's metaphysical development.

Previously I mentioned that Emerson became a famous preacher in search of bread and butter. He started nurturing his mythological metaphysical thirst through religious books of India. He helped to popularize the Bhagwad Gita in the west and many followers made their positive consent to know this philosophy. Truly it is said that, Emerson was a poet among philosophers and philosophers among poets. One follower of Emerson illuminates his thought that the Bhagwad Gita is an empire of thought and in its philosophical teachings of Krishna has all the attributes of the full fledge monotheistic deity and at the same time the attributes of the Upnishadic absolute.

Emerson was considered one of the great orators of the time, he influenced crowd due to his enthusiasm and heart touching voice. Emerson was strongly influenced by the Vedas so his writings have many shades from Indian scriptures, when Emerson talks about famous poem, "Brahma", he ponders and believes in unification of soul. Transcendentalism is a word which means the existence of a divine world, beyond and above the world of the sense.

He talks about that world of soul, that world of divine unification. He says –

"If the red slayer thinks he says,
Or if he slain thinks he is slain.

They know not well the subtle ways,
I keep, and pass and turn again" [1]

His concept of fundamental unity of all is here. This poem is Quintessence of Emerson's study in Hindu philosophy. Central idea is his oriental thought which he has directly taken from the verses of Gita. This divine knowledge about which he said in above lines – They know not .... is transcendental Knowledge { 4th chapter ,42 shlok} of Bhagwad Gita is directly associated with Emerson's Brahma's concept:

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥ [2]

The idea of Maya is most important for understanding the concept of Brahma and its influences on Emerson. Maya means a magical power in which God (creator) reveals himself and the mystery of his creation. Maya has a double meaning as it is simultaneously a product of power of creativity and the power itself. The shvetasvatara Upnishad says to know that nature (prakriti) is maya and that the user of maya is great Isvara and the whole world is filled with beings that are part of him.

The concept of maya always fascinated Emerson. He named one of his short poems "Maia":

"Illusion works impenetrable,
Weaving webs imumerable,
Her gay pictures never fail
Crowds each on other, veil on veil,
Charmer who will be delivered,
By man who thirsts to be deceived".[3]

In this poem Emerson dwells on the power of Maya and how it deceives us. So it is reasonable to presume the Emerson studied the philosophy of the upnishadas and the Gita, after studying Kart and Hegel. He particularly studied the doctrine of the self, also called the soul. According to the upnishad, the soul consists of the first principles of matter, energy and intelligence. The unity is the first source of all matter, energy and intelligence perceptible in universe. The first source is Brahma. The universe emanates from sustain and goes back into the Brahma. The universe is governed by the laws of causation, time and space. But the Brahma is beyond and above such laws.

Therefore the doubts which have been arisen in your heart out of ignorance should be slashed by the weapon of knowledge. Emerson took the entire essence of his oriental and transcendental philosophy from 4th chapter of Bhagwat Gita.

If we observe the entire philosophy of Emerson we will find that his transcendentalism is a meeting point of various thought as east and west, ancient and modern. As the essence of "Brahma" is the philosophy which has been driven from wad Bhagad -Gita is about oneness of all being. It proclaimed that the Brahma is true. He is the all who is beyond pleasure and pain, good and bad, joy and sorrow, Brahma is the absolute. Emerson's Brahma is telling that my manifestation is everywhere, in various forms. In other words we can say that Emerson has not put any new idea in our philosophy but pondered over vedantas, dived deep and agreed that there is Supreme Power which is omnipotent, omniscient and omnipresent. And as I think that the transcendentalism of Emerson directly came from the lighthouse of the Vedanta, transcendental knowledge is the fruit of selfness devotional actions. It is absolute.

Emerson's poetry which is lashed from eastern or oriental philosophy presents the sum and substance of the entire Bhagwad- Gita. According to Emerson western science and civilization can be purified only by the rays of Hindu Religious thoughts. Emerson amalgamated both the views and wanted to produce a perfect transcendental knowledge. He was on the peak of perfection when he appreciated our scriptures.

"They know not well the subtle ways,
I keep and pass, and turn again". [4]

Subtle ways are the transcendental ways where soul ponders and finds a path to melt into the one and that is the Supreme. It is all about the culmination of divine knowledge and the ancient sacred literature of India which is believed, in soul only, mental being is always worried to enrich and elevate outwardly and men loss all the time for and at last that mental being {men} feels bare handed devoid of sacramental and super cosmic divine glory. Emerson's soul felt melting into the thoughts and philosophy of vedantas and divinity so the following comment of Matthew Arnold is note worth here- "whatever Emerson might be as poet and philosopher, he was preeminently the guide and companion of those who wish to live by the spirit." [5]

It is the Parmataman, Emerson calls it the over soul. The universe together with the Parmatama is called the Macrocosm. The Brahma reflects itself in every individual and is called the Atman. The reflection of the Brahma in the man makes up the unity of human body, the mind and the Atman.

The last being the reflection of the Brahma - is indestructible and immortal. The unity of human body, the mind and the Atman, is called Microcosm. It stands within the Macrocosm as an essential part of the latter.

The Atman's mind is composed of the subtlest form of matter. It is animated by the subtlest form of energy called Prana and is illuminated by self shinning intelligence,

called the Buddhi. The purpose of the self is journeying towards the Brahma , by means of acquiring Gyan. But its Buddhi is vitiated by its egoism which interprets its sense experience as good or bad on the score of their pleasure contents. The tendencies of its mind forge the fetters called Karma which peeps the Atman in the round of birth and death called Sansara.

According to Emerson, the whole Universe stands within the Universal Soul which circumstances all the great or small, abstract or concrete, material or non-material. But every person, creature or thing is its component part. As such, everything in is inalienable element and goes to make it a united whole.

Further, this universe being is the eternal one. Emerson calls it the over soul. He describes it as: "that great nature in which we rest ....; that unity , that over soul, within which every man's being is contained and made one with all other."[6] It abolishes the laws of time and space and is hence eternal and immeasurable. Besides, it is transcendental and is beyond all experience.

The universe consists of material forms Materialists argue that is the universe there is nothing but matter. But Emerson argues that the material universe is the external form of the over soul. "The universe is the externalization of the soul."[7]

"These are the voices which we hear in solitude, but they grow faint and in audible as we enter into the world".[8] If a man wants to hear them as they are, his mind must be simple and his body chaste. In such conditions, "the divine impulses shall also fill him with a sublime vision", writes Emerson "the sublime vision comes to the pure and simple soul in a clean and chaste body."[9]

The effect of divine impulse on a simple man in a chaste body is great. Such man finds great intellectual growth. He also becomes a moral giant. With each divine impulse, a simple mind tears the web of ignorance and come out into eternity and inspires and expires its air. All these details make up what is called Emerson's doctrine of Divine Impulse according to Hindu Philosophy.

Emerson believes that the individual soul gets the Human from to move towards the over soul. "We are encamped in nature"[10] to seek the first source of Universal goodness, intelligence and beauty which is the over soul. "What is the purpose of human life?"[11] In his essay entitled Nature Emerson asks himself this question. "What is the end sought?"[12] Then he himself answers "Plainly to secure the ends of good sense and beauty from the intrusion of deformity or vulgarity of any kind"[13]. Indirectly, he means that the purpose of human life is to draw close to the over soul by means of noble selfless character and conversation with the universal soul, by means of divine impulse.

"Why should man draw close to the over soul?"[14] In his essay nature, he answers

"Here is no ruin, no discontinuity, and no spent ball[15]. The individual soul is always on the move from one body it goes into another and so on. He therefore calls the individual soul as "Divine Circulations"[16], He says "The divine circulation never rest nor linger. Nature is the incarnation of thought and turns to a thought again as found in Hindu mythology the Punarjanam which means an embodied soul such as a human soul goes at death into another from whose nature is decided by the sum total of its Karma"[17]. He also says, "Stake means reward of thought possibility means possible form. It follows that noble, good; selfless thought will lead our soul into good form.[18]

He also emphasizes man to rely upon the self, the over soul to raise morally and spiritually to the level of selfless, good man which will ensure him a higher bodily from in the scale of being.

Doctrines of over soul, the individual soul the divine impulse, the constant journey of the soul and the self reliance are traced back to the upnishads, the Brahma-Sutra and the Gita.

So, in this paper I can say that Emerson assimilated the ideals of divinity and vedantic virtues. He came in the effect of magnetic power of Vedanta which is India's ancient power and present proud, these entire he explored through his essays, poetries and lectures that is now the great virtues of America.

References:

1. Emerson, Ralph Waldo (1994), Collected Poems and Translations, pp19, New York.
2. Bhagwat Gita, (2018), pp112, Gorakhpur.
3. Emerson, Ralph Waldo (1994), Collected Poems and Translations, pp 26, New York.
4. Ibid pp 19
5. Arnold Matthew (1883) on Emerson, pp 110, New York.
6. Emerson, Ralph Waldo (2010), Self Reliance, The over soul and other essays pp 89, California.
7. Alfred, (1900) Ralph Waldo Emerson, Philosopher and Poet pp 128, Mexico.
8. Emerson, Ralph Waldo (2010), Self Reliance, The over soul and other essay, pp 66, California.
9. Ibid pp 80.
10. Emerson, Ralph Waldo (2017), Nature, pp18, Rockville, Maryland, California.
11. Ibid pp 16
12. Ibid pp 28
13. Ibid pp 05
14. Ibid pp 12
15. Ibid pp 13
16. Ibid pp 15
17. Ibid pp 19
18. Ibid pp 08

Buddhist Monks, Monasteries and the Society of Thailand during Chakri Dynasty: A Historical Study

Dhruva Kumar*

Thailand as we know, is "the land of Yellow Robes". The clothes of the Buddhist monks, who are numerously seen everywhere in the country, are of yellow colour and hence then why the country bears the name "the land of yellow robes". It is the only country where the king is constitutionally stipulated to be a Buddhist and traditionally styled as the upholder of religion. Also it is here only that Buddhist doctrines have deeply penetrated and patterned the life of the citizens completely. Buddhism has long been adopted as the national religion and is the predominant religion, called Hinayana or Theravada Buddhism, which is the southern, or Pali Buddhism and still the dominant religion in Sri Lanka, Burma and Cambodia.[1]

Buddhism has its origin in India about 550 years before the Christian era. It is hard to give the exact date when Buddhism was first introduced into Thailand. It was only later in about 700 A.D. that Mahayana Buddhism came to irradiant the land. However, in 1000 A.D. Hinayana was again reintroduced from Burma. In 1255 A.D. Thai Buddhist monks went to Sri Lanka and brought back with them the Pali Scripts. They also invited the Ceylonese monks to Thailand. Ever since then all the kings of Thailand embraced Hinayana Buddhism, which became their national religion. It has had a profound influence over the Thai arts, culture, tradition and learning and which has dominated the character of the vast majority of the Thais. Almost every important event in a person's life is associated with some religious rites. Every village has a temple, which serves as Church, Town halls, Recreation center, School, Crematorium and house for the abandoned aged and poor.

The Buddhist way of life is an integral part of national life. Today over 94% of the population is Buddhist.[2] The order of the Buddhist monks remains a social institution. A majority of the males become monk or Novice for at least a short period of time.

*TGT (Social Science), Directorate of Education, Govt. of NCT of Delhi

Buddhist monastic institutions are important because they have a great influence shaping the intellectual, moral and spiritual life of the Thais. Its monasteries, which become spiritual as well as educational and cultural centers and establishments for Thais, are evenly distributed throughout the country and hold a tremendous potential for rendering social services to its people. These religious institutions which are financially supported by the Government and generally maintained by the local citizens can be central points where social welfare programmes can be instituted.

The study of relations between Buddhism and Thai society indicates that Buddhist monks have, since the ancient time, played a vital role in providing medical treatment for the Thai people. Their treatment methods range from ancient tactics such as Holy water sprinkling, fortune telling and giving Holy blessings to somewhat modern tactic such as the use of herbs and giving advices on both mental and physical problem.[3] As a matter of fact Buddhism has as one of its aims attempted to develop people, perhaps placing a special emphasis on mental development. Buddhist monks mission is to encourage people to practice Dhamma in their daily life so as to boost peace and security in society because who have well practiced Dhamma usually realize what is the value of life? What is the aim of life? And what should be done?

As spiritual leaders, Buddhists monks have been performing their direct duty, i.e. provide the gift of truth (Dhammadan). The word Dhamma in Pali literally, contains two meaning, truth and beauty; the former implies the fact of life (problem) while the latter morality.[4] To give Dhamma is, therefore, to give both knowledge and morality aimed at urging receivers to obtain truth and goodness promoting the right understanding among them ranging from realization of what is life and what is reality to the understanding of how to live life morally. Buddhist monks responsibility is therefore, related to promotion of intellectual and ethical development in society and their main task is to teach and give advice on various issues.

At present Buddhist monks have carried out several ethics development programme. They are for instance, the mobile propagation unit jointly organized by the Sangha, Administration, Buddhist Universities and the Department of Religious Affairs to teach people the Buddha's teaching, thereby promoting mental development in various villages.[5] The village Dhamma propagation unit also organized by the Sangh to provide both mental and social welfare as well as to participate in social development.

Besides, Buddhist monks have also carried out a task to provide ritual services leading in all merit making ceremonies, blessing people during their auspicious functions such as house inauguration, wedding, birthday party, birth anniversary, performing religious functions related to death, such as funerals, death anniversary, presiding over the opening of buildings and foundation stone-laying ceremonies.[6] This ritual service

has promoted close ties between the Sangha and the public with the former boosting morale of the latter. Ritual service is therefore, part of ethics or morality development programmes carried by Buddhist monks to teach people how to live good, peaceful and noble life otherwise they may divert their ways of life from law of nature causing troubles to society as a whole.

The Thai word 'wat' means monastery and temple combined. The country's mysteriously beautiful temple are not relics of past, they are in use daily as the people are very religious. Until recently these wats provided the only schools for many villages and they are still the focus for festivals and other social activities. The wats is well supported by the community.[7] The people offer food to the monks each morning as the monks walk through the clad in their yellow robes carrying thus round alms-bouts.

The wat in Thailand is not only sanctuary of prayer but it is also in centre of culture. The Buddhist monastery on the whole, has always maintained the country, ever during the most troubled times, the inclination for spiritual life and culture. The monastic enclosure also contains a funeral pile for burning the dead, rooms for preaching and for temporary accommodation of pilgrims and strangers, out houses where the bonzes of the monastery live.[8] The wat constitute as the centre of Thai art and architecture and is the most important institution of the country's rural life.

The social life of the rural community revolves around the wat. Besides carrying out the obvious religious activities, a wat serves the community as a recreation centre, dispensary, school community centre, home for the aged and destitutes, social work and welfare agency, village clock, rest houses, news agency and information centre. The practical aspect of the Thai Buddhist monks and temples are indispensable.[9] It can, therefore, be concluded that wats or temples have played a significant role in providing social welfare for the public with monks, as monastic authorities.

Apart from engaging themselves in doctrinal studies and observing disciplinary rules (Vinaya) in general monks are expected to be friends, philosophers and guides of the people. Preaching to masses face to face or over the radio is one of the commonest ways by which monk help the promotion of moral stability among various members of the society.[10]

In most of the ceremonies and rituals, whether private or public, monks co-operation and benediction are indispensable. Indeed in the life ofthe average Thai Buddhists from cradle to the grave, the monks are persons to whom they constantly turn for moral support. It is at the wat that people come together and experience a sense of comradeship. Religious rituals and ceremonies held at wats are always accompanied by social activities. There are occasions for people, especially the young, to enjoy themselves

in feast, fun and festivities. This aspect of the religious service helps the common folks to relax and satisfies their needs for recreation.

Buddhist monks played a leading role in all areas of religious, educational and social activities of the country. Throughout its over 2500 years of existence Buddhism has been closely connected with the lay communities. Buddhist monasteries were centres of learning with monks as teacher.[11] The monks also rendered voluntary social service both material and spiritual for the welfare of the community, such as giving advice and help in the event of family problems and misfortunes among members of the community, settling personal disputes and giving medical care.

Buddhism certainly laid down a strict set of rules of conduct for the monastic community, the Sangha, but it has always been lenient to its laity. The latter were expected to observe a standard of conduct based upon the 'Panchshila'- not to take life, not to lie and not to take intoxicants, which are the basis of the loss of one's self control. They observed, as a rule, a code of ethics, inculcating moderation, charity and goodwill to all beings. Beyond that the lay Buddhist is bound by no hard and fast standard of perfection. He is also expected to read, mark and learn the Master's philosophy.

Cooperation between the laity and the Bhikkhu Sangha in Thailand is close and spontaneous. To a very great extent this is due to the fact that in average Thai family some of its members are certain to be found who have for some time served in the Sangha. To the masses Yellow Robes are symbol of the Master (Buddha) and Bhikkhus are upholders of Dhamma.

To get ordination into Monkhood even for a short period, of course, brings much merit.[12] A man who has not passed through the Monkhood is regarded as 'Raw' or Immature Man. The people will have an unfavourable opinion of him as an uneducated and imperfect man who is not a son of Tathagata i.e. to say a Monk. It will be difficult for him to find a wife, for decent folk will look at him askance wandering whether he is a proper and suitable man to be a husband or a son-in-law. A man who has passed through the Monkhood and again become a layman is called a 'Thia' an abbreviated form for the Pali word, familiar in Hindi word 'Pandit' which means a 'Scholar' or 'a wise man'. A son who becomes a novice or a monk is in popular belief a mysterious agent to help his parents from hell when they die. A novice will be able to help his mother from such an unhappy state in the next life and the monk will do so for his father.[13] Thus parents are desirous of having at least one of their sons to become a novice or a better still a monk. If possible the son candidate ought to be an unmarried man, if he has been married all the merit thus gained will got to the wife instead of to the parents and moreover his thoughts are likely to be more on his young wife than on

religion.

It is accepted to be supremely necessary for the Thai Buddhists, for monks as well lay adherents to maintain and strengthen this relationship and faithfully fulfill their duties towards each other, so that Buddhism and Buddhist societies can subsist.

References

1. Wells, Kenneth E., *Thai Buddhism : Its Rites and Activities*, Bangkok, 1975, p. 15.
2. Alabaster, Henri, *The Wheel of the Law,* London, 1871, p. 112.
3. Wood, W.A.R., *A History of Siam,* London, 1926, p. 84.
4. Wales, H.G.Q., *Siam State Ceremonies,* London, 1931, p. 105.
5. Eliot, Sir Charles, *Hinduism and Buddhism,* London, 1932, p. 147.
6. Bapat, P.V. (Ed.), *2500 Years of Buddhism,* New Delhi, 1956, p.17.
7. Barua, D.K., *The Buddha and Buddhism,* Calcutta, 1970, p.212.
8. Dasgupta, K.K. (Ed.), *Buddhism: Early and Late Phases,* Calcutta, 1985, p. 77.
9. Rahula, Walpola, *History of Buddhism in Ceylon,* Colombo, 1966, p. 217.
10. Dumoulin, H. (Ed.), *Buddhism in the Modern World,* New York, 1976, p. 24.
11. Keru, H., *Manual of Indian Buddhism,* Varanasi, 1976, p. 48.
12. Keyes, Charles E., *Thailand: Buddhist Kingdom as Modern Nation-State,* Colombo, 1987, p. 77.
13. Ibid.

An effort to study of phase transition temperature of some selected 2,5 pyridine derivatives by quantum mechanics

Shailendar Kumar Thakur*

Abstract: We have investigated the mesogenic behavior of some selected 2, 5 di–substituted pyridine derivatives molecules by interaction energy calculation in vacuum, for all the possible orientation and translation. The interaction energies are further used to calculate entropy and Helmholtz free energy. The variation of entropy, free energy with temperature explains the phase behavior and transition temperature of the mesogenic molecules. The results agree with the experimental findings.

Keywords: Intermolecular interaction, transition temperature, GAMESS VERSION Feb 14, 2018 (R1).

1.0 Introduction

We have studied the phase behavior of some of the 2,5 disubsituted pyridine derivatives Liquid Crystals molecules on basis of pare interaction energies. This paper is the extension of our work on four selected molecules in earlier paper [1, 2]. The liquid crystal molecules are these days growing very importance for their uses and the fundamental physics involve. Designing of molecules for desired properties and their manipulations for controlling peculiar molecular behavior needs to understand the interactions of molecules [3-8]. We are trying to study the physical behavior of molecular systems on basis of pare interaction energy. These energies are used to calculate entropy and Helmholtz free energy. The graph between temperature and entropy and Helmholtz free energies were plotted to discuss the relation between temperature and phase transition. We have taken various configurations for the pair of molecular interaction and variation is taken in orientation and translation to observe the change in interaction energy.

*Asst. Professor, Dept. of Physics, MPPG College, Jungle Dhushan, Gorakhpur UP (INDIA), Email: sktup_in@rediffmail.com ● युगद्रष्टा ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की 50वीं एवं राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 05वीं पुण्यतिथि के अवसर पर आयोजित सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला में दिनांक 21 अगस्त 2019 को दिया गया व्याख्यान।

The strategy of computation of interaction energy at various configurations of a molecular pair and methodology is given anywhere else in detail [9-11]. V.F. Petrove et al have given a large number of 2, 5 di-subsituted pyridine derived molecular systems with the variation of mesogenic phase sequences [12]. These calculations generated a large amount of data that are summarized for space economy.

2.0 RESULT AND DISCUSSION

2.1 Geometry Optimization

The following procedure has been adopted uniformly for all the molecules under investigation.

The molecular geometry was generated using GAMESS VERSION 1 OCT 2010 (R3) [13] and the structure is initially generated by Jmol [14] software. Geometry optimization, frequency analysis and calculation of electrostatic properties were carried out using the hybrid density functional theory B3LYP with 6-31G** basis set.

(Abbreviation: Cr-crystal phase, Sm - smetic phase N-nematic phase, I-isotropic phase.)

Table.1. The optimized geometry of the molecules with numbering scheme and phase transition temperature in °C.

Molecules	Structure of compounds with numbering scheme	Phases and Phase transition temperature
Pd-1	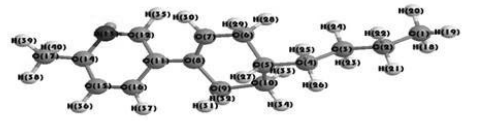	(Cr-20°C-I)
Pd-2	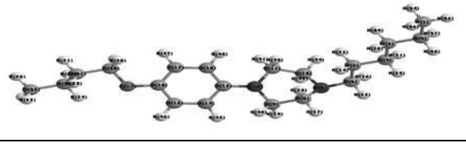	(Cr-20.8-Sm-54.5-SmA-83.4-I)
Pd-3	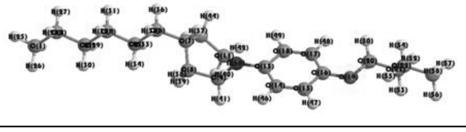	(Cr-40.4-SmB-78-I)
Pd-4		(Cr-40.4-N-53-I)

2.2 Interaction energy calculation:

The interaction energy is given as $E_{tot} = E_{el} + E_{pol} + E_{dis} + E_{rep}$, it includes the

electrostatic (E_{el}), polarization (E_{pol}), dispersion (E_{dis}) and repulsion (E_{rep}) energy terms the configurations and energies are given elsewhere in detail [11].

(a) Pd-1 and Pd-4 molecules:

Translation along long molecular axis for isotropic Pd-1 molecules for all configuration expenses comparatively low energies than the nematic molecules Pd-4 (fig. 1.d & 2.d). nematic molecules shows greater degree of rotational flexibility and isotropic molecules showing a bit satiric hindrances, although Pd-2 and Pd-3 molecules showing the hindrances in rotation along long molecular axis. The energy per degree of rotation is different in all the cases. In nematic phase the molecules are showing a symmetric alignment along the long molecular axis in comparison to the isotropic molecules (fig.1a,b & 2a,b). Nematic is liquid phase with molecular alignment along long molecular axis. The partial alignment in isotropic phase is visible in Pd-1 with low interaction energy is visible here but proper stacking in Pd-4 molecule supports the formation of nematic phase. The two stacking configuration in Pd-4 molecules are aligned in range of 30°.

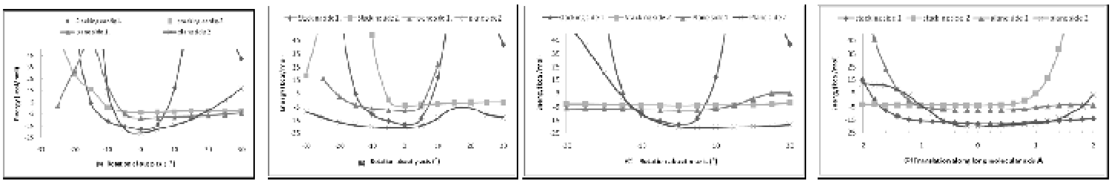

Fig.1.Rotational and translational curves for Pd-1 molecule.

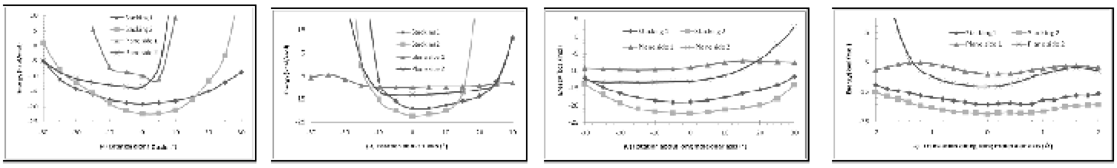

Fig.2 Rotational and translational curves for the Pd-4 molecule.

(b) Pd-2 and Pd-3 molecule:

The Pd-2 molecule is comparatively large than the Pd-1 molecule and in cyclohexane ring the two nitrogen are substituted at the two of the connecting points of cyclohexane ring. The geometry of molecule is also deviated from the plane structure).Pd-3 molecule has similar structure as that of Pd-2 but it has only one nitrogen (table.1).

The Pd-3 molecule has strong stacking this configuration shows low translation freedom along long molecular axis. Other configuration of this molecule shows longer translational freedom. In Pd-2 molecule translational freedom is comparatively larger than Pd-3 with small expanse of energy. The variation is expected in this case as it has

multiple phase in short variation of temperature range. The different phases have different interaction energy and these are shown in variation in interaction represented in translational curve. Pd-2 has only one phase. Rotational curve along long molecular in Pd-2 have very small satiric hindrance. The Pd-2 molecule faces more satiric hindrance at equilibration (fig. 3 & 4 d,c).

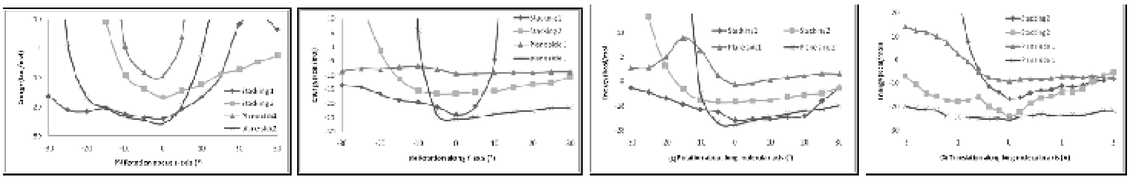

Fig.3. Various translational and rotational curves for Pd-2 molecules.

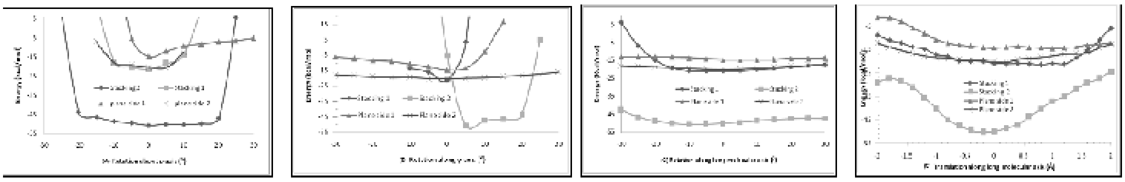

Fig.4. Various rotational and translational curves for Pd-3 molecule.

The entire configuration of molecule Pd-3 is highly aligned along the direction of long molecular axis as indicated by the rotational curve along z axis (fig.4 (a). In rotational curve for y axis (fig.4(b) only stacking-2 is highly confined in narrow range of alignment along the long molecular axis and the stacking-1 configuration can rotate only in one direction. Two plane side configurations are flexible to rotate about y-axis. The Pd-2 molecule shows various range of rotational freedom along z and y axis.

2.3 Thermodynamic calculations:

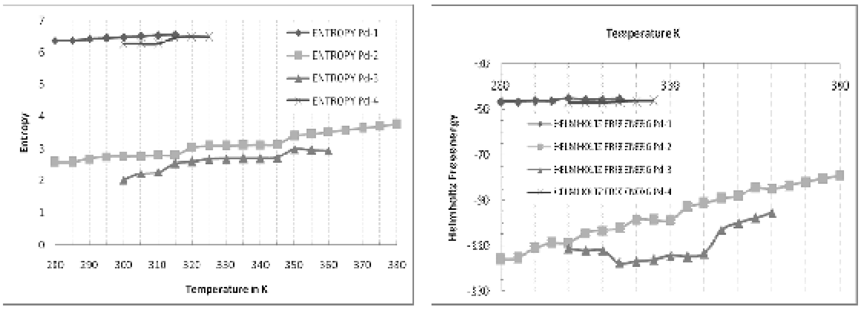

Fig. 5. Entropy and Helmholtz free energy variation with temperature in K.

All the molecules are rotated along the three possible axis and the change of corresponding energies are obtained to calculated the entropy ($S= K_B \ln Q$) and Helmholtz free energies ($F = - K_B T \ln Q$). (K_B is Boltzmann constant, T is absolute temperature and Q is partition function)[15]. Q is calculated as the product of partition function of

rotation along all the three rotational axes and translation along the long molecular axis. In this calculation every configuration contribution is taken into account. We have taken only one side of molecular interaction at a time. This is one of the shortcomings in this method. Obviously the liquid crystals are very sensitive materials. The next neighbor molecular interaction should be taken in account. Although the molecules of next neighbor very weakly electro-statically 'see' the other molecule and it contributes a lot in phase formation and phase behavior. Also charge transfer and conformational changes cannot ignore for better calculation to obtain the precise conclusion. For interaction energy calculation we have taken the conformational variation for dihedral angles between the two rings within 5°. The graph between entropy and Helmholtz free energy of all the molecules with respect to temperature is shown in figure 10. Pd-4 entropy curves show that below clearing temperature the entropy of molecule Pd-4 is small in comparison Pd-1 molecule and this equals to entropy of Pd-1 molecule after clearing temperature. Isotropic phase is interesting and important for fundamental and applied studies because of existence of short range order. They provide testing ground for liquid crystal physics as near phase transition temperature they show critical temperature dependence for various physical parameters [3]. The Pd-2 molecule forms the smectic phase at 290K up to 320K the entropy curve is nearly flat and from 320K to the 350K a range is obtained where its value is a bit high so it explains the phase morphology of Pd-2 molecule. For Pd-3 molecule the entropy curve in between 350K up to 315K the curve shows same entropy region this is expected as by the calculation. The behavior of Helmholtz free energy curve is for the Pd-3 the free energy for entire smectic B phase range is low. For the Pd-2 molecule the variation is continual for some range. As we have said that the interaction energy terms evolve atom – atom interaction of two molecule in interaction hence the curve is appearing as above it is because out of several interactions, the weak interactions breaks first as the temperature increases and energy is release. The similar case is also possible in other studied molecule. This can be explained by the help of various rotational curves. If rotational hindrance is low the entropy or Helmholtz free energy curve remains constant to the phase range. We are not predicting the very sharp range of phase transition temperature. But the range of transition is within ±10°C (fig. 5).the long range correlation is necessary for prediction of accurate phase behavior. Further calculation with more precise method is needed for in depth analysis.

3.0 Conclusion

All the selected molecules are pyridine derivatives. We have calculated the interaction energy of a pair of molecule in vacuum. The entropy and Helmholtz free calculation predicts the phase morphology as well as non mesogenic behavior of

molecular systems, in the studied case of the molecular behavior.

References:

[1] S.K.Thakur, *Mol.Cryst.Liq.Cryst.* 588 (2014)28-40.

[2] S.K. Thakur, M.Roychoudhury *mol.cryst.liq.cryst.* 562(2012)28-42.

[3] P.G. de Gannes, J.Prost, *Physics of Liquid Crystals, 2nd*. Oxford University PressOxford (1993) 514, 50.

[4] P.Semenza, *Nat Photonics* 1 (2007) 267-268.

[5] O.Laverntovich,P.Pasini, C.Zennoni, S.Zumer (eds.) *Defects in Liquid crystals: Computer Simulation.*,Kluwer, Dordrecht,2001.

[6] B. Bhadur (Ed.) *Liquid crystals: Application and uses*,Vol.-1, World scientific, Toronto. Canada,1990.

[7] M.R. Wilson, *Chem.Soc.Rev.36* (2007)1881-1888.

[8] M.R. Wilson, *Int.Rev.Phys.Chem.* 24 (2005)421-455.

[9] M. Roychoudhury, S.K. Thakur, Pankaj Gaurav, *J. Molecular Liquids*, 161 (2011)55-62

[10] M. Roychoudhury, S.K. Thakur, *mol.cryst.liq.cryst.* 548 (2011) 192–208.

[11] P. Claverie, Elaborations of approximate Formulas for Interactions Between Large Molecules: Applications in Organic Chemistry in *Inter Molecular Interactions From Diatomic to Biopolymers*, B.Pullman (eds.), J. Wiley & Sons Ltd., (1978) 217-226.

[12] V.F. Petrove and A.I. Pavluchenko, *Mol.Cryst.Liq.Cryst.* 383 (2002) 63-79.

[13] Gamess Version = Feb 14, 2018 (R1) From Iowa State University

M.W. Schmidt, K.K. Baldridge, J.A. Boatz, S.T. Elbert, M.S. Gordon, J.H. Jensen, S.Koseki, N.Matsunaga, K.A. Nguyen, S.J. Su, T.L. Windus, together with M. Dupuis, J.A. Montgomery *J.comput.chem.*14, 1347-1363(1993) (32 Bit Linux Version)

[14] Jmol: an open-source Java viewer for chemical structures in 3D. http://www.jmol.org.

[15] Daan Frenkel and Berend Smit *Understanding Molecular Simulation From Algorithms to Application.* Academic Press (2002)

प्रभा खेतान के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

सोनम सिंह*

मानव समाज का अध्ययन ही समाजशास्त्र का विषय वस्तु है। यह सामाजिक विज्ञान की एक ऐसी शाखा है जो मानवीय सामाजिक संरचना और गतिविधियों से संबंधित जानकारी को परिष्कृत करने और उनका विकास करने के लिए अनुभवजन्य विवेचन एवं विवेचनात्मक विश्लेषण की विभिन्न पद्धतियों का उपयोग करता है। परम्परागत रूप से समाजशास्त्र की केन्द्रीयता सामाजिक स्तर विन्यास, सामाजिक सम्पर्क, सामाजिक संबंध, सामाजिक मूल्य, धर्म, संस्कृति और विचलन पर रही है क्योंकि अधिकांशत: मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह सामाजिक संरचना या सामाजिक गतिविधियों की श्रेणी के अंतर्गत सटीक बैठता है।

समाजशास्त्र में मनुष्य की सामाजिकता की पहचान के अनेक साधन हैं। उनमें से जो रास्ता साहित्य संसार मे होकर गुजरता है, वह सबसे सुगम एवं विश्वसनीय तब होता है जब वह उपन्यास के रचना संसार से होकर गुजरता है। कारण, वहां न तो कविता की आत्मपरकता की फिसलन होती है और न नाटक के यथार्थ का मायालोक होता है। इस संबंध में 'मिशेल जेराफा' की मान्यता है कि 'उपन्यास एक ऐसी कला है जिसमें मनुष्य सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से निरूपित होकर सामने आता है।'

समाजशास्त्र सामाजिक जीवन, मूल्यों एवं मान्यताओं का विवेचन विश्लेषण करता है एवं संस्कृतियों और सभ्यताओं में हो रहे परिवर्तनों का मूल्यांकन करता है। उपन्यास सामाजिक परंपराओं, मूल्यों एवं परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में सामाजिकता को स्वर देता है। साहित्य का समाजशास्त्री सबसे पहले और सबसे अधिक उपन्यास की ओर मुड़ता है। अपने समय, समाज और इतिहास की प्रक्रिया से परिभाषित मनुष्य ही उपन्यास रचना का लक्ष्य है और समाजशास्त्रीय अन्वेषण का भी। एक उसकी कलात्मक पुनर्रचना का माध्यम है तो दूसरा उसके बौद्धिक विश्लेषण का साधन। उपन्यास के समाजशास्त्र के भी विकसित होने का यही कारण है। वस्तुत: यह दोनों एक ही युग के समान भौतिक और वैचारिक परिवेश की उपज हैं। साहित्य में सामाजिक मान्यताओं और मूल्यों की प्राथमिकता होती है, विचार गौण होते हैं; किंतु समाजशास्त्र में विचारों की प्रधानता होती है।

---

*शोध अध्येता, हिन्दी विभाग, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार

इतिहास साक्षी है कि कोई भी रचनाकार, सर्जक, साहित्यकार, लेखक, उपन्यासकार या कवि समाज से अलग होकर अथवा उससे कटकर ना तो अपना काम चला सकता है और ना ही किसी श्रेष्ठ रचना के सृजन में कामयाब हो सकता है। 'भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य चिंतन' में 'डॉक्टर सभापति मिश्र' कहते हैं- ''कोई भी समाज एवं उसका संवेदनशील कवि, रचनाकार जब अपने चारों ओर फैले हुए सामाजिक परिवेश के दबाव को महसूस करता है तो उसे देखता ही नहीं, भोगता भी है। इससे उसकी संपूर्ण चेतना विक्षुब्ध हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में उसका रिएक्शन एक नवीन उभार के रूप में आता है।''[1]

फलस्वरुप वह मानवीय मूल्य, नैतिकता-अनैतिकता, सामाजिकता, आदर्श, वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के बड़े-बड़े चट्टानी आंकड़ों के बीच भूख, प्यास, प्रवृत्ति, मूल आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक न्यूनतम सामाजिक एवं माननीय संसाधनों के ताना-बाना, दबावों, तनावों के बीच बार-बार टकराकर सृजन का शंखनाद करता है। वह समाज में चारों ओर बिखरी घनघोर स्वार्थपरता, प्रवंचना, अनिश्चितता, छल प्रपंचता, अवसरवादिता, शोषण, थकान, टूटन, ग्लानि और रिक्त-बोध को जन्म देकर सही मायने में समाजशास्त्र को जन्म देता है। प्रभा खेतान भी इस परिवेश से अछूती नहीं हैं। उनके उपन्यासों में भी समाजशास्त्रीय परिवेश का सहज बोध दृष्टिगत होता है।

इस दृष्टि से विचार करने पर प्रभाजी के उपन्यासों में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक चेतना और जीवन बोध के विविध आयाम दिखाई पड़ते हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में एक ओर जहां भारतीय परंपरावादी समाज का चित्रण किया है- जिसमें भावना, संवेदना, नैतिकता, जीवन मूल्य और सांस्कृतिक बोध अंतर्निहित है। भारतीय समाज के अंतर्गत इन्होंने महानगरीय और ग्रामीण दोनों समाजों का चित्रण किया है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास संपन्न मारवाड़ी समाज के रहन-सहन, रीति-रिवाज और परिवेश के इर्द-गिर्द रचा गया उपन्यास है, जिसमें सामान्यत: स्त्री से यही अपेक्षा की जाती है कि वह गृहस्थी में ही जीवन की सार्थकता देखें और परंपरागत पत्नी धर्म का निर्वाह करें। पर इस पुरुष मानसिकता की विरोधी प्रिया जब पुरुष के कार्य जगत में प्रवेश करती है और देश-विदेश का भ्रमण करते हुए निरंतर सफलता को प्राप्त करती हुई आगे बढ़ती है तो पति नरेंद्र को यह फूटी आंख नहीं सुहाता। उसका अहंकार उससे कहला उठता है- ''यह मत भूलो प्रिया कि मैं पुरुष हूं, इस घर का कर्ता। यहां मेरी मर्जी चलेगीय हां, सिर्फ मेरी।''[2]

अथवा

''दरअसल तुम्हें इतनी खुली छूट देने की गलती मेरी ही थी। मुझे पहले ही चिड़िया के पंख काट डालने चाहिए थे।''[3] आज भी क्या अधिकांश पुरुषों की यही मानसिकता नहीं है। आधुनिक समाज में भी अधिकांशत: पुरुष कहां यह बर्दाश्त कर पाते हैं कि उसकी पत्नी सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक धरातल पर उससे श्रेष्ठ हो।

'अपने अपने चेहरे' 1994, 'तालाबंदी' 1992, 'छिन्नमस्ता' 1993, 'पीली आंधी' 1996 एवं 'स्त्री पक्ष' 1999 जैसे उपन्यासों में इन्होंने भारतीय महानगरीय समाज विशेषतः मारवाड़ी समाज में होने वाले परिवर्तनों और उससे उत्पन्न पीड़ा और संघर्ष का चित्रण किया है। चूंकि प्रभा खुद मारवाड़ी समाज का हिस्सा रही हैं, अतएव संयुक्त मारवाड़ी परिवार के उद्योगपतियों का अंतर्कलह, टूटते संयुक्त परिवार, दरकते पारिवारिक संबंध, पिता-पुत्र, पति-पत्नी के रिश्तों में बढ़ते तनाव का बखूबी चित्रण प्रभा जी ने किया है। 'पीली आंधी' में प्रभा ने ग्रामीण परिवेश का विस्तृत चित्रण किया है। एक ओर जहां महानगरीय संस्कृति अकेलेपन, अजनबीयत, संबंधों की स्वार्थपरता और टूटन से युक्त है, वहीं ग्रामीण समाज एकता एवं आत्मीयता से लबरेज। जहां जन्म, छठी, मुंडन, जनेऊ, विवाह या मरण आदि व्यक्तिगत पारिवारिक संस्कार होते हुए भी सहभागिता अनिवार्यतः संपूर्ण समाज की होती है क्योंकि ये संस्कार रीति-रिवाज, प्रथाएं या परम्पराएं सामाजिकता का ही एक रूप हैं- ''बाड़ी के लोगों का उत्साह देखते ही बनता था... ब्याह हाथ में लेने के बाद घर में आस-पड़ोस की औरतें आ जातीं और रोज बधावा गातीं।... वहां तो मां जब कुएं पर पानी भरने जाती तो वह भी साथ हो लिया करता, सब औरतें मिलकर कितने सुरीले स्वर में गाती थीं! सुबह-सुबह चाकी पर अनाज पीसते हुए दादी का गाया हुआ भजन कानों में मिश्री घोल जाता। बार-त्योहार के दिन गीतों से हेली गूंजने लगती।''[4]

इस उपन्यास में लेखिका ने जहां गांव की शस्य श्यामला भूमि, उसकी उर्वरता या प्रकृति से गहन भावनात्मक जुड़ाव का चित्रण माधो, सुराणा जी या राधाबाई, पद्मावती आदि पात्रों के माध्यम से किया है- ''यहां बंगाल में कैसी गजब की हरियाली है। लेकिन फिर भी देश की बात अलग है। मोरिये की केका ध्वनि सुनने को कान तरस गये। यहां कहां? वह तो राजस्थान में नाच रहा होगा।''[5]

गरीबी से अमीरी का सफर तय करने के बाद भी ये पात्र गांव के माटी की सोंधी खुशबू को महसूस कर खींचे चले आते हैं- ''दिवाली के बाद माधो सुजानगढ़ गया। बालू के टीबों को देखकर उसका मन पुलक से भर उठा, मन किया अभी इसी बालू में लोट-पोट लगाए। गांव वैसा का वैसा था। कहीं कुछ नहीं बदला था। बस इस साल बारिश हुई थी, इसलिए खेतों में बाजरे का सिट्टा लहरा रहा था। मतीरे के ढेर लगे हुए थे। किसानों के चेहरे पर खुशियां थीं। गांव के कुएं पर औरतों की भीड़ थी।... कुएं से हटकर इमली के पेड़ के नीचे बैठे हुए लोग तंबाकू पी रहे थे। सुख-दुःख की बातें कर रहे थे।''[6]

तो वहीं दूसरी ओर गांव की अशिक्षा, रूढ़िवादिता और अंधविश्वास के दलदल में आकंठ डूबे लोगों और उससे उत्पन्न संकटों को भी उकेरा है- ''किशन बाबू की बालाजी में पूरी श्रद्धा थी। उन्होंने अरदास की...हे बाबा! मैं ठेठ सालासार आकर सवामणी प्रसाद कर दूंगा, तू मेरे माधव की

जिंदगी सुधार दे। बीनणी की बीमारी ठीक कर दे।"[7]

फेरों के समय मिर्गी पीड़ित कन्या के बेहोश होने पर घरवालों द्वारा रचा गया अंधविश्वासी स्वांग आज भी समाज में बदस्तूर जारी है, जो समाज के अधिकांश वर्ग को अपने चपेटे में ले लेता है। रोगी का डॉक्टरी इलाज करवाने के स्थान पर झाड़-फूंक, टोना-टोटका या मन्नतों द्वारा ठीक करने की कवायद राधाबाई किशन बाबू (पीली आंधी) चाहे दाई मां (छिन्नमस्ता) आदि अनेक पात्रों के माध्यम से ग्रामीण अशिक्षित समाज के यथार्थ को लेखिका द्वारा उकेरा गया है और उन संस्कारों से मुक्ति का उपाय भी सुझाया गया है- "संस्कार और कुसंस्कार में फर्क होता है। मैं संस्कार विहीन होने को नहीं कहता, मगर कुसंस्कारों से मुक्ति तो वैज्ञानिक शिक्षा से ही संभव है।"[8] जात-पात, छुआछूत, अंधविश्वास सरीखे कुसंस्कार आज भी समाज में गहरे व्याप्त हैं। इन सब से मुक्ति ही शिक्षा का असली उद्देश्य है- "ज्ञानी जन अपने कुसंस्कारों से मुक्त हो जाते हैं। जात-पात, छुआछूत, अरे यह सब असली लड़ाई है! गरीबी से लड़ना सीखो।"[9]

शिक्षा के प्रचार-प्रसार, भौतिकता, संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरूकता और आर्थिक स्वावलंबन ने आधुनिक स्त्री की जीवन शैली को परिवर्तित ही नहीं किया, एक नवीन दृष्टि भी प्रदान की है। फलस्वरूप वह चूल्हा-चौका, बर्तन-बासन, सिलाई-कढ़ाई, तीज-त्योहार, आचार-पापड़ और घर की चारदीवारी तक ही सीमित न होकर अपनी अस्मिता, अपने स्वत्व की प्राप्ति के लिए संघर्षरत है और उसमें अधिकांशत: कामयाब भी हो रही हैं।

आर्थिक रूप से दो वर्गों-पूंजीवादी एवं सर्वहारा में बंटे समाज में वर्ग विषमता चरम पर है। प्रभा के भारतीय पृष्ठभूमि पर लिखे प्राय: सभी उपन्यासों में यह विषमता दिखाई पड़ती है। सर्वहारा से पूंजीपति तक की यात्रा करते 'पीली आंधी' के माधो बाबू, 'अपने अपने चेहरे' की रमा आदि संघर्ष और मेहनत की बदौलत एक सफल व्यवसायी के रूप में स्थापित होते हैं। नायिका वृंदा के माध्यम से मध्य वर्ग की समस्याओं को 'स्त्री पक्ष' में उठाया गया है किंतु शोषक और शोषित की समस्याओं का विस्तार पूर्वक चित्रण लेखिका के 'तालाबंदी' उपन्यास में देखने को मिलता है, जहां विभिन्न व्यावसायिक उलझनों- पूंजीपति-श्रमिक संघर्ष, मजदूर यूनियनों के विविध दांवपेच एवं आंदोलनों, विदेशी व्यापारियों के शोषण, सरकारी तंत्र की कमजोरी एवं पारिवारिक स्वार्थपरता, अलगाव, दिशा हीनता एवं मानसिक अशांति के दबाव को झेलता शोषक माना जाने वाला पूंजीपति ही शोषित की भूमिका में खड़ा दिखाई पड़ता है।

भारतीय समाज में रंगभेद किस कदर हावी है, इसका मार्मिक वर्णन छिन्नमस्ता उपन्यास में नायिका प्रिया के माध्यम से देखने को मिलता है जहां काले रंग के कारण उसे बार-बार पारिवारिक उपेक्षा व अपमान सहना पड़ता है। इसमें बाल यौन शोषण की विभीषिका का भी वर्णन है जो परिवार व समाज का बेहद नंगा और घिनौना रूप सामने लाता है।

इसके अतिरिक्त सामंत कालीन अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह (पीली आंधी), अनमेल विवाह, विवाहेतर संबंध, वैवाहिक जीवन की असफलता, मजदूर निम्न वर्ग (छिन्नमस्ता, तालाबंदी), दहेज विरोध, बहुविवाह विरोध, गरीबी, बेरोजगारी, बढ़ती जनसंख्या की समस्या, वृद्धावस्था से उत्पन्न समस्या (पीली आंधी) आदि का सजीव चित्रण भारतीय सामाजिक पृष्ठभूमि में करना ही प्रभा जी के इन उपन्यासों का मुख्य ध्येय है।

वहीं दूसरी ओर प्रभा ने अपनी व्यावसायिक शिक्षा एवं व्यावसायिक सक्रियता के कारण विदेशों में भ्रमण करते हुए पाश्चात्य समाज के आचार-विचार, व्यवहार, मानसिकता और जीवन दृष्टि को देखा, परखा और अपने विभिन्न उपन्यासों- 'आओ पेपे घर चलें' 1990, 'अग्निसंभवा' 1992, 'एड्स' 1993 में उकेरा भी है। प्रथम उपन्यास में अमेरिकी समाज में व्याप्त उच्चवर्गीय जीवन के अंतर्विरोध, बाहरी और भीतरी जीवन की उलझन तथा तनाव, पति-पत्नी की टकराहट, पारिवारिक विघटन, रोते बिलखते बच्चे, डॉलर कमाने की भूख एवं इससे उत्पन्न संवेदनहीनता की व्यथा, यांत्रिकता, बनावटी जिंदगी और इसके जीवन सत्य को इसके प्रमुख पात्रों-आइलिन, मिसेज डी, क्लारा ब्राउन, मरील और उसकी बेटियां- नैंसी, लाराय हेल्गा व उसके बच्चों एवं कैथरीन के माध्यम से अनेकानेक समाज विषयक प्रश्नों को उठाया गया है। उपन्यास में समाज की उस विडंबना को भी इंगित किया गया है जिसमें चोपड़ा दंपत्ति सरीखे स्वदेशियों द्वारा विदेश में लेखिका के प्रति घोर अजनबी व्यवहार एवं दोहरा चरित्र अपनाया जाता है, वहीं आइल, कैथी, मिसेज डी, मरील सरीखे अजनबी विदेशियों से मिले अपनत्व का भी उल्लेख होता है। उपन्यास का एक सशक्त पात्र पेपे (कुत्ता) है जो बदलते सामाजिक परिवेश और रिश्तों में आये संवेदनहीनता के दौर में अकेलापन बांटने वाले साथी के रूप में सामने आता है। साथ ही मनुष्य की पशुओं पर बढ़ती भावनात्मक निर्भरता का परिचायक भी बनता है।

अमेरिकी समाज में गहरे व्याप्त रंगभेद, नस्लवाद के परिणामस्वरुप श्वेतों और अश्वेतों के बीच की घृणा, नफरत, खूनी हिंसा एवं संघर्ष को लेखिका ने व्यक्त किया है जिसकी शिकार मासूम कैथी भी बनती है। अग्नि संभवा में चीन के समाज एवं संस्कृति का चित्रण है। नारी का संघर्ष यहां भी मुखर है। ग्रामीण समाज में स्त्रियों की शिक्षा के प्रति लापरवाही, पारिवारिक स्तर पर स्त्री का शोषण, कन्या-शिशु हत्या की सामाजिक परंपरा, विभिन्न कुरीतियां एवं विसंगतियां व्याप्त है तो शहरी समाज में गरीबी, भूखमरी, गरीब मजदूरों का शोषण एवं भ्रष्ट अफसरशाही चरम पर है। फलस्वरूप राजनीतिक उठापटक, चीनी क्रांति, गोरी चमड़ी का शोषण, मार्क्सवाद एवं उसका विकृत रूप चीनी समाज में लक्षित किया जा सकता है। इसको व्यक्त करती कथा नायिका आईवी कहती है- "हां, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, राष्ट्र विरोधी काम। हम जैसे गरीब मजदूरों का शोषण। रात को उन अफसरों के लिए स्पेशल खाना पकता। सेक्स के लिए मजदूर औरतों की सप्लाई की जाती। शराब

के नशे में ये सरकारी नौकर हांगकांग के व्यापारियों का और उनके साथ आई हुई गोरी चमड़ियों का कुत्तों की तरह पैर चाटते।''[10]

'एड्स' में संयुक्त पारिवारिक संरचना विहीन समाज में पारिवारिक बिखराव, व्यापारिक भागमभाग, स्वच्छंदता, भटकाव एवं अकेलेपन की पीड़ा को भोगते पात्रों के माध्यम से यूरोपीय देशों की सामाजिक दशा का अंकन किया गया है। तमाम भौतिक सुख सुविधाओं और संपन्नता के बीच भी मानवीय समर्पण तलाशता मनुष्य किस कदर अधूरा है इसका चित्रण इस उपन्यासिका के विभिन्न पात्रों- एनडू, कुक्कू, श्वार्ज, सोफिया आदि पात्रों के माध्यम से देखने को मिलता है। अजीज मित्र से दोस्ती के परिणामस्वरुप एड्स पीड़ित पत्नी की पीड़ा का अनुभव करता पति उससे बेपनाह प्रेम तो करता है किंतु इस आतंक से भी ग्रसित है कि कहीं वह भी इस खतरनाक बीमारी का शिकार ना हो जाए। पत्नी एवं परिवार के साथ बिताए गए खूबसूरत पलों को याद करता हुआ वह तिल तिल सुलगता रहता है- ''अपने फ्लैट में अकेला मैं एक पूरे अतीत का खिलखिलाना सुनता हूं। हर रविवार को हम साथ हुआ करते थे। मैं और मेरा दोस्त, मेरी पत्नी। मेरी बेटी रंगीन गुब्बारे की तरह इधर-उधर टंगी रहती।.. लेकिन मैं? मैं तो मरा नहीं हूं? बस खोता जा रहा हूं, हां मेरी शिराओं में मौत की खामोशी बहती रहती है! दुनिया कितनी बेस्वाद हो गई है और कितनी अपरिचित।... मैं उसे देखने जाता हूं, जो कभी मेरी अपनी जिंदगी थी, मिलने जाता हूं जो कभी मेरा प्यार रहा था, लेकिन हमारे ही बीच कांच की दीवार होती है और उस पार एक धीरे-धीरे मरती हुई औरत हुआ करती है।''[11]

क्रिश्चियन एवं मुस्लिम धर्म के परस्पर टकराहट के कारण उत्पन्न युद्ध की स्थिति का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। साथ ही वैश्विक स्तर पर चलने वाली राजनीति पर विश्लेषण करते हुए युद्ध की विभीषिका एवं सत्ता संघर्ष और परिवर्तन आदि सामाजिक विषयों का विवेचन किया गया है। प्रभा खेतान के उपन्यासों में सामाजिकता के विविध रूप भारतीय एवं पाश्चात्य पृष्ठभूमि के उपन्यासों में देखने को मिलता है। इन उपन्यासों में भारतीय समाज परंपरावादी तो है, किंतु शिक्षा, जागरूकता, भौतिक मूल्यों, रहन-सहन, आचार विचार आदि में परिवर्तनशील आधुनिक भी है। कहीं यह पाश्चात्य जीवनशैली, मानसिकता एवं व्यवहारिकता से प्रभावित दिखाई पड़ता है तो कहीं भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों, मान्यताओं, परंपराओं आदि से पाश्चात्य समाज को प्रभावित करता हुआ भी। भारतीय समाज में एकल परिवार की अवधारणा, महानगरीय बोध, भागमभाग, मानसिक द्वंद्व, अजनबीपन, नि:संगता आदि पाश्चात्य जीवन शैली एवं मूल्यबोध के ऐसे ही प्रभाव हैं। भारतीय परिवेश में पत्नी परंपरागत संस्कारों की जकड़बंदियों में जकड़ी पति की उपेक्षा, प्रताड़ना एवं अपमान को सहती हुई, सारी कुंठा, दर्द और आसुंओं को पीती हुई पत्नीत्व का निर्वहन करती है। 'आओ पेपे घर चलें' की मिसेज डी. पाश्चात्य परिवेश में भारतीय संस्कारों वाली ऐसी ही पत्नी है- ''वह सह रही थी अपमान, वंचना, पीड़ा। वह गीली लकड़ी की तरह सुलग रही थी। क्यों?

आखिर क्यों? सारी स्वतंत्रा के बावजूद मिसेज डी. डक्क डी. से अपना हक नहीं मांग रही थी।''[12] पति के पैसों पर ऐश-मौज करती इसी उपन्यास की कैथी हो, चाहे एड्स की कुक्कू प्रभा के इन उपन्यासों के पात्रों पर भारतीय सामाजिक मूल्यों का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है।

वस्तुत: प्रभा खेतान के उपन्यासों के प्रधान पात्र ऐसे हैं जो जीजिविषा, संघर्षशीलता, स्वाधीनता के प्रतिरूप हैं। परिवार एवं समाज द्वारा प्रताड़ित होने पर भी प्रतिवाद, प्रतिरोध एवं विरोध की आवाज उठाते हैं, कामयाबी हासिल कर स्वत्व, स्वाधीनता, अस्मिता आदि की प्राप्ति करते हैं। उनके उपन्यासों में नकारात्मक एवं सकारात्मक मूल्यों के बीच द्वंद्व है पर अंतत: विजय सकारात्मक मूल्यों की ही होती है। प्रभा जी अपने उपन्यासों में नारी अस्मिता एवं स्वाधीनता को प्रतिपाद्य के रूप में स्वीकार करती हैं लेकिन सकारात्मक अर्थ में नकारात्मक अर्थों में नहीं। इनके उपन्यासों की नारी विभिन्न पारम्परिक भूमिकाओं से इतर स्वतंत्र मानवी के रूप में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराती हैं। इसके साथ ही लेखिका ने अपने औपन्यासिक पात्रों के माध्यम से नारी के सामाजिक जीवन के विभिन्न अंशों, अत्याचार, शोषण एवं समस्याओं के विविध रूपों को व्यक्त किया है। नि:संगता, अस्तित्वहीनता, असमानता, गुलाम मानसिकता, चारित्रिक श्लीलता अश्लीलता का प्रश्न, दांपत्य उलझन, संबंधों में आए कड़वाहट एवं टूटन, प्रेमहीनता, दहेज समस्या, विवाह-विच्छेद, विवाहेतर संबंध, घरेलू हिंसा एवं प्रताड़ना, नारी अशिक्षा, परिवार और समाज द्वारा पत्नी, विधवा, परित्यक्ता, प्रेमिका, मित्र, दूसरी औरत, बहन, बेटी आदि के रूप में शारीरिक एवं मानसिक शोषण, यौन शोषण आदि विविध सामाजिक समस्याओं के चित्रण विश्लेषण के माध्यम से प्रभा वास्तविक अर्थ में अपने सामाजिक दायित्व का निर्वहन करती हुई समाजशास्त्र को ही जन्म देती हैं।

सन्दर्भ

1. भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य चिंतन: डॉ. सभापति मिश्र, पृ. 381
2. छिन्नमस्ता: प्रभा खेतान, पृ. 13
3. वही, पृ. 11
4. पीली आंधी: प्रभा खेतान, पृ. 63-64
5. वही, पृ. 114
6. वही, पृ. 71
7. वही, पृ. 66
8. वही, पृ. 65
9. वही, पृ. 76
10. अग्निसंभवा: प्रभा खेतान, दूसरी किस्त, हंस, अप्रैल 1992, पृ. 59
11. एड्स: प्रभा खेतान, 'आज' पूजा वार्षिकांक, पृ. 85
12. आओ पेपे घर चलें: प्रभा खेतान, पृ. 130

Climate Change and Global Warming

Vinay Kumar Singh*

"Climate in a narrow sense is usually defined as the average weather, or more rigorously, as the statistical description in terms of the mean and variability of relevant quantities over a period of time ranging from months to thousands or millions of years. The classical period for averaging these variables in 30 years, as defined by the World Meteorological organization. The relevant quantities are most often surface variables such as temperature, precipitation and wind. Climate in a wider sense is the state, including a statistical description of the climate system".

⟹ *Inter governmental panel on climate change (IPCC), 2010*

Climate Change

The United Nations Framework conversation or climate change (UNFCCC) defines climate change as, " a change of climate that is attributed directly or indirectly to human activity that alters the compositions of the global atmosphere and that is in addition to natural climate variability observed over comparable time periods".

The UNFCCC thus, makes a distinction between climate change attributable to human activities altering the atmosphere composition, climate variability attributable to natural causes.

Global warming causes climate change, so the two terms are very much related. Global warming is the terms used to describe the increase in the Earth's average temperature. Climate change refers not only to global changes in temperature but also to change in wind, precipitation, the length of seasons as well as the strength and frequency of extreme weather events like droughts and floods

Climate Change: Evidences

Climate change is one of the defining issues of our time. It is now more certain than ever, based on many lines of evidence.

** Assist. Prof. Department of Zoology, Maharana Pratap Post Graduate College, Jungle Dhusan, Gorakhpur
युगद्रष्टा ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की 50वीं एवं राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 05वीं पुण्यतिथि के अवसर पर आयोजित सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला में दिनांक 17 अगस्त 2019 को दिया गया व्याख्यान।

1. Global Temperature Rise

The Planets average temperature has risen more than 1.4^{0}F (0.8^{0}C) since the late 19th century, a change driven largely by increased carbon dioxide and other human made emissions into the atmosphere.

2. Sea Level Rise

Global sea level rose about 8 inches (20cm) in last century. The pace of global sea level rise doubled from 1.7 mm per year throughout most of the twentieth century to 3.4 mm per year since 1993 (Climate change : Global Sea Level, NOAA).

3. Shrinking Ice Sheets

The Greenland and Antarctic ice sheets have decreased in mass. Data from NASA's Gravity recovery and climate experiment show Greenland lost 150 to 250 cubic kilometers of ice per year between 2002 and 2006, while Antarctica lost about 152 cubic kilometers of ice between 2002 to 2005.

4. Declining Arctic Sea Ice

Arctic ice refers to the area of the Arctic Ocean covered in ice. Arctic sea ice reaches its per decade, relative to the 1981 to 2010 average.

5. Glacial Retreat

Glaciers are retreating almost everywhere around the world – including in the Alps, Himalayas, Andes and Rockies.

6. Ocean Acidification

Since the beginning of the industrial revolution, the acidity of surface ocean waters has increased by about 30 percent This increase is the result of humans emitting more carbon dioxide into the atmosphere and hence more being absorbed into the oceans.

Greenhouse Effect

Greenhouse means a building made mainly of glass, with heat and humidity regulated for growing plants. The atmosphere acts like a glass in a greenhouse.

Atmosphere, like glass absorbs some of the long wave radiation emitted by Earth and radiates the energy back to the earth. In this way temperature of the earth is maintained.

Thus

"A greenhouse is that body which allows the short wave length incoming solar

radiation to come in but does not allow the long wave outgoing terrestrial infrared radiation to escape".

In the similar way, the earth's atmosphere bottles up the energy of the Sun, and is said to act like a greenhouse where CO_2 acts like glass windows. CO_2 and water vapours in the atmosphere transmit short wave length solar radiation but reflect the longer wavelength heat radiation from warmed surface of the earth. CO_2 molecules are transparent to sunlight but not to the heat radiation. So they tap and re enforced the solar heat stimulating an effect which is popularly known as **greenhouse effect.**

The **Greenhouse effect** may therefore be defined as the progressive warming up of earth's surface due to blanketing effect of manmade CO_2 in atmosphere.

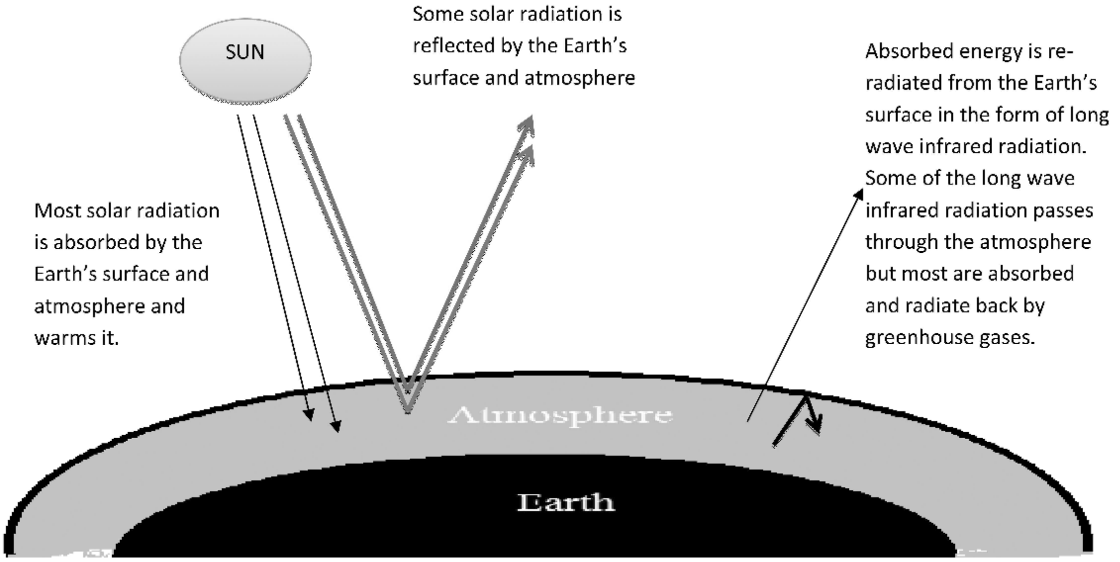

Figure: Incoming short wave solar radiations (ultraviolet, visible and a limited portion of infrared energy) from the sun drive the Eath's climate system. Some of this incoming radiation is reflected by the atmosphere and the Earth's surface. The heat generated by this absorption is emitted as long wave infrared radiation . Some of which radiates out into space but most of the Earth's emitted long wave infrared radiation is absorbed by greenhouse gases present in the atmosphere, which heats the lower atmosphere.

Most of these long wave infrared radiation (greater than 4 ìm) re- radiated by atmospheric gases, most importantly water vapour (H_2O), Carbon dioxide (CO_2), Nitrous oxide (N_2O) and methane (CH_4) Radiactively active gases that absorb wave lengths longer than 4 um are called greenhouse gases.

The greenhouse effect is a natural phenomenon in the absence of greenhouse gases this heat would simply escape to space, and the earth's average surface temperature would be well below freezing temperature. But greenhouse gases absorb and redirect some of this energy down ward, keeping heat near the earth's surface. Hence greenhouse gases are responsible for average near surface air temperature about 16^0C. If there were

no greenhouse effect, the earth's average surface temprtaure would be about 18^0C instead of 16^0C.

Greenhouse Gases:

Many gases presented in the Earth's atmosphere behave as greenhouse gases. Many greenhouse gases present naturally in the atmosphere such as CO_2, CH_4, water vapour and nitrous oxide, while other are syntetic i.e. man made. Those that are synthetic greenhouse gases include CFCs, HFCs and PFCs as well as SF6. Hydrofluorocarbons, perfluorocarbons and sulfur hexafluoride are categorized as fluorinated gases (F- Gases).

Water Vapour : It is the most abundant greenhouse gas. As the temperature of the atmosphere rises, more water is evaporated from the ground (rivers, oceans, reservoirs, soil). Because the air is warmer, the absolute humidity can be higher (the air is able to hold more water where it's warmer), leading to more water vapour is the atmosphere. As a greenhouse gas the higher concentration of the water vapour is then able to absorb more long wave thermal radiation radiated from the earth, thus further warming of the atmosphere. The warmer atmosphere can then hold more water vapour and so on and so on. This is reffered to as a positive feedback.

Carbon dioxide : A minor but important component of the atmosphere, CO_2 is released through natural processes such as respiration volcano eruptions and through human activities such as deforestation, land use changes and burning fossil fuels.

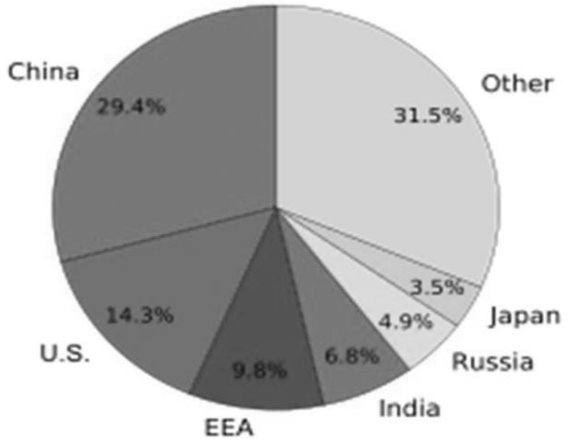

Fig. Global carbon dioxide emissions by country in 2015

Methane : A hydrocarbon gas produced both through natural sources and human activities including the decomposition of wastes in landfills agriculture (especially rice cultivation). Ruminant digestion and manure management associated with domestic livestock over the last 50 years human activities such as growing rice raising cattle using natural gas and mining coal have added to atmospheric concentraton of methane.

Nitrous oxide : A powerful greenhouse gas produced by soil cultivation practices, especially the use of commercial and organic fertilizers, fossil fuel combustion nitric acid production and biomass burning.

Chlorofluorocarbons : Chlorofluorocarbons (CFCs) have no natural source, but were entirely synthesized for uses as refrigerants, aerosol propellants and cleaning solvents. They are also greenhouse gases.

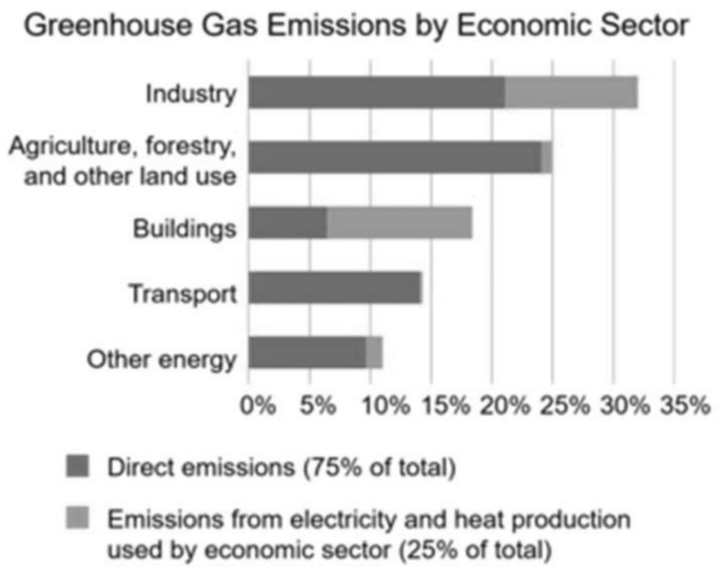

Fig. Annual greenhouse gas emissions attributed to different sectors as of the year 2010. Emissions are given as a percentage share of total emissions, measured in carbon dioxide-equivalents, using global warming potentials from the IPCC fifth Assessment Report.

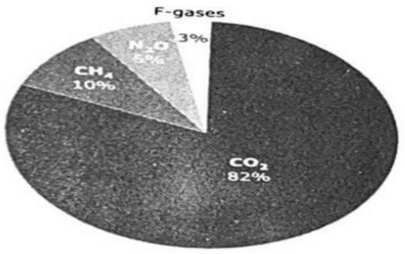

According to the US Environmental Protection Agency (EPA), carbon dioxide accounted for 82% of greenhouse gas emissions in the United States in 2013. Based on their CO_2 equivalents, methane is the next highest at 10%, followed by N_2O at 5% and fluorinated gases at 3%.

Increased in greenhouse gas concentrations : Human activities have increased

the atmospheric concentrations of important greenhouse gases. In last 100 years, as concentration of heat absorbing greenhouse gases increased in the atmosphere Earth's natural greenhouse effect is enhanced causing surface temperature to rise.

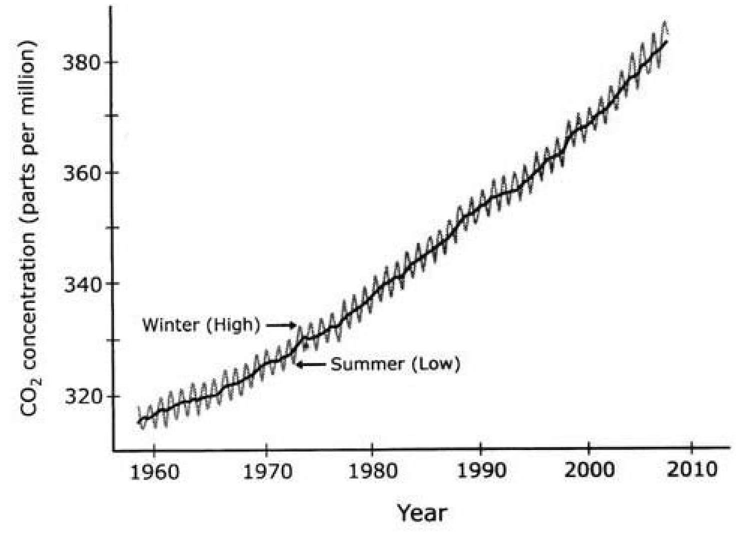

Figure [redacted] Carbon dioxide in the atmosphere, 1958–2007. CO_2 concentrations in the atmosphere have been measured at an altitude of about 4,000 meters on the peak of Mauna Loa mountain in Hawaii since 1958. This location was selected because it is far from urban areas where factories, power plants and motor vehicles that emit CO_2 might bias the measurements. The measurements at this location, remote from local sources of pollution, have clearly shown that atmospheric concentrations of CO_2 are increasing. The mean concentration of approximately 316 parts per million by volume (ppmv) in 1958 rose to approximately 369 ppmv in 1998. The annual variation is due to CO_2 uptake by growing plants. The uptake is highest in the northern hemisphere spring time (*source*: NOAA)

Between 1990 and 2010 global emissions of all major greenhouse gases (CO_2, CH_4, Nitrous oxide and Fluorinated gases such as HFCs, PFCs and SF6) increased.

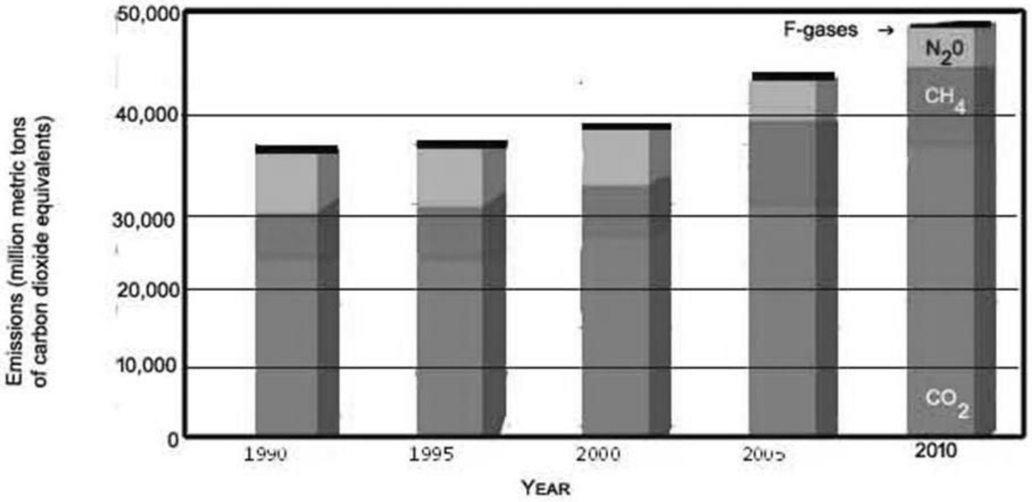

Figure : Global green house gas emissions, 1990-2010. F-gases are hydrocarbons, perfluorocarbons

and sulfur hexafluoride. This figure shows worldwide emissions of carbon dioxide, methane, nitrous oxide, fluorinated gases from 1990 to 2010. For consistency, emissions are expressed in million metric tons of carbon dioxide equivalents. These totals include emissions and sinks due to land-use change and forestry.

Global Warming potential of greenhouse gases:

Gases		Global warming potential (100 years)
Carbon Di-oxide (CO_2)	-	1
Methane (CH_4)	-	28
Nitrous Oxide (N_2O)	-	265
Chlorofluorocarbons (Such as CFCs-11)	-	4660
Hydrofluorocarbons (Such as HFC-23)	-	12400
Sulfur Hexafluoride (SF_6)	-	23500

Source : IPCC fifth Assessment Report (AR 5), 2014

Global Warming :

Global warming is defined as the increase in Earth's average surface temperature due to rising level of greenhouse gases. Over the last 100 years (between 1906 and 2005), the average temperature of the air near the earth is surface has risen more than 1.4^{0}F (0.8^{0}C). The rate of warming over the last 50 years is almost double that for the period 1906-2005 as a whole. If the world consumes ever more fossil fuel, greenhouse gas concentrations will continue to rise, and Earth's average surface temperature will rise with them.

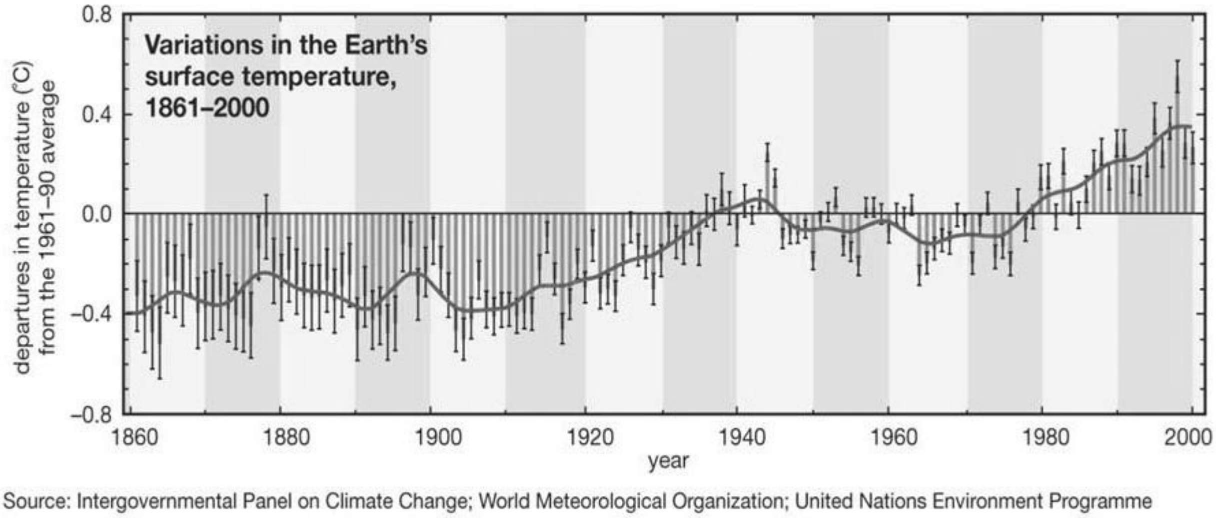

Source: Intergovernmental Panel on Climate Change; World Meteorological Organization; United Nations Environment Programme
© 2012 Encyclopaedia Britannica, Inc.

Increasing greenhouse gas concentration resulting from human activity such as fossil fuel burning and deforestation is mainly responsible for the observed temperature

increase. Deforestation is responsible for 10-20% of the excess CO_2 emitted to the atmosphere Earth year, and as already been discussed agriculture contributes nitrous oxide and methane.

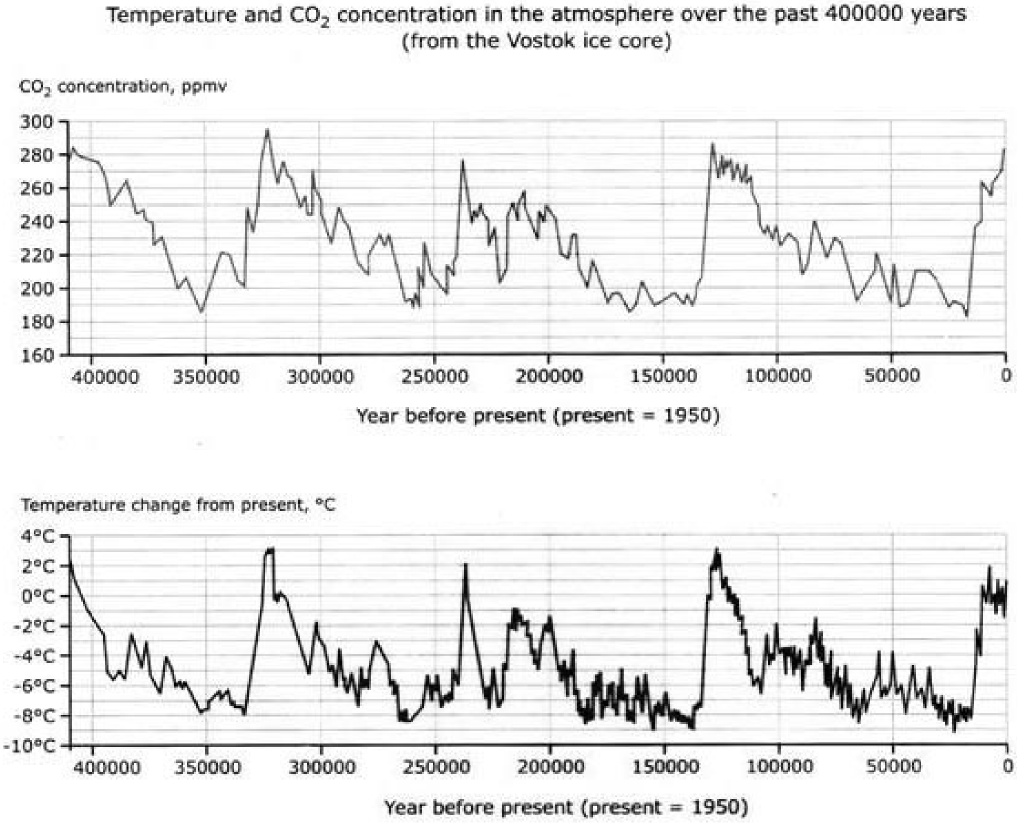

Figure : Over the last 400,000 years the Earth's climate has been unstable, with very significant temperature changes, going from a warm climate to an ice age in as rapidly as a few decades. These rapid changes suggest that climate may be quite sensitive to internal or external climate forcings and feedbacks. As can be seen from the black curve, temperatures have been less variable during the last 10000 years. Based on the incomplete evidence available, it is unlikely that global mean temperatures have varied by more than 1°C in a century during this period. The information presented on this graph indicates a strong correlation between carbon dioxide content in the atmosphere and temperature. A possible scenario: anthropogenic emissions of GHGs could bring the climate to a state where it reverts to the highly unstable climate of the pre-ice age period. Rather than a linear evolution, the climate follows a non-linear path with sudden and dramatic surprises when GHG levels reach an as-yet unknown trigger point.

Possible impact of Global warming : The rise of greenhouse gases and consequent global warming phenomenon have a number of effects on earth climate, ecosystem and biosphere process. The major events are described as follows.

a) **Sea level Change :** One major consequence of global warming arising out of greenhouse effect is the sea level rise. Four major changes take place prior to sea level rise as consequence of global warming. They are: Thermal expansion, mountain glacier melting, Greenland ice sheet melting, and Antarctic ice sheet

Table 1 : Estimated contributions to sea level rise over last 100 years (in cm)

	Low	Best Estimate	High
Thermal expression	2	4	6
Mountain glaciers	1.5	4	7
Greenland ice-sheet	1	2.5	4
Antarctic ice-sheet	–5	0	5
Total	–0.5	10.5	22

Table 2 : Estimated contributions to sea level rise (in cm) from 1990-2030 according to business- as-usual scenario

	Low	Best Estimate	High
Thermal expression	6.8	10.1	14.9
Mountain glaciers	2.3	7.0	10.3
Greenland ice-sheet	0.5	1.8	3.7
Antarctic ice-sheet	–0.8	–0.6	0
Total	8.8	18.3	28.9

Source : IPCC (Inter governmental Panel on climate change)

Table 3 : Future predictions of CO_2 concentrations rises in global temperature and sea level for various emission scenarios

a) Business-as-usual, high emission scenario				
	1990	2030	2060	2100 AD
CO_2 concentration	354	470	590	850
T(K)	0	1.1	2.0	3.25
Sea-level rise (cm)	—	18	38	65
b) All emission kept constant at 1990 rates :				
	1990	2030	2060	2100 AD
CO_2 concentration	354	420	465	520
T(K)	0	0.72	1.1	1.6
Sea-level rise (cm)	0	15	27	42

c) 2% p.a. (compound) reduction in all emissions from 1990.

	1990	2030	2060	2100
CO_2 concentration	354	388	395	390
T(K)	0	0.4	0.4	0.3
Sea-level rise (cm)	0	11	18	21

d) 2% p.a. increase in all gas emissions 1990-2100, thereafter a 2% p.a. decrease.

	1990	2030	2060	2100
CO_2 concentration	354	436	458	464
T(K)	0	0.93	1.10	1.0
Sea-level rise (cm)	0	17	28	34

melting. Tables 1, 2 & 3 provide an estimate of sea level changes in the past 100 years, between 1999-2030 and future trend if CO_2 emission rate continued as usual or not modified suitably.

In spite of uncertainties about the degree of rise in sea level, any rise would pose a direct threat to low lying costal zones and islands and tropical coastal wetlands, where the mangrove ecosystems are under threat. Where rising sea level is combined with tectoxic subsidence and/ or human actions that may exacerbate the problem, the situation is potentially very serious. Table 4, indicates the synthesized results in sea level by the year 2100 based on the high estimate of global warming under the 1900 business-as-usual scenario. This may be regarded as extreme but down-scaling still implies substantial problems for countries such as Bangladesh and China, particularly where economic growth in terms of GNP remains at a low level.

Table 4. Estimates of impact of 1 meter rise in sea level (IPCC, WGII, 1996)

Country / Source	People affected		Land affected	
	People in Million	% of Total	Km^2	% of Total
China	72	7	35,000	—
Bangladesh	71	60	25,000	17.5
Japan	15	15	2,300	0.6
Netherlands	10	67	2,165	5.9
India	7.1	1	5,800	0.4
Egypt	4.7	9	5,800	1.0
Nigeria	3.2	4	18,600	2.0

b) Crop Yield – But with respect to crop yield it is expected to rise to 60-80% in some areas because of rise of CO_2 level. However, other factor could offset these effects. There is also a prediction of regional climate changes along the ecosystem.

Over all the climate change is likely to be beneficial, due to the dominance of C_3 crops such as barley, wheat, rice and soya beans. The C_3 annual crops show yield increases of up to 30% at doubled (700 ppm) CO_2 concentration under controlled experimental condition (Table 5) .This productivity could be further enhanced since fourteen out of eighteen of the world's worst weeds are C_4 plants and would not directly benefit from the CO_2 fertilization effect. Potentially limiting factors include changes in insect life cycle and an increase in the survival, growth and spread of pathogens.

Table 5 Trend in world crop productivity due to climate change

Crop	Change in crop yield (1967-97) FAO, 1998 report	Crop yield model:% change in yield with 2* CO_2 climate change plus direct effects of CO_2
C_3: Barley	+35.8	–30 (Uruguay)
Wheat	+96.1	+11
Rice	+74.5	–2
Soyabeans	+56.2	+16
Potatoes	+20.3	+20 (W. Europe)
C_4: Maize	+70.3	–15
Sorghum	+28.2	0 (USA)
Millet	+45.0	–66 (Senegal)
Sugarcane	+19.6	+9 (Australia / Japan)

c) Water Balance : Although change in sea-level have received much publicity problems of water availability are likely to be more serious and perhaps more expensive to solve. In future, warmer word will have water crisis in some part while in other region it will be wetter then today.

There is uncertainty regarding regional for cats of future precipitation age warming of the globe makes it difficult to predict so also pattern of agriculture change or Ae effects on ecosystem at large are fairly unpredictable.

d) Human health : In recent years, there were newer reports of major tropical diseases spread with changing climate. More people will likely to be affected on the globe by tropical diseases, in coming decades as global will become warmer in future. The detailed prediction is given in table 5.

Table 6 major Tropical diseases likely

Diseases	Vector	Population at risk	Prevalence of infection	Present distribution	Likelihood of altered distribution with warming
Malaria	Mosquito	2,100 Million	270 million	(Sub) tropical	+++
Schistosomiasis	Water Snail	600 Million	200 million	(Sub) tropical	+
Filariasis	Mosquito	900 Million	90 million	(Sub) tropical	+
Onchocerciasis (river blindness)	Black Fly	90 Million	15 million	Africa / Latin America	+
African trypanosomiasis (sleeping sickness)	Tsetse Fly	50 Million	25,000 new cases/ year	Tropical Africa	+
Dengue Fever	Mosquito	Estimates Unavailable	—	Tropics	+
Yellow Fever	Mosquito	Estimates Unavailable	—	Tropical South America & Africa	+

+++ Higher, + Lower

On the whole, a generalised scheme for global environmental treat that arises out of greenhouse gas emission is depicted in figure 6.

Control and Remedial Measures of Greenhouse Effect

The greenhouse effect can be controlled by taking the following important measures.

a) Reducing the consumption of fossil fuel such as coal and petroleum. This can be achieved by depending more on non- conventional renewable sources of energy such as wind, solar, nuclear and bio-gas energies.

b) Disposing of the greenhouse gases as they are formed elsewhere than in atmosphere.

c) Recovering greenhouse present already in the atmosphere and deposing off them elsewhere.

d) Learn to adapt and accept the changing climate.

e) International co-operation foa attempting the reduction of greenhouse gases.

References :

1. Kumar Pranav & Mina Usha, fundamentals of Ecology and Environmental, Second Edition, 2018. Pathfinder Publication, New Delhi, India.
2. Santra, S.C., Environmental Science 2nd Edition 2005.
3. Sharma B.K., Environmental Chemistry, 13th Edition, 2012, Krishna's Educational Publishers, Meerut, India.
4. Climate Change : How do we know?, Vostok ice core data/ J.R.Petit et al ; NOAA Mauna Loa CO_2 record.
5. Environmental protection agency (2016), Climate Change Indicators in the United States.
6. Intergovernmental Panel on Climate Change(2007): Synthesis Report, Geneva.
7. Intergovernmental Panel on Climate Change (2014), Fifth Assessment Report (AR5).
8. Global Warming, School of environmental sciences, climate research unit, university of East Anglia, Norwich, United Kingdom, 1999.
9. Intergovernmental Panel on Climate Change: World Meterological organization; United Nations Environment Programme, 2012 Encyclopedia Britannica, Inc.
10. Trends in Atmospheric Carbon Dioxide, Mauna Loa Observatory, NOAA.
11. World Resources Institute (2014), Climate Change Indicators: Global Greenhouse Gas Emissions.
12. NASA Goddard space flight Center (2017), Global Mean Sea Level.
13. National Oceanic and Atmospheric Administration (2017), Climate Change Global Sea Level.

After Independence Escalation of Atrocities Against Women in Uttar Pradesh

Priyanka Anand*

Gender is a common term where as gender discrimination is ment only for women, because females are the only victims of gender discrimination. Gender discrimination not only biologically determined but it is determined by socially.[1] The gender difference and bias, perceived as existed globally, lace women all over the world at various disadvantageous position. The most painful discrimination of women is the physical and psychological violences perpetuated on them. Violence against women is a global problem. Historically, men have dominated women and discrimination against women. Women's physical structure and the performance of maternal function places her at a disadvantage for subsistence is obvious. History disclose the fact that women has always been dependent upon man. He established his control at the outset by superior physical strength and this control in varies forms, while diminishing, has continued to the present.

The global campaign for elimination of violence against women, in the recent years indicates the enormity as well as the seriousness of the atrocities committed against women that are being witnessed the world over. Development along with its progressive changes in personal life style, living standards varied economic growth caused by urbanisation and changes in social ethos contributes to a violent attitude and tendencies towards women which has resulted in an increase in crimes against women. Such incidents are a matter of serious concern and its containment is a necessity so that the Women of India attain their rightful share and live in dignity, freedom, peace and free from crimes and aspersions. The battle against crime against women, has to be waged by the various sections of society through campaigns and various programmes with social support along with legal protection, safeguards and reforms in the Criminal Justice system.[2]

After independence the drafting of the constitution of this country enshrining the principal of equality, liberty and social-justice. The framers of the constitution were aware of the sociology of the problem of emancipation of the female sex. They realised

*Guest faculty, Department of AIHCA, Gurukul Kangari University, Kanya Gurukul Campus, Dehradun

that equality was important for the development of nation. It was evident that in order to eliminate inequality and to provide opportunities for the exercise of human rights it was necessary to promote education and economic interests of women. It became the objective of the state to protect women from exploitation and provide social justice. All these ideals were enshrined in the preamble of the constitution. Under the leadership of Jawaharlal Nehru, it was directed to take a path of social change by guaranteeing formal equality, economic justice, equality human rights and making the state awelfare state.[3] To attain these objective, the constitution guarantees certain fundamental rights and freedom, such as freedom of speech and express,protection of life and personal liberty. Indian women are beneficiaries of these rights in the same manner as men. And also the constitutional articles 14, 15, 16, 33 ensure equality and prohibit discrimination on the bais, interalia, of sex, as a example article 15 forbids discrimination on cast, religion, sex, race and place of birth, whereas.Article 16 ensure equal opportunity of employment.

To uphold the Constitutional mandate, the government of India has enacted various legislative measures intended to ensure equal rights, to counter social discrimination and various forms of violence and atrocities and to provide support services especially to working women. Government enacted some acts which have special provisions to safeguard women and their interests are The Employees State Insurance Act, 1948, The Plantation Labour Act, 1951, The Family Courts Act, 1954, The Special Marriage Act, 1954, The Hindu Marriage Act, 1955, The Hindu Succession Act, 1956, Immoral Traffic (Prevention) Act, 1956, The Maternity Benefit Act, 1961 (Amended in 1995), Dowry Prohibition Act, 1961, The Medical Termination of Pregnancy Act, 1971, The Contract Labour (Regulation and Abolition) Act, 1976, The Equal Remuneration Act, 1976, The Child Marriage Restraint (Amendment) Act, 1979, The Criminal Law (Amendment) Act, 1983, The Factories (Amendment) Act, 1986, Indecent Representation of Women (Prohibition) Act, 1986, Commission of Sati (Prevention) Act, 1987,etc.[4]

Despite all these safeguards, the women in our country specially in Uttar Pradesh which is one of the mostly backward state continue to suffer, as violent crime (Rape, Kidnapping & Abduction for different purposes), or as domestic violence (Homicide for Dowry, Dowry Deaths or their attempts, Torture both mental and physical) and Molestation, Sexual Harassment, Importation of girls whose effected on women's health, mental health, economic productivity, self-esteem, and the welfare and nutrition of her child, are often underestimated or ignored.

Rape: According to the national crime record, the rape statistics during 1980 to 2001 in Uttar Pradesh is grim and shocking.

Victim of Rape In India And Uttar Pradesh (Also Grand City OfUttar Pradesh) During 1980 To 2001[5]

YEAR	INDIA	UTTAR PRADESH	CITY OF U.P
1980	5023	811	Kanpur-37
1981	5409	942	Kanpur-45, Lucknow -18
1982	N.A	792	N.A
1983	6019	853	Kanpur-39, Lucknow-10
1984	6740	1106	Kanpur-51, Lucknow-29
1985	7289	1163	Kanpur-36, Lucknow-29
1986	N.A	1292	N.A
1987	8559	1392	Kanpur-26, Lucknow-19
1988	9040	1385	Kanpur-35, Lucknow-30
1989	9752	1468	Kanpur-18, Lucknow-30
1990	10068	1541	Kanpur-28, Lucknow-36
1991	10410	1417	Kanpur-23, Lucknow-28
1992	1112	1757	Kanpur-38, Lucknow-46
1993	12218	1787	Kanpur-31, Lucknow-40
1994	13208	2078	Kanpur-31, Lucknow-33
1995	13574	1808	Kanpur-44, Lucknow-29
1996	14846	1854	Kanpur-38, Lucknow-17
1997	15330	1457	Kanpur-37, Lucknow-23
1998	15031	1605	Kanpur-41, Lucknow-23
1999	15468	1593	Kanpur-34, Lucknow-28
2000	15151	1695	Kanpur-72, Lucknow-54
2001	16075	1958	Kanpur-78, Lucknow-68

16075 rape case are reported during the year 2001. Uttar Pradesh alone reported 12.18% of total rape cases in the country. This statistics are very shocking. According to the NCRB, which reflect the social degeneration, almost 75% of rapists are married men.[6] 86% women do not safe in cities.[7] During 1981 to 2001 the heights rape cases reported from Kanpur and Lucknow in Uttar Pradesh, this is very shocking because

these cities are the developed grand city of Uttar Pradesh. And three out of every ten rapists are either friend or relatives, according NCRB in 2001 the total number of rape cases in Uttar Pradesh was 1958 and the offenders were known to victims in as many as 1747 (89.22). This is very grim and shameful picture of our traditional Indian society.[8]

More disturbing than the above statistic is the grim scence of unreported cases, on atrocities against women. It was found that for every reported rape case, as many as 68 rapes went unreported.[9]

Dowry Deaths or their attempts : A majority of violence against women occurs within the home. There has been an increase in reports of domestic forture (cruelty by the husband or his family). Such incidents seriously undermine the women's status within household and her decision –making ability, in addition to seriously endangering her physical safety and mental health. Dowry deaths and attempts (wherein a women is killed due to insufficient gift/money given by her parents at time of wedding) are illegal in India but are known to still widely occur. Nearly so many women (6851 cases in india and 2211 cases in Uttar Pradesh during 2001)[10] have been known to suffer dowry deathes by burns or bodily injury.

Dowry Death In India & Uttar Pradesh[11]

YEAR	INDIA	UTTAR PRADESH
1991	5157	1597
1992	4962	1783
1993	5157	1597
1994	4962	1783
1995	5817	1952
1996	4935	1977
1997	6006	1786
1998	6917	2229
1999	6699	2088
2000	6995	N.A
2001	6851	2211

In the decade 1991-2001 the dowry deaths in Uttar Pradesh increase by 33.44%. And in 2001 32% Dowry Death cases (2,211 out of 6,851) from Uttar Pradesh was the highest number of all over the country. The actual number of dowry deaths is thought

to be larger given that many deaths occur due to reasons of insufficient dowry but are not reported as such.

Sexual Harassment : Now as women try to fight economic disparity, with man. A new form of crime emerges – sexul harassment at the workplace. This offence is the most glaring example of human rights violation, gender inequality and injustice. Each incident of sexual harassment at the work place also result in the violation of fundamental rights under the constitution ,namely, right to gender equality and right to life and liberty.Sexual harassment of a female at the workplace is incompatible with the dignity and honour of women.

Sexual Harassment Cases In India [12]

YEAR	NO. OF SEXUL HARASSMENT CASES IN INDIA
1996	182
1997	5796
1998	8054
1999	8858
2000	11024
2001	9746

In 2001 The number of these cases reported decline of 11.6 per cent over the previous year (11,024). Uttar Pradesh reported 26.4 per cent of this cases (2,575).This is indicate that nearly one third (26.4%) (2575 out of 9746) of these crimes cases reported from Uttar Pradesh.

Female Foeticide: India has always possessed the hateful legacy of killing the female child.Earlier,because scientific techniques were not advanced and it was impossibleto determine the sex of the child,the killing of the female child took the form of adding opium to the infants milkor by suffocating the infant under the mother after birth. Now it is given a sophisticated aura of education by the perverse use of scientific technology. The truth is disheartening but nonetheless the truth, that the technique used to diagnose the condition and sex of the foetus, medically termed as amniocentesis, is now primarily condition and sex determination and the consequent extermination of a female foetus.[13]The killing of female foetuses has led to a precarious situation where the male-female ratio of the population is being affected. Low sex ratio is a main result of this. In the decade 1980-2001 the total population of the Uttar Pradesh increased by 33.23 per cent(in India 26.7 %). On the other hand ,present of female which was 46.94 in 1981 (in India 48.3) declined to 46.77 in 1991(in India 48.2). And in 2001 percentage

population of female was 5.34 less then male population(in India 3.46).Due to the fall in the sex- ratio of Uttar Pradesh from 885 to 879 (in India 934 to 927) during 1980 to 1991. And in 2001 the number of female is 898 per 1000 male.(in India 933). A graph indicating fall in the sex- ratio for the last 5 decades (1951-2001) is given below in India and Uttar Pradesh.[14]

Sex Ratio Of Women In India & Uttar Pradesh [15]

YEAR	INDIA	UTTAR PRADESH
1951	946	910
1961	941	909
1971	930	879
1981	934	885
1991	927	879
2001	933	898

This graph is indicate that the position of women in Uttar Pradesh is not so good and not only Uttar Pradesh , also India has always prossessed the hateful legacy of killing the female child. The blind killing of female foetuses has led to a precarious situation where the male-female ratio of the population is being affected.

Kidnapping & Abduction Cases In India & Uttar Pradesh[16]

YEAR	INDIA	UTTAR PRADESH
1991	12300	2330
1992	12077	2218
1993	12300	2330
1994	12077	2218
1995	11837	2403
1996	12998	2860
1997	15617	2460
1998	16381	2882
1999	15962	2746
2000	15023	N.A
2001	14645	2879

According to this graph Incidence of these cases reported a decline of 2.5 per cent as compared to the previous year (15,023) in 2001. On the other hand Uttar Pradesh (2,879) contributed 19.7 per cent total cases at the national level and this is a heights number of these case all over the country.

Molestation, Importation Of Girls,Cruelty By Husband And Relatives

According to NCRB in the year of 200121.69% increase in molestation of women's cases (2575 compared to 2116 in 1991) and80% increase in cruelty by husband and relative crime cases (7365 compared to 1415 in1991) in Uttar Pradesh.[17]

Incidences & Rank Of Total Crimes Committed Against Women In India And Uttar Pradesh During 1981 To 2001 [18]

YEAR	INDIA	UTTAR PRADESH	RANK OF U.P
1991	74093	11438	N.A
1992	79037	12873	16
1993	83954	14048	12
1994	98948	15914	13
1995	106471	11976	20
1996	115723	13614	20
1997	121265	11849	3
1998	131338	17497	1
1999	135771	16912	2
2000	141373	18920	1
2001	143795	20227	1

On the facts and figures pertaining to crimes against women in UP, the findings were dismal ,after 1996 the graph of crime against women in Uttar Pradesh was inceres very fastly . According to the 2000 report of the National Crimes Research Bureau, the total number of reported crimes against women was 141373, with 18920 (13.10%) being in Uttar Pradesh. This was the highest number of crimes all over the country. In 2001 out of a total of crimes against women143795, 20227 were in UP (14.1%), again the highest in the country.

While these are official recorded figures, it is also important to remember that there may be many more crimes which go unreported, due to a number offactors such as fear of family members, social stigma, and embarrassment of registering a case with

the police. Add to this the long and slow process of getting justice, and it is no wonder that women hesitate and think many times before lodging a formal complaint.

The high rates of crime against women in the state, combined with the staggeringly low number of literacy rate, high drop out rate of girls from education,(*Illiteracy is one of the main reason for crime against women because illiterate women are not aware for her rights. And they has always been dependent upon man for everything.India's especially Uttar Pradesh record in education however, is dismal at best. After 51 year of independence,literacy rates are shamefully low"42.28%".*), **lack of awareness of their rights,traditional oppression and customs,poverty,economic disparity**(*according to censes of Uttar Pradesh 2001 the percentage of working women is only 16.53% out of the total population of women*)**,and low number of political representation of women in legislative bodies(*6.39%*)etc.** are the prime factors*increased to this escalation of violence against women in the state of Uttar Pradesh.*

REFERENCE

1. Rai Rahul (2009) *"Empowerment of Women in India:Myth & Reality"*, New Delhi, p.101
2. *National Crime Record Bureau (1999)*, Government of India, p. 201
3. Rao Mamta (2008) *"Low Relating to Women & Children"*, New Delhi, p.23
4. Singh Nishant (2008) *"MahilaVidhi"* New Delhi
5. *National Crime Record Bureau (1981 to 2001), Op.cit*
6. Reported In *India Today*, September 9, 2002.
7. Survey By *C-Voter*.A Private Research Group In Delhi.
8. *National Crime Record Bureau (2001) Op.cit.*p. 217
9. Institute of Development And Communication (IDC) *On Atrocities Against Women Reported In India Today*, September, 9, 2002
10. *National Crime Record Bureau (2001) Op.cit.*p
11. *National Crime Record Bureau (1991 to 2001) op.cit*, p.239, 260, 259, 223, 232, 290, 170, 164, 208, 217
12. *National Crime Record Bureau (2001) op. cit*, p.*210*
13. RaoMamta,*op.cit, p.141*
14. *National Crime Record Bureau (2002) op, cit*, p. 229, *Censes Of India*, 1951 To 2001
15. *ibid*
16. *National Crime Record Bureau (1991 to 2001) op.cit*
17. *National Crime Record Bureau (1991 to 2001) op.cit.p. 239, 217*
18. *National Crime Record Bureau (1991 to 2001) op.cit.* p. 239, 237, 257, 221, 231, 289, 169, 163, 207, 207, 216.

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में सैन्य तकनीकि एवं वैज्ञानिकता की पराकाष्ठा

रमाकान्त दुबे*

प्राचीन भारतीय धर्म ग्रंथों, वेदशास्त्रों और पुराणों में विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन मिलता है। वर्तमान समय की यह विडम्बना है कि पाश्चात्य विचारधारा और तकनीकि विकास की चकाचौध से प्रभावित लोग इन अस्त्र-शस्त्रों की क्षमता और सटीकता को मात्र एक कपोल कल्पना मानते हैं तथा इसकी विश्वसनीयता को एक सिरे से खारिज कर देते हैं। ऐसे लोगों का यही मानना है कि विज्ञान केवल पाश्चात्य देशों से उत्पन्न है तथा पाश्चात्य वैज्ञानिकों के विभिन्न अन्वेषणों तथा अविष्कारों के पूर्व वैज्ञानिकता कुछ थी ही नहीं। जबकि हम अपने अतीत के विज्ञान के विकास के विषय में देखें तो आज के आधुनिक और वैज्ञानिक कहे जाने वाले युग में भी हम विज्ञान की उस पराकाष्ठा को समझने और उस तक पहुचने में पुर्णतः असफल रहे हैं जिनका वर्णन भारतीय प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। हमारे प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों में वैज्ञानिक पराकाष्ठा की झलक अनेक सन्दर्भो में देखे जा सकते हैं और उनमे से कुछ बिंदु निम्नांकित सन्दर्भो में समझे जा सकते हैं।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में वर्णित अस्त्र-शस्त्रों में ब्रह्मास्त्र एक सुपरिचित अस्त्र माना जाता है और इसे ब्रह्मा जी का अस्त्र मानते हैं। ब्रह्मास्त्र के विषय में एक प्रमाण मिलता है कि इसका प्रभाव व्यापक विनाश वाला, सूखा की स्थिति उत्पन्न करने वाला, क्षण भर में हजारों लोगों को जलाकर भष्म कर देने वाला, स्त्री एवं पुरुषों को नपुंसक कर देने वाला, लोगों को अपंग तथा अपाहिज कर देने वाला, नाखूनों, बालों एवं शरीर के विभिन्न अंगों को विकृत कर देने वाला था। आधुनिक युग के वैज्ञानिक नाभिकीय हथियारों के विकास के पूर्व तक भले ही इसे काल्पनिक मानते हों लेकिन परमाणु हथियारों की उत्पत्ति और उसके विनाशक प्रभाव के बाद ब्रह्मास्त्र के प्रभाव की प्रमाणिकता पर प्रश्न नहीं खड़े किये जा सकते क्योंकि ब्रह्मास्त्र के जितने भी प्रभाव बताये गए हैं उनका ज्वलंत उदाहरण हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराए गए परमाणु हथियारों के सन्दर्भ में देखे जा सकते हैं, अर्थात परमाणु हथियारों के प्रयोग के पश्चात् जो भी अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन परिणाम देखने

* असिस्टेंट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातिजिक अध्ययन विभाग, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसर, गोरखपुर

को मिले हैं उन सभी का वर्णन ब्रह्मास्त्र के प्रभाव में वर्णित है। इसके परिपेक्ष्य में यह भी कहा जा सकता है कि भारत में परमाणु हथियारों का विकास ब्रह्मास्त्र के रूप में कई हजार वर्ष पूर्व में हो चुका था।[1]

प्राचीन साहित्यों में ब्रह्मास्त्र से भी अधिक शक्तिशाली अनेक शस्त्रों का वर्णन है जो आधुनिक परमाणु हथियारों से कई गुना शक्तिशाली और उत्कृष्ठता की ओर इंगित करते हैं। प्राचीन शास्त्रों में ब्रह्माण्ड अस्त्र का वर्णन मिलता है जो ब्रह्मास्त्र से भी चार गुना अधिक शक्तिशाली था। इसका अर्थ इस रूप में समझा जा सकता है कि इसके प्रयोग से किसी भी देश को पूर्णतः नष्ट किया जा सकता था। क्योंकि किसी भी राष्ट्र के विरुद्ध यदि चार परमाणु हथियारों या किसी परमाणु हाथियार से चार गुना अधिक शक्तिशाली हथियार का प्रयोग कर दिया जाए तो एक सामान्य देश जिसकी भौगोलिक सीमा बहुत बड़ी न हो, उसे पूर्ण रूप से नष्ट किया जा सकता है। इसी प्रकार ब्रह्मशिरास्त्र का भी वर्णन मिलता है जो ब्रह्माण्ड अस्त्र से भी चार गुना अधिक शक्तिशाली था। इस शस्त्र की परिकल्पना ऐसे हथियार के रूप में की जा सकती है जो पूर्ण रूप से किसी महाद्वीप को नष्ट करने में सक्षम हो। इन सभी शस्त्रों से भी अधिक शक्तिशाली शस्त्र पशुपतास्त्र था जो महादेव शिव का अस्त्र था[2] और यह ब्रह्मशिरास्त्र से भी चार गुना अधिक शक्तिशाली था। इसकी विनाशक क्षमता इस रूप में आंकी जा सकती है कि इसके प्रयोग से सम्पूर्ण पृथ्वी को एक साथ नष्ट किया जा सकता था। यह अस्त्र चूँकि शिव जी का अस्त्र था, शायद इसीलिए महादेव शिव को विश्व के संहारकर्ता के रूप में भी जाना गया हो और इस अस्त्र के प्रयोग से किसी के भी बच निकलने की सम्भावना बिलकुल नही थी। इसे शिव जी के पिनाका धनुष से प्रक्षेपित किया जाता था जिसका अर्थ यह है कि यह मिसाइल तकनीकि पर आधारित सम्पूर्ण विनाश का हथियार था। ऐसा वर्णन आता है कि महादेव शिव ने पशुपतास्त्र से त्रिपुर को नष्ट किया था जिसके कारण उन्हें त्रिपुरारी भी कहा जाता है। त्रिपुर का अर्थ तीनों लोकों से है। अर्थात यह एक साथ तीनों लोकों को निशाना बना सकता था। इस प्रकार की प्रणाली हमें आधुनिक युग में मल्टी टारगेट मिसाइल सिस्टम के रूप में दिखाई देती है जो एक साथ कई लक्ष्यों को निशाना बना सकती है। त्रिपुर का सन्दर्भ इस दृष्टि से भी देखा जा सकता है कि यह पृथ्वी के साथ-साथ अन्य ग्रहों को भी निशाना बना सकती थी। कहा जाता है कि इसके प्रहार से ब्रह्मा और विष्णु भी नहीं बच सकते थे।

दुनिया के अनेकों देशो ने विभिन्न प्रकार के नाभिकीय हथियारों का निर्माण एवं भण्डारण कर रखा है। और संख्या के दृष्टिकोण से ये दुनिया के किसी भी देश या क्षेत्र को पूर्ण रूप से नष्ट करने में सक्षम हो सकते हैं परन्तु अभी तक शायद किसी भी राष्ट्र ने ऐसे हथियार विकसित नहीं कर पाए हैं जो एक ही प्रहार से किसी राष्ट्र, क्षेत्र, महाद्वीप, या सम्पूर्ण पृथ्वी को नष्ट करने में सक्षम हो। इस परिपेक्ष्य में आधुनिक विज्ञान हमारे प्राचीन आयुध तकनीकों से अभी बहुत पीछे है तथा इसे

वहां तक पहुचने में अभी बहुत लम्बी दूरी तय करनी होगी। इसका एक अन्य पहलु यह भी है कि इस प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की उपलब्धता के बावजूद इसके दुरूपयोग का कहीं भी जिक्र नहीं मिलता है। ऐसे में यह प्रश्न बनता है कि वर्तमान समय के विनाशक हथियारों के दुरूपयोग या दुर्घटना को रोकने की गारंटी दी जा सकती है क्या?

प्राचीन शस्त्रों में इन्द्रास्त्र नामक शस्त्र का भी वर्णन मिलता है जो इंद्र देव की वाणी से निर्देशित होता था और बिना उनके निर्देश के इसका प्रयोग अन्य कोई नहीं कर सकता था।[3] इसके वर्णन में मिलता है कि इसके पिछले भाग से आग निकलता था। आगे का भाग चमकीला था। यह तीर नहीं बल्कि बरछे के समान था और प्रक्षेपित करने पर यह घूमता हुआ अपने लक्ष्य तक जाता था। इसका एक अन्य वर्णन यह भी है कि यह घटोत्कच को आकाश में ही मार गिराया था। इस इन्द्रास्त्र को हम आधुनिक हथियारों के नजरिये से देखें तो यह आधुनिक मिसाइल का प्रारूप दिखाई देता है। इसे हम ध्वनि नियंत्रित, स्वचालित, स्थल से हवा में मार करने वाली मिसाइल के रूप में देख सकते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो हम मिसाइलों को आधुनिक युग की देन मानते हैं, इसका उत्कृष्ट विकास प्राचीन भारत में हो चुका था।

भारत के प्राचीन अस्त्र शस्त्रों के विषय में यदि हम आगे बढ़े तो हमे नारायणास्त्र के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इसका वर्णन हमे इस रूप में मिलता है कि यह सेना के ऊपर मडराता रहता था और युद्ध की इच्छा रखने वाले सैनिकों पर यह लोहे का गोला बरसाता था। आधुनिक सन्दर्भ में इसे इस रूप में देख सकते हैं कि यह सेंसर युक्त ड्रोन था जो सैनिकों के हाव भाव एवं मनोवृत्ति को जानने में पूर्णतया सक्षम था तथा युद्ध की इच्छा न रखने वाले को किसी भी प्रकार से हानि नहीं पहुँचाता था। नारायणास्त्र को दूर से संचालित किया जा सकता था अर्थात यह रिमोट से संचालित होने वाला ड्रोन था। इसकी एक अन्य विशेषता यह भी थी कि सेना के आत्म समर्पण के बाद यह पुन: अपने स्थान पर वापस चला जाता था और इसका प्रयोग केवल धर्म युद्ध में किया जा सकता था। आधुनिक युग में इसे यह कह सकते हैं कि यह सर्जिकल स्ट्राइक करने में पूर्णत: सक्षम एवं निपुण अस्त्र था जिसका उद्देश्य मात्र सशस्त्र सैनिकों को ही लक्ष्य बनाने का था और साधारण जनता को नुकसान पहुँचाना इसका उद्देश्य नहीं था। इसका प्रयोग युद्ध को हतोत्साहित करने के लिए किया जाता था। इससे यह प्रमाणित होता है कि ड्रोन निर्माण की उत्कृष्ट तकनीकि प्राचीन भारत में पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी और इसकी तकनीकि उत्कृष्ठता को हम अभी तक प्राप्त नहीं कर सके हैं।

वैदिक साहित्यों के समकक्ष एक साहित्य धनुर्वेद भी है जिसमे विभिन्न प्रकार के धनुषों, उनकी क्षमताओं तथा निर्माण तकनीकि का वर्णन मिलता है. धनुर्वेद को यदि आधुनिक परिपेक्ष्य में देखें तो उस युग के धनुषों को हम विभिन्न प्रकार के मिसाइल के लॉन्चिंग पैड के रूप में देख सकते

हैं। धनुर्वेद में धनुषों के विभिन्न माप, उनके प्रकार, उनकी गुणवत्ता, उनकी क्षमताएं आदि विभिन्न रूपों में वर्णित हैं। धनुर्वेद के अध्ययन से ऐसा लगता है कि वैदिक कालीन धनुष आधुनिक कम्पास प्रणाली पर पूर्ण रूप से विकसित किये गए थे और आँखों से न दिखने वाले लक्ष्यों को भी आसानी से निशाना बनाया जा सकता था। धनुर्वेद में वर्णित धनुषों की यह विशेषता थी कि अलग-अलग धनुषों से अलग-अलग प्रकार के बाण छोड़े जाते थे।[4] रामचरित मानस में यह उल्लेख आता है कि लक्ष्मण को चेतन अवस्था में लाने के लिए जब हनुमान जी संजीवनी बूटी को हिमालय पर्वत से लेकर अयोध्या से होते हुए लंका को जा रहे थे तो भरत ने उन्हें कोई राक्षस समझकर बाण से प्रहार करके नीचे गिरा दिया। परन्तु जब भरत को पता चला कि हनुमान जी लक्ष्मण जी के लिए संजीवनी बूटी लेकर जा रहे थे तो उन्होंने हनुमान जी से कहा कि आप बाण पर बैठ जाइये और मैं शीघ्र आपको लंका पहुँचा दूँगा। यह घटना यह सिद्ध करती है कि वह कोई साधारण धनुष बाण न रहा होगा बल्कि विशेष रॉकेट प्रणाली रही होगी।

हमारे वैदिक साहित्य में सुदर्शन चक्र का वर्णन तो नहीं मिलता है परंतु अन्य हिन्दू धर्म ग्रंथों में इसकी पर्याप्त चर्चा है और इसे विष्णु भगवान का अस्त्र माना जाता है।[5] इस अस्त्र की विशेषता यह मिलती है कि यह अपने लक्ष्य पर प्रहार करके पुनः वापस चला आता था। यह ऐसे लक्ष्यों को भी निशाना बना सकता था जो दृष्टिगत न हों। इसके पास लक्ष्य को ढूंढ कर उसका पीछा करके उसको नष्ट करने की क्षमता थी। वर्तमान समय में ऐसी अनेकों मिसाइलें तथा सैन्य उपकरण विकसित किये जा चुके हैं जो दृष्टिगत न होने वाले लक्ष्यों को ढूंढकर तथा उनका पीछा करते हुए उन्हें नष्ट करने की क्षमता रखते हैं लेकिन अभी तक कोई ऐसा हथियार विकसित नहीं हो पाया है जो लक्ष्य को भेदने और नष्ट करने के पश्चात् वह पुनः वापस आ सके और उसका पुनः उपयोग किया जा सके। इस दृष्टिकोण से सुदर्शन चक्र की तकनीकि आधुनिक हथियारों की तुलना में बहुत ही विकसित एवं उच्च कोटि की थी। भगवान विष्णु के तलवार नन्दिकी का भी वर्णन मिलता है जिसकी यह विशेषता थी कि यह जिस पर भी प्रहार करता था उसे लोहे का बना देता था। यानी उसके पुरे शरीर का रासायनिक परिवर्तन हो जाता था। वर्तमान समय में इस अवधारणा पर आधारित किसी भी हथियार का निर्माण नहीं हो सका है।[6]

हमारे धर्म शास्त्रों में वरुणास्त्र और आग्नेयास्त्र का भी वर्णन आता है। वरुणास्त्र का प्रयोग शत्रु सेना पर वर्षा करने के लिए किया जाता था जिससे कि वह युद्ध न कर सके। आग्नेयास्त्र का प्रयोग शत्रु पक्ष पर अग्नि बरसाने के लिए किया जाता था। इससे यह पता चलता है कि आधुनिक समय में रासायनिक हथियारों के प्रयोग से अपने शत्रु की पर्यावरणीय एवं वातावरणीय संरचना को बदलने की जो संकल्पना की जाती है उसकी विधा हमारे प्राचीन काल में ही विकसित हो चुकी थी।

मानवास्त्र मनु का अस्त्र था जो लक्ष्य को शत्रु की सीमा में ही नष्ट कर देता था। इसका तात्पर्य यह है कि यह कोई ऐसी सेंसर प्रणाली पर आधारित मिसाइल रही होगी जिसे एंटी बैलिस्टिक मिसाइल के रूप में प्रयोग किया जाता होगा। इसी तरह भौमास्त्र का भी वर्णन मिलता है जिसे पृथ्वी के अंदर सुरंग बनाने के लिए प्रयोग किया जाता था। अर्थात यह पृथ्वी में गहराई तक भेदन करने वाली कोई मिसाइल प्रणाली रही होगी। भार्ग्वास्त्र परशुराम का अस्त्र था और इस धनुष से एक साथ कई बाण छोड़े जा सकते थे।

इसी प्रकार कुछ अन्य अस्त्र-शस्त्रों का नाम और उनका विवरण मिलता है। इन अस्त्रों में एक है वायब्यास्त्र। यह वायु देवता का अस्त्र था और इसका प्रयोग शत्रु की सेना को वायु के झोकों से उड़ा देने के लिए किया जाता था। इसी प्रकार सूर्यास्त्र का प्रयोग शत्रु के क्षेत्र में नदी, नालों और तालाबों को सुखाने के लिए प्रयोग किया जाता था। वज्र से बिजली कि कड़क पैदा की जाती थी जो इलेक्ट्रॉनिक युद्ध कला का एक महत्वपूर्ण उदाहरण हो सकता है। मोहनी अस्त्र के प्रयोग से शत्रु की सेना भाव विभोर होकर हँसती रहती थी जिसे हम लाफिंग गैस के रूप में देख सकते हैं। त्वात्सर अस्त्र के प्रयोग से शत्रु सैनिकों में भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी जिससे वे अपने और शत्रु के सैनिकों में भेद नहीं कर पाते थे। इसे हम ऐसे रासायनिक हथियार के रूप में देख सकते हैं जो व्यक्ति की स्मरण क्षमता को ही समाप्त कर देता हो। सम्मोहनास्त्र मूर्छित कर देने वाला अस्त्र था और इसके काट के रूप में प्रज्ञास्त्र का प्रयोग किया जाता था जो व्यक्ति को मूर्छित अवस्था से चेतन अवस्था में लाने का कार्य करता था। पर्वतास्त्र शत्रु सेना पर पत्थरों की वर्षा करने के लिए प्रयोग किया जाता था। शब्दभेदी बाणों का वर्णन बहुतायत में मिलता है जो शायद ध्वनि आधारित गाइडेड मिसाइल रही होगी। इस दृष्टि से इसका प्रयोग दूर के लक्ष्यों को भेदने के लिए किया जाता होगा जो गतिशील लक्ष्यों को भी आसानी से भेद सकता था।

शास्त्रों में अंतर्ध्यानास्त्र का भी वर्णन मिलता है जो कुबेर का अस्त्र था और इसके प्रयोग से व्यक्ति विलुप्त हो जाता था। इसका तात्पर्य यह है कि उस काल में किसी भी वस्तु को विलुप्त करने की तकनीकि विकसित हो चुकी थी जो आज भी जिज्ञासा का एक केंद्र बिंदु बना हुआ है। इंद्र का एक अस्त्र विशेषण अस्त्र भी था जो किसी भी जल प्रणाली को सुखाने के लिए प्रयोग किया जाता था।

उपरोक्त सन्दर्भों में यह कहा जा सकता है कि भारत के प्राचीन काल में सैन्य तकनीकि एवं विज्ञान आज की तुलना में बहुत ही आगे और उच्च कोटि का था। ज्ञान विज्ञान की उस पराकाष्ठा को कब तक प्राप्त कर लिया जायेगा या उस तक पहुंचा जायेगा या नहीं इसका अनुमान लगा पाना असंभव है। आधुनिकता के रंग और विचारधारा में डूबे हुए लोग इसे भले ही काल्पनिकता की पराकाष्ठा पर तौलने का प्रयास कर रहे हों लेकिन उन्हें इस बात को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि

यदि यह मात्र कल्पनाशीलता ही थी तो वर्तमान तकनीकि के विकास के सन्दर्भ में यह सही कैसे सिद्ध हो रही है। दूसरी बात यह है कि कोई भी परिकल्पना तात्कालिक परिस्थितियों और सन्दर्भो को जोड़कर ही की जाती हैं। इसका एक पक्ष यह भी है कि कोई एक घटना या सन्दर्भ कल्पना पर आधारित हो तो उसे अतिरेक के रूप में देखा जा सकता है, परन्तु यदि कई सारे सन्दर्भ और विभिन्न काल खण्डों में वर्णित सन्दर्भों में अगर कहीं एक रूपता मिलती है तो इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वे सभी सन्दर्भ तत्कालीन समय एवं परिस्थितियों में उपलब्ध थे। इससे इस बात को पुरजोर बल मिलता है कि वर्तमान तकनीकि विकास की तुलना में भारत का ज्ञान विज्ञान बहुत ही आगे था जहाँ तक हम अभी तक नहीं पहुँच सके हैं। इसलिए यदि भारत के पुरातन साहित्यों को पुन: एवं आधुनिक विज्ञान की मदद लेकर समझने और उसपर कार्य करने का प्रयास किया जाए तो विज्ञान एवं तकनीकि को एक नई दिशा और नई ऊंचाई प्रदान की जा सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. https://www-speakingtree-in/allslides/1a&416777/209198
2. Sharma, Arvind; Khanna, Madhu, Asian Perspectives on the World's Religions after September 11, ASCCLIO, ISBN 978031378973.
3. https://en-wikipedia-org/wiki/Astra_(weapon)
4. http://www-bhartiyadharohar-com/सैन्य-विज्ञान-था-धनुर्वेद
5. "The unknown and untold story of Krishna's Sudarshan Chakra"- www-speakingtree-in.
6. https://en-wikipedia-org/wiki/Astra_(weapon)#cit
7. Ibid.
8. Ibid.

पश्चिम एशिया में शैव धर्म का तादात्म्य

शत्रुजीत सिंह

शिव से सम्बन्धित धर्म को 'शैव धर्म' कहा जाता है तथा इसके धर्मावलम्बियों को 'शैव'। शैव मतावलम्बियों के प्रधान इष्टदेव भगवान् शिव हैं। यह उत्तर वैदिक कालीन नाम है। विष्णु की तरह इनके अवतारों की कल्पना नहीं की गयी और न ही उनका विकास अवतारवाद के आधार पर हुआ। बल्कि उनका विकास 'रूद्र' से 'शिवम' के रूप में हुआ।[1]

ऋग्वेद में शिव के लिए 'रूद्र' नाम का व्यवहार हुआ है जो अपनी कठोरता और रूद्रता के लिए विख्यात हैं। वे अपनी भयंकर और विनाशक शक्ति से मनुष्य और पशु दोनों को विनष्ट कर देते है। उनकी क्रुद्ध और प्रलयंकारी शक्तियों से महामारियाँ फैल जाती तथा घर के घर उजड़ जाते हैं। ऋग्वेद के विवरण के अनुसार उनके द्वारा फेके गये बाण तीव्र गति से स्वर्ग और पृथ्वी पर गिरते हैं।[2] वे अपने अस्त्र से मनुष्य और गाय को हत करते हैं।[3] अतः मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने उनकी प्रार्थना की कि वे अपने आयुधों को दूर रखें तथा द्विपदों एवं चतुष्पदों की रक्षा करें।[4] इसी 'रूद्र' का विकास 'शिव' के रूप में उत्तरवैदिक काल तक हो चुका था।

शैव धर्म का प्रचार या शैवोपासना केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि भारत के पड़ोसी देशों पर और सुदूर पूर्व के देशों पर भारतीय सभ्यता का प्रभाव पड़ा। अनेक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल से ही भारत का अपने पड़ोसी देशों के साथ पूर्वी द्वीप मण्डल और हिन्द-चीन के साथ बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। इसके अतिरिक्त प्राचीनकाल से ही भारतीय व्यापार-वाणिज्य से भी अनेक देशों से सम्पर्क में रहे। कुछ भारतीय अमेरिका, यूरोप तथा पश्चिम एशिया में भी जाकर बस गये। इन देशों में भारतीय धर्म का भी प्रचार हुआ और अन्य मतों के साथ-साथ शैव मत भी वहाँ पहुँचा। साथ ही जब तक सभ्यता वहाँ बनी रही, तब तक शैव धर्म का भी वहाँ प्रचार रहा।

पश्चिम एशिया में रूद्र की उपासना बहुतायत प्रचलित थी, जिसके कारण वहाँ के अन्य देवताओं से तादात्म्य स्थापित किया जाता है। पश्चिम एशिया में मुख्य रूप से बैबिलोनी राज्य में,

*सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास विभाग, विश्वनाथ सरस्वती महिला महाविद्यालय, दुदही, कुशीनगर (उ.प्र.)

वायु और वर्षा से सम्बद्ध एक देवता की उपासना होती थी, वह भारतीय रूद्र से बहुत ही साम्य रखता है। इराक के अक्कदी काल (2360-2180 ई.पू.) की एक मुद्रा पर 'मौसम के देवता' रथ पर सवार है, जो पंखयुक्त सिंह रथ खींच रहा है, उस पर वर्षा के पूले थामे एक देवी खड़ी है। कभी ये मौसम के देवता-देवी के साथ होते हैं, कभी अकेले। एक अन्य कलाकृति में मौसम के देवता अदद और साथ ही स्त्री शल के नाम अंकित है। स्त्री एक बैल पर खड़ी है और उसके पास बिजली का द्विशूल है। शूल भाले की तरह सीधे नहीं है, बल्कि लहरियादार है।[5]

बैबिलोनी राज्य के यह मौसम या तूफान के देवता का साम्य भारतीय 'शिव' से की जाती है। वैदिक रूद्र से शिव का तादात्म्य माना जाए तो वह वायु और वर्षा के देवता है और उनका त्रिशूल बिजली का प्रतीत होगा। सम्भवत: त्रिशूल वज्र का ही एक रूप हो। आठवीं सदी के आस-पास के एक चित्र के विवरण में प्रिचार्ड ने अदद के लिए लिखा है कि उसका बायाँ हाथ 'विद्युत वज्र' थामे हैं, दाएँ में 'वज्र और कड़ा' है। यह वज्र त्रिशूल से भिन्न है, जीवशास्त्र में जिसे कुंडलिनी कहते हैं, उससे मिलता-जुलता है। ऋग्वेद में रूद्र को पृथ्वी पर बिजली गिराने वाला कहा गया है।[6] ऋग्वेद में ही उन्हें वज्र धारण करने वाला भी माना गया है।[7] ऋग्वेद में वृषभ को शक्ति का प्रतीक माना गया है। वह अनेक देवों का उपमान है। ऋग्वेद के एक सूक्त में वृषभ, वृषभाय, वृषभ द्वारा रूद्र की शक्ति की व्याख्या की गयी है।[8] मिस्र से इराक तक वृषभ दैवी और मानवीय शक्ति का प्रतीक बना रहा है।

मिस्र में अनेक वृषभ देवों की पूजा होती थी, इनमें मेम्फिस नगर के वृषभ अपिस् को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता था। मार्गरेट मरे के अनुसार इसकी पूजा बहुत प्राचीन थी और वह नील नदी का एक रूप था।[9] तीसरी शताब्दी के एक बैबिलोनी देवी-मन्दिर में पाँच वृषभ अंकित हैं और इसी शताब्दी के एक मुद्रा पर वृषभ पुरुष सिंह से युद्ध करता दिखाया गया है। नवीं सदी में सीरिया की एक प्रस्तर मूर्ति पर दो वृषभ पुरुष एक पंखयुक्त सूर्य को मंचिका पर साधे खड़े हैं।[10]

'रूद्र' पूजा का एक महत्वपूर्ण प्रचार केन्द्र 'हित्ती' राज्य भी था, जहाँ भारतीय मूल के आर्य शासन करते थे। हित्ती राज्य में मौसम के देवता को वर्षा और तूफान का देवता माना जाता था। गुर्ने का मन्तव्य है कि उनका उद्‌भव मेसोपोटामिया के गरम खुश्क मैदानों में नहीं हो सकता था, वह हित्तियों की अनातोलिया के विशिष्ट देव हैं, क्योंकि यह बादलों और तूफानों का देश है।[11] इनका सम्बन्ध हित्ती राज्य के अनेक नगरों से था और उनका शिल्पांकन अनेक रूपों में किया गया था। सीरिया के शिल्प में वह अक्सर अकेले खड़े दिखाये जाते हैं, उनके हाथ में कुठार होता है, और प्रतीक रूप चमकती बिजली।'' अनातोलिया के शिल्प में वह बैलों द्वारा खींचे जाने वाले पुराने ढंग के रथ पर पहाड़ों के ऊपर जाते दिखाई देते है। ''उनका पवित्र पशु बैल है'' और प्रतीक रूप वह अकेला भी अंकित होता है। अपने बैल के साथ 'रूद्र' रोमन साम्राज्य में भी दिखाई देते है। गुर्ने ने

लिखा है कि "बैल पर खड़े मौसम के देवता जुपिटर दोलिकेनुस् के नाम से पूरे रोमन साम्राज्य में विख्यात हुए, वह बाद के विकास जान पड़ते हैं।[12]

गुर्ने के अनुसार तौरस के पहाड़ी क्षेत्र और उत्तर सीरिया के मैदान में रूद्र के सबसे प्रसिद्ध मन्दिर थे और यहाँ के निवासियों में मुख्यत: हुर्री लोग थे। इनके 'रूद्र' का नाम तेशुबू था। इनकी पत्नी हेबत् का "महत्त्व लगभग उतना ही था, जितना उनके पति तेशुब् का।"[13] यह भारतीय देवी-देवता शिव-पार्वती का स्मरण कराते हैं। हित्तियों के 'रूद्र' नागदैत्य इल्लूयंकस् का वध करते हैं। यह नाम दैत्य वैदिक वृत्र का प्रतिरूप है।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से विदित होता है कि शैव धर्म भारत में लोकप्रिय धर्म तो था ही इसके अतिरिक्त इस धर्म का प्रभाव भारत से बाहर अनेक देशों के धर्मों पर भी पड़ा। देवताओं पर इस धर्म का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है जिसके कारण इन देवताओं का तादात्म्य शैव धर्म से स्थापित किया जाना सर्वथा उचित प्रतीत होता है।

सन्दर्भ

1. मिश्र जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2015 पृष्ठ-65
2. ऋग्वेद, 7.46.3
3. ऋग्वेद, 1.114.10
4. ऋग्वेद, 1.114.1
5. शर्मा रामविलास : पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1994, पृष्ठ 110-111
6. ऋग्वेद, 7.46.3
7. ऋग्वेद, 2.33.3
8. ऋग्वेद, 2.33.7, 8, 15
9. मरे एम.ए., द स्पलेंडर दैट वाज इजिप्ट, पृष्ठ 128-129
10. शर्मा रामविलास : पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1994, पृष्ठ-111
11. गुर्ने ओ.आर., द हिट्टाईट्स, पृष्ठ-134
12. गुर्ने ओ.आर., द हिट्टाईट्स, पृष्ठ-134
13. गुर्ने ओ.आर., द हिट्टाईट्स, पृष्ठ-134-15

राष्ट्रीय सुरक्षा : अवधारणा एवं आधारभूत तत्व

अभिषेक सिंह*

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में राष्ट्रीय सुरक्षा एक महत्वपूर्ण अवधारणा है जिसका अस्तित्व तो राज्य के निर्माण के साथ जुड़ा हुआ है, जब राज्य का जन्म हुआ होगा, तब वह अपने राष्ट्र या राज्य की सुरक्षा चाहता होगा और उसी सुरक्षा को राष्ट्रीय सुरक्षा कहा जाता है। राष्ट्रीय सुरक्षा एक ऐसा शब्द है, जिसका इस्तेमाल आजकल आमतौर पर किया जाता है। प्राय: शत्रु देश के आक्रमण मे सुरक्षा से सम्बन्धित होता है अथवा उन हथियारबंद आंतकवादियों से सुरक्षा, जो राष्ट्र के प्रभुत्व को चुनौती देते है, राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को क्षति पहुंचाते हैं। इसके अर्थ को स्पष्ट करते हुए हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने शरीर की सुरक्षा चाहता है ठीक उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र या राज्य अपने राष्ट्रीय हित की सुरक्षा चाहते हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए ही कोई देश अन्य देशों के साथ वैदेशिक सम्बन्ध स्थापित करता है, संघर्ष करता है और समझौता करता है, किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का निर्माण करता है तथा किसी अन्य राष्ट्रीय संगठन का सदस्य बनता है।

यह स्वीकार करते हुए हमें थोड़ी-सी भी हिचक नही होनी चाहिए कि वर्साय की संधि 1919, राष्ट्र संघ का निर्माण 1920 और संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना 1945 में तथा कुछ देशों के द्वारा सैनिक संगठनों के निर्माण के पीछे सुरक्षा ही केन्द्रीय विषय रहा है। राष्ट्रीय सुरक्षा को परिभाषित करते हुए संक्षिप्त में कहा जा सकता है कि ''राष्ट्रीय सुरक्षा एक ऐसी अवधारणा है जो प्रत्येक राष्ट्र के प्रादेशिक एकता व अखण्डता के विकास से जुड़ा हुआ है। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए कोई भी राष्ट्र किसी भी सीमा तक जा सकता है।[1] राष्ट्रीय सुरक्षा एक आधार है जिसे कोई भी राष्ट्र अधिक या कम पाने में सफल हो सकता है। इसकी तुलना किसी राष्ट्र की सैन्य शक्ति और धन से भी कर सकते है।''

''राष्ट्रीय सुरक्षा के अधीन ऐसी स्थितियाँ बनाए रखने के प्रयास किये जाते है, जिनके आधार पर कोई राष्ट्र सम्भावित खतरों का दृढ़तापूर्वक सामना करने की क्षमता प्राप्त कर सकता है। रक्षा के अन्तर्गत वे सभी क्रियाएँ अपनाई जाती हैं। जिनसे वास्तविक खतरों का सामना कारगर ढंग

* असिस्टेंट प्रोफेसर, रक्षा अध्ययन विभाग, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

से किया जाता है।''[2]

सुरक्षा शब्द का शाब्दिक अर्थः-

सुरक्षा शब्द अंग्रेजी के सिक्योर से बना है तथा इसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के दो शब्दों से हुई है। जिसे साइन तथा क्यूरा शब्द से इंगित किया जा सकता है। जहाँ साइन शब्द का अर्थ बगैर तथा क्यूरा शब्द का अर्थ परवाह से है। इन दोनों शब्दों को मिलाकर सुरक्षा शब्द का अर्थ निश्चित होकर समस्त राष्ट्रीय शक्ति की रक्षा करना है।

राष्ट्रीय सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए राष्ट्रीय सम्पत्ति को मुख्यतः तीन अंगो मे विभाजित किया जाता है।

1-सूचना

2-सम्पत्ति

3-व्यक्ति

राष्ट्रीय सुरक्षा के अभिप्राय को निम्न तरीके से व्यक्त कर सकते है।

''राष्ट्रीय सुरक्षा से आशय बाह्य आक्रमणों से प्रादेशिक अखण्डता एवं राजनीतिक संप्रभुता की सुरक्षा की व्यवस्था करने के अतिरिक्त राष्ट्रीय और आन्तरिक मान्यताओं की रक्षा करने से है। इस प्रकार की सुरक्षा एवं रक्षा केवल राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सैन्य तत्वों के द्वारा ही संभव है।''[3]

किसी भी राष्ट्र के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा के निम्न उद्देश्य हो सकते हैः-

1- किसी भी राष्ट्र को युद्ध में जीवित बने रहने की क्षमता को अर्जित करना।

2- प्रायः ऐसे युद्ध को समाप्त करने की शक्ति प्राप्त करना जिनसें राष्ट्र के विनाश का भय हो।

3- अपने पड़ोसियों के साथ ही साथ विश्व की महाशक्तियों के दबावों, धमकियों, आक्रमणों, संधियों एवं समझौतों का सामना करने की क्षमता को प्राप्त करना।

4- राष्ट्रीय प्रभुसत्ता को अक्षुण्ण बनाए रखना एवं विदेशी नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने की योग्यता का होना।

5- हमें राष्ट्रीय सुरक्षा किसके विरूद्ध और किन खतरों के विरूद्ध करनी है एवं हमें किन मान्यताओं की रक्षा करनी है तथा आर्थिक पहलू को अपने समक्ष रखते हुए किस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था का विकास करना है।

राष्ट्रीय सुरक्षा के आधारभूत तत्व :

भौगोलिक कारक : राष्ट्रीय सुरक्षा के आधारभूत तत्वों में भौगोलिक बनावट का अपना एक विशिष्ट स्थान होता है। भौगोलिक बनावट के अन्तर्गत हम उसकी स्थिति, आकार एवं स्वरूप तथा भू-पटल, जलवायु के साथ-साथ सीमा का भी अध्ययन करते है। किसी भी राष्ट्र के विकास के मूल्यांकन हेतु हमें उसके भू-राजनीतिक प्रभाव का अध्ययन बहुत ही तार्किक ढंग से तथा साथ ही साथ सुव्यवस्थित रूप से करना चाहिए।

भौगोलिक कारकों की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि सैनिकों की कोई भी सामाजिक गतिविधियाँ बिना इसके पूर्ण जानकारी के सम्भव नहीं है। प्राचीन समय में यह विश्वास किया जाता था कि भूगोल केवल प्राकृतिक निर्मित या स्थायी होता है। इसमें परिवर्तन संभव नही है, लेकिन जैसे-जैसे राष्ट्रीय सुरक्षा की धारणा में दिन-प्रतिदिन परिवर्तन होते जा रहे हैं उससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी रूप में किसी राष्ट्र की भौगोलिक स्थिति भी परिवर्तनशील रही है।

जनरल बेबल ने उत्तरी अफ्रीका के युद्ध के दौरान ठीक ही कहा था कि **''किसी भूमि का भूगोल उसकी लड़ाई का स्वरूप निश्चित करता है।''**[4]

आर्थिक कारक : किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीय सुरक्षा के आवश्यक तत्वों में आर्थिक संसाधनों का अपना एक विशेष महत्व है। क्योंकि किसी भी राष्ट्र की आर्थिक क्षमता में विकास का सीधा सम्बन्ध उसकी राष्ट्रीय शक्ति से है। आर्थिक तत्वों के अन्तर्गत प्राकृतिक संसाधन, ऊर्जा संसाधन, परिवहन एवं यातायात क्षमता, औद्योगिक क्षमता तथा अर्थव्यवस्था को शामिल किया जा सकता है। वास्तव में किसी राष्ट्र की आर्थिक स्थिति जितनी मजबूत होगी वह राष्ट्र सैनिक दृष्टि से उतना ही सम्पन्न होगा और साथ-साथ शक्तिशाली भी होगा।

विज्ञान एवं तकनीकी : किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा में विज्ञान एवं तकनीकी का उतना ही योगदान है जितना की मछली को जिन्दा रखने के लिए पानी। विज्ञान तथा तकनीकी का संबंध प्रत्येक राष्ट्र मे वर्तमान समय से ही नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्राचीन काल से चला आ रहा है। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही साथ गाँव और नगरों की संकल्पना ने जन्म लिया। उसके बाद नगरों की सुरक्षा के लिए उसकी किलेबन्दी करना भी विज्ञान के अन्दर ही समाहित है। अत: धीरे-धीरे जैसे नगर से राज्य और राज्य के साथ ही साथ विकास करने से एक राष्ट्र निर्माण हुआ और उसकी सुरक्षा के लिए जिन मुख्य कारकों की आवश्यकता पड़ी उसमें विज्ञान और तकनीकी का बहुत ही सराहनीय योगदान है।[5]

भावात्मक कारक : किसी भी राष्ट्र की सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधि के साथ ही साथ धार्मिक व्यवस्था का अध्ययन इस कारक के अन्दर समाहित किया जाता है। ये कारक मूर्त नहीं

अमूर्त कारक के रूप में दिखाई देते है। इसलिए किसी देश की सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं के साथ ही साथ जब धार्मिक क्षेत्र मे परिवर्तन होता है। तब उस देश की राष्ट्रीय सुरक्षा प्रभावित होती है। इसलिए राष्ट्रीय सुरक्षा से सम्बन्धित नीतियों के निर्माण काल में इस तथ्य की उपेक्षा नही की जानी चाहिए। राष्ट्रीय सुरक्षा में नेतृत्व और मनोबल के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता। कुशल नेतृत्व व मनोबल की आवश्यकता शान्तिकाल में ही नही बल्कि युद्धकालीन गतिविधियों में भी होता है। यह भारत का राष्ट्रीय नेतृत्व ही है जिसके माध्यम से पड़ोसी राष्ट्रों के आस-पास के देशों एवं अन्य देशों के साथ राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा सैन्य सम्बन्ध स्थापित किए जाते है।

राष्ट्रीय सुरक्षा का सीधा संबंध राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा से ही है। राष्ट्रीय सुरक्षा के अन्तर्गत बाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार की सुरक्षा सन्निहित है। राष्ट्रीय सुरक्षा के ध्येयों का ध्यान में रखते हुए ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया जाता है। राष्ट्रीय सुरक्षा के कुछ मौलिक तत्व भी है।[7]

भारत के संदर्भ में यही कहा जा सकता हैं कि राष्ट्रीय सुरक्षा को एक नया आयाम प्रदान करने हेतु हमें अपनी विदेश नीति को गतिशील स्वरूप प्रदान करना होगा, जनसंख्या पर नियंत्रण कायम करना होगा, प्राकृतिक संसाधनों का सर्वाधिक उपयोग करना, अपनी औद्योगिक क्षमता को गति प्रदान करना होगा। अपनी अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाना होगा। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए सभी प्रकार के खतरों के प्रति सचेत होने पर ही भारत अपनी प्रादेशिक अखंडता एवं राजनीतिक प्रभुसत्ता तथा राष्ट्रीय और आन्तरिक मान्यताओं की रक्षा करने की स्थिति में आ सकती है।[8] अतः भारतीय राष्ट्रीय सुरक्षा के संदर्भ जो भी चुनौतियाँ है उसका समाधान हमें बहुत ही गम्भीरता से सोच समझकर करने की जरूरत है। तभी देश की एकता और अखण्डता स्थापित हो पायेगी और बहुत हद तक हम राष्ट्रीय सुरक्षा करने में सफल हो सकते है। तभी हम इसकी अवधारणा एवं इसके आधारभूत तत्वों को सार्थकता प्रदान कर सकते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. अशोक कुमार, राजनीति विज्ञान, उपकार प्रकाशन, आगरा-2, पृष्ठ संख्या 501
2. John J. Clark, The New Economics of National Defence, page 11
3. K. Subramanyam, Our National Security, page 5
4. Ewold Banse, The Military Science, page 6
5. I.D.S.A. Journal, Jan March, 1978, page 261
6. विंग कमांडर डॉ. मनमोहन बाला: रक्षा विज्ञान, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 23
7. David W. Jiegler, War, Peace and International Powers, page 127
8. डॉ. सतीश चन्द्र पाण्डेय, डॉ. धीरेन्द्र द्विवेदी:-भारतीय सुरक्षा चुनौतियाँ एवं प्रतिक्रियाएँ, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली-110002

विष्णुपुराण और भारत

संतोष कुमार ओझा*

ऋग्वेद (1/154; 155; 156; 7/99-100) में 'विष्णु' के लिए पाँच सूक्त सम्बोधित किये गये हैं। इन्हीं सूक्तों के आधार पर विष्णु के स्वरूप एवं महत्त्व का मूल्यांकन किया गया है। वैदिक देवमण्डल के द्युस्थानीय देवताओं में 'विष्णु' का उल्लेख स्वयं में एक महत्त्वपूर्ण देवता की ओर संकेत करता है, जिसकी विविध प्रकार की व्याख्याएँ विद्वानों द्वारा की गयी हैं। यास्क ने निरुक्त (12/18) में "विष्णुः विशतेः वा व्यश्नोतेः वां" अर्थात् विष्णु की उत्पत्ति 'विश' (प्रवेश करना) अथवा 'वि+अश्' (व्याप्त करना) धातु से मानी है। वृहद्देवताकार का मत है कि 'विष्णु' शब्द व्याप्ति अर्थ वाली 'विष', 'विश' अथवा 'वेविष्' (विल्लृ) धातुओं से बना है। नीलकण्ठ ने 'ष्णु' (प्रस्रवण करना) धातु में 'वि' उपसर्ग से विष्णु शब्द सिद्ध किया है। दीप्ति अर्थ में प्रयुक्त होने वाली चुरादिगणी 'विच्छ' धातु से प्रकाशशील अर्थ में 'विष्णु' शब्द की सिद्धि की जाती है। जे. खोन्दा (ऑस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली विष्णुइज्म) ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित 'अथ यद् विषितो, भवति तद् विष्णुः' के आधार पर विष्णु का विस्तृत, मुक्त, स्वतन्त्र या खुला हुआ अर्थ स्वीकार करते हैं। थॉमस, ब्लाख तथा जोहान्सन विष्णु शब्द में 'जिष्णु' (विजयी) भाव का अर्थ ग्रहण करते हैं। हापकिन्स ने गति या चक्रमण से विष्णु का अर्थ गत्यर्थक 'वि' अथवा 'वी' धातु से माना है। मैक्डानल का भी विचार है कि ऋग्वेद में विष्णु को गमन करने या त्रेधा विचक्रमण अर्थ में ही माना गया है।

विष्णुपुराण का आकार

इस पुराण के प्रकरणों का विभाग 'अंश' नाम से मिलता है। उपलब्ध विष्णुपुराण में छः अंश हैं। उनमें अवान्तर प्रकरणों का विभाग अध्याय नाम से है, इसका प्रारम्भ 'पराशर' और 'मैत्रेय' के प्रश्नोत्तर के रूप में हुआ है।

प्रथम अंश में सृष्टि के वर्णन की प्रधानता है। इसमें सृष्टि के आदिभाग में घटित कुछ महत्त्वपूर्ण उपाख्यान भी दिये गये हैं। सृष्टि का कारण यहाँ ब्रह्म को कहा गया है तथा उसकी शक्ति का भी विवरण दिया गया है। किस-किस की कितनी-कितनी आयु है, इसका भी आश्चर्यजनक

---

*शोध छात्र, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

विवरण यहाँ मिलता है। एक सृष्टि के पूरे समय को एक कल्प कहा गया है और एक कल्प के समाप्त होने पर फिर आगे सृष्टि किस प्रकार प्रारम्भ होती है, इसका भी विवरण दिया गया है। प्रलय का भी वर्णन हुआ है। इसके अनन्तर देव, दानव, मनुष्य आदि की सृष्टि बतलायी गयी है। आगे ध्रुव और प्रह्लाद के उपाख्यान हैं। भगवान् विष्णु की महिमा तथा विभूतियों का एवं उनकी स्तुतियों का समावेश अत्यन्त मनोरम है।

द्वितीय अंश में भी सृष्टि का ही विवरण है। उसी प्रसंग में भूगोल, खगोल तथा सप्तलोकों का विवरण मिलता है। भरत तथा उसके वंश का वर्णन भी आया है। जड़भरत का प्रसिद्ध उपाख्यान भी इसमें आया है। भगवान् विष्णु की स्तुति भी इसी अंश में प्राप्त है।

तृतीय अंश में मन्वन्तर-वर्णन, 28 व्यासों का विवरण, व्यास द्वारा वेदों का विभाजन, वेदों का संक्षिप्त विवरण, पुराणों का विवरण, यमगीता का उल्लेख आदि साहित्य सम्बन्धी विवरण आये हैं। वर्णाश्रम तथा नैतिक धर्मों का कथन हुआ है तथा बौद्ध धर्म की उत्पत्ति का विवरण भी है।

चतुर्थ अंश में मुख्य रूप से राजवंशों की उत्पत्ति और मुख्य-मुख्य राजाओं के चरितों का उल्लेख हुआ है। पंचम अंश में विष्णु भगवान् के कृष्णावतार का तथा भगवान् कृष्ण की लीलाओं का वर्णन आया है।

षष्ठम् अंश में कलियुग का स्वरूप वर्णित है और कलियुग में अपने धर्म का अनुष्ठान किस प्रकार करना चाहिए, यह बतलाया गया है। आत्मा की चर्चा और देहात्मवाद का खण्डन भी इसमें मिलता है।अन्त में, विष्णुपुराण के महत्त्व का विवरण है।

विष्णुपुराण की तिथि

विष्णुपुराण के आविर्भावकाल के विषय में विद्वानों में विभिन्न मत हैं, परन्तु कुछ ऐसे नियामक तथ्य हैं, जिनका अवलम्बन करने से हम समय का निर्देश भली-भाँति कर सकते हैं।

(क) कृष्णकथा की दृष्टि से भागवत तथा विष्णुपुराण में पार्थक्य यह है कि विष्णुपुराण जहाँ ध्रुव, वेन, पृथु, प्रह्लाद, जड़भरत के चरित को संक्षेप में ही विवृत करता है, वहाँ भागवत उनका विस्तार दिखलाता है। कृष्णलीला के विषय में भी यही वैशिष्ट्य लक्ष्य है। फलतः विष्णुपुराण भागवत से प्राचीन है।

(ख) ज्योतिष विषयक तथ्यों के आधार पर भी विष्णुपुराण का समय निर्णीत है। विष्णुपुराण (2/9/16) में नक्षत्रों का आरम्भ कृत्तिका से होता है[1] और वराहमिहिर (लगभग 550 ई.) के अनुसार हम जानते हैं कि प्राचीनकाल में नक्षत्रों का जो आरम्भ कृत्तिका से होता था, वह उनके समय में अश्विनी हो गया। फलतः कृत्तिकादि का प्रतिपादक विष्णुपुराण 500 ई. से प्राचीन है; इसी प्रकार

राशियों का भी उल्लेख विष्णुपुराण में अनेकत्र है (3/8/28[2], 2/8/30, 2/8/41-42, 2/8/62-63)। ज्योतिर्विदों की मान्यता है कि सर्वप्रथम संस्कृत ग्रन्थों में याज्ञवल्क्यस्मृति में राशियों का समुल्लेख उपलब्ध है और इस ग्रन्थ का रचनाकाल द्वितीय शती है। फलत: विष्णुपुराण द्वितीय शती से प्राचीन नहीं हो सकता[3]।

(ग) वाचस्पति मिश्र (814 ई.) ने योगभाष्य की अपनी टीका तत्त्ववैशारदी (2/32; 2/52; 2/54) में विष्णुपुराण के श्लोकों को उद्धृत किया है तथा 1/19, 1/25, 4/13 में वायुपुराण के वचन उद्धृत किये हैं। 'स्वाध्यायाद् योगमासीत्' इस भाष्य की टीका में वे लिखते हैं- 'अत्रैव वैयसिको गाथामुदाहरति' अर्थात् वाचस्पति की दृष्टि में व्यासभाष्य में उद्धृत 'स्वाध्यायाद् योगमासीत्' व्यास का वचन है और यही श्लोक विष्णुपुराण के 6.6.2 में मिलता है। योगभाष्य का एक वचन (3/13- तदेतद् त्रैलोक्यं आदि) न्यायभाष्य में उपलब्ध है (1/2/6)। इन प्रमाणों के आधार पर विष्णुपुराण को प्रथम शती से पूर्व मानना सर्वथा उचित प्रतीत होता है। ऊपर कलियुग के राजाओं के वर्णन प्रसंग में विष्णुपुराण गुप्तों के आरम्भिक इतिहास से परिचय रखता है, जब वे साकेत (अयोध्या), प्रयाग तथा मगध पर राज्य करते थे। यह निर्देश चन्द्रगुप्त प्रथम (320-326 ई.) के राज्यकाल में गुप्तराज्य की सीमा का द्योतक माना जाता है। फलत: विष्णुपुराण का समय 100 ई.-300 ई. तक मानना सर्वथा उचित प्रतीत होता है।

(घ) विष्णुपुराण की प्राचीनता के विषय में तमिल-साहित्य के एक विशिष्ट काव्यग्रन्थ से बड़ा ही दिव्य प्रकाश पड़ता है। ग्रन्थ का नाम है- 'मणिमेखलै', जिसमें मणिमेखला नामक समुद्री देवी के द्वारा समुद्र में आपद्ग्रस्त नाविकों तथा पोताधिरोहियों के रक्षण की कथा बड़ी ही रुचिरता के साथ दी गयी है। ग्रन्थ का रचनाकाल ईस्वी की द्वितीय शती माना जाता है। इसमें एक उल्लेख विष्णुपुराण के विषय में निश्चयरूपेण वर्तमान है। वेंजी की सभा में विभिन्न धर्मानुयायी आचार्यों के द्वारा प्रवचन तथा शास्त्रार्थ का उल्लेख यह ग्रन्थ करता है, जिनमें वेदान्ती, शैववादी, ब्रह्मवादी, विष्णुवादी, आजीवक, निर्ग्रन्थ, सांख्य, सांख्य आचार्य, वैशेषिक व्याख्याता और अन्त में भूतवादी के द्वारा मणिमेखला को सम्बोधित किये जाने का उल्लेख है। इसी सन्दर्भ में तमिल में एक पंक्ति आती है- 'कललवणं पुराणमोदियन्', जिसका अर्थ है- विष्णुपुराण में पाण्डित्य रखने वाला व्यक्ति। इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि संगम युग में 'विष्णु' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। उस देवता के निर्देश के लिए तिरुमाल तथा कललवणं विशेषण रूप से प्रयुक्त होते हैं। फलत: इस पंक्ति में विष्णुपुराण का ही स्पष्ट संकेत है, भागवत, नारदीय तथा गरुड़ जैसे वैष्णवपुराणों का नहीं। यह सम्मान्य मत है इस विषय के पण्डित डॉ. रामचन्द्र दीक्षितर् का, जिन्होंने तमिल-साहित्य तथा इतिहास का गम्भीर अनुशीलन अपने एतद्विषयक ग्रन्थ- 'स्टडीज इन तमिल लिटरेचर ऐण्ड हिस्टरी' में किया है। मणिमेखलै के इस उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि तमिल देश में उस समय पुराणों का

प्रवचन तथा पाठ जनता के सामने उनके चरित के उत्थान के निमित्त किया जाता था। इस समय विष्णुपुराण विशेषरूपेण महत्त्वशाली और गौरवपूर्ण होने के कारण इस कार्य के लिए चुना गया था। यह इसकी लोकप्रियता का स्पष्ट संकेत है। द्वितीय शती में प्रवचन के निमित्त चुने जाने वाले पुराण का समय उस युग से कम से कम एक शताब्दी पूर्व तो होना ही चाहिए। इससे स्पष्ट है कि कम से कम प्रथम शती में विष्णुपुराण की, अथवा उसके अधिकांश भाग की, निश्चयेन रचना हो चुकी थी। व्यास-भाष्य के साक्ष्य पर निर्धारित समय की पुष्टि इस उल्लेख से आश्चर्यजनक रूप में हो रही है।[4]

भारत की भौगोलिक स्थिति

विष्णुपुराण में भारत के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि-

> उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रश्चैव दक्षिणम्।
> वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।[5]

अर्थात् समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण स्थित है उसका नाम भारतवर्ष और वहाँ के निवासियों को भारती कहा जाता है। इस प्रकार का विवरण विश्व के किसी भी देश के लिए नहीं प्राप्त होता है। विष्णुपुराण में निर्दिष्ट सीमा के अनुसार भूमण्डल के नौ भेद किये गये हैं उनका विष्णुपुराण में निर्देश इस प्रकार है-

> भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निशामय।
> इन्द्रद्वीपःकसेरूश्च ताम्रपर्णो गभिस्तमान्।।
> नागद्वीपास्तथा सौम्योगन्धर्वस्त्वथ वारुणः।
> अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।।
> योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात्।।[6]

अर्थात् भारत के भौगोलिक विस्तार में नौ द्वीपों का जो विवरण प्राप्त होता है वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है; जो इस प्रकार हैं-

1-इन्द्रद्वीप, 2-नागद्वीप, 3-सौम्य, 4-गान्धर्व, 5-वारुण, 6-कशेरूमान, 7-गभस्तिमान, 8-ताम्रपर्ण (सिंहल), 9-कुमारिका। इन द्वीपों के अभिज्ञान के सम्बन्ध में यद्यपि विवाद है तथापि पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी ने इसका अभिज्ञान किया है[7]।

कुलपर्वत

विष्णुपुराण में भारत के प्रमुख पर्वतों का भी उल्लेख किया गया है-

महेन्द्रोमलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥[8]

अर्थात् महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष या हेम पर्वत, विन्ध्य, और पारियात्र।

भारतीय नदियों का विवरण

भारतीय नदियों को 'विश्वस्य मातरः सर्वाः' कहते हुए विष्णुपुराण में भारत की प्रमुख नदियों का विवरण दिया गया है-

शतद्रूचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिर्गता।
वेदस्मृतिमुखाद्याश्च परियात्रोद्भवा मुने।।
नर्मदा सुरसाद्याश्च नद्यो विन्ध्याद्रिनिर्गताः।
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या प्रमुखा ऋक्षसम्भवाः।।
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेण्यादिकाम्तथा।
सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः।।
कृतमाला ताम्रपर्णी प्रमुखा मलयोद्भवाः।
त्रिसामा चर्षिकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाःस्मृता।।
ऋषिकुल्या कुमाराद्याः शुक्तिमत् पादसम्भवाः।
आसां नद्य उपानद्य सन्त्यन्याश्च सहस्रशः।।[9]

जनपदों का उल्लेख

विष्णुपुराण में भारत के प्रमुख जनपदों का उल्लेख निम्नांकित रूप से किया गया है-

तास्विमे कुरुपाञ्चाला मध्यदेशादयो जनाः।
पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः।।
पुण्ड्राः कलिंगा मगधा दक्षिणाद्याश्च सर्वशः।
तथा परान्ता सौराष्ट्राः शूराभीरास्तथार्बुदा।।
कारूषा मालवाश्चैव पारियात्र निवासिनः।
सौवीरासैन्धवा हूणाः साल्वाः कोशलवासिनः।।
माद्रारामास्तथाम्बष्ठा पारसीकादयस्तथा।[10]

कर्मभूमि भारत

भारत के समान पृथ्वी का कोई भी देश नहीं है। भारत कर्मभूमि है, अन्य देश भोगभूमि हैं; विष्णुपुराण में इसका उल्लेख किया गया है-

कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम्[11]
अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बुद्वीपे महामुने
यतो हि कर्म भूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः।।[12]
अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपिसत्तम
कदाचित् लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्।।[13]

भारत वंदना

विष्णुपुराण एक ऐसा राष्ट्रीय ग्रन्थ है जिसमें देवताओं द्वारा इस राष्ट्र की वंदना की गयी है और देवगण बार-बार इस भूमि में पुरुष रूप में आकर इस भूमि की महत्ता का वंदन और अभिनन्दन करते हैं-

गायन्ति देवाः किलगीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्[14]
धन्याः खलु ते मनुष्याः
ये भारते नेन्द्रियविप्रहीणाः।[15]

वंश एवं वंशानुचरित

पौराणिक अनुश्रुति का स्पष्ट प्रामाण्य है कि भारतवर्ष की वंशावली मनु से ही प्रारम्भ होती है। मनु से ही तीनों राजवंशों का उदय हुआ- 1. सूर्यवंश का (राजधानी अयोध्या में), 2. चन्द्रवंश का (राजधानी प्रतिष्ठानपुर-प्रयाग के पास आधुनिक झूंसी में), 3. सौद्युम्नवंश का; जिसका शासन क्षेत्र भारत का पूर्वी प्रान्त था। राजवंशों के विषय में पार्जीटर महोदय की धारणा है कि मानव वंश द्रविड़ था, चन्द्रवंश विशुद्ध आर्य तथा सौद्युम्नवंश मुण्डा-मानख्मेर जाति का था। इस तथ्य की पुष्टि में उन्होंने जो युक्तियाँ प्रदर्शित की हैं, वे नितान्त भ्रान्त, परम्परा-विरुद्ध तथा अशुद्ध हैं।

पार्जीटर ने आर्यों के विषय में लिखा है कि परम्परानुसार आर्य प्रतिष्ठानपुर से चलकर उत्तर-पश्चिम, पश्चिम और दक्षिण विजय कर वहाँ फैल गये और ययाति के समय तक उस प्रदेश

पर अधिकार कर लिया, जिसे मध्यदेश कहते हैं। भारतीय अनुश्रुतियों में अफगानिस्तान से भारत पर ऐलों (आर्य) के आक्रमण का तथा पूर्व की ओर उनके बढ़ाव का कोई उल्लेख नहीं है; विपरीत इसके द्रुह्यु लोगों का (जो ऐलों-आर्य की एक शाखा थे) भारत के बाहर जाने का उल्लेख पुराणों में मिलता है। ऐलों के विषय में पार्जीटर महोदय का कथन यथार्थ है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु अन्य दोनों राजवंशों के विषय में उनके निष्कर्ष नितान्त भ्रमोत्पादक तथा बिल्कुल असत्य हैं। इसी प्रकार ऐलों के भारत के बाहर से आने की उनकी कल्पना भी भ्रान्त है। इस विषय में उनका स्पष्ट आधार वे लोक कथाएँ हैं, जो ऐलों के पूर्वज पुरूरवा का सम्बन्ध हिमालय के मध्यवर्ती प्रदेशों से जोड़ती हैं। इस तर्क में विशेष बल नहीं है। बात यह है कि मनु की कन्या इला का मध्यवर्ती हिमालय प्रदेश में गिरिविहार के निमित्त जाना तथा सोमसूनु बुध के साथ उसकी भेंट होना तो पुराणों के अनुकूल है, परन्तु सोम तथा बुध का न तो मध्यवर्ती हिमालय के ही मूल निवासी होने का कहीं संकेत है और न इनके भारत के कहीं बाहर से आने का निर्देश है। ये लोग विशुद्ध मध्यदेश के ही निवासी आर्य जाति के थे। इनके मूल स्थान का भारत से बाहर खोज निकालने का प्रयास सर्वथा व्यर्थ तथा भ्रान्त है।

इसी प्रकार मानवों (मनुवंशियों) को द्रविड़ मानने के पार्जीटर[16] की युक्ति यह है कि मानवों का वर्णन ऐलों (आर्यो) से भिन्न जाति के रूप में हुआ है तथा वे ऐलों से पूर्व ही यहाँ भारत में निवास करते थे। आर्यो से पूर्व निवास करने वाली जाति द्रविड़ों की थी। फलतः मानव द्रविड़ जाति के ही व्यक्ति हैं, यह युक्ति भी ठीक नहीं। पुराण मानवों को कभी भी आर्यों से भिन्न जाति का संकेत नहीं करता। प्रत्युत इन दोनों में वैवाहिक सम्बन्ध होते थे, जो जाति-साम्य के ही सूचक हैं। जाति, भाषा और धर्म की दृष्टि से दोनों समान ही कहे गये हैं। द्रविड़ का मूल स्थान सुदूर दक्षिण में ही सर्वदा से रहा है, जहाँ वे आज भी प्रतिष्ठित हैं। उत्तर भारत के मध्य में आर्यावर्त के ठीक बीचोबीच अयोध्या में- द्रविड़ों की स्थिति बतलाना इतिहास की एक विकट भ्रान्ति है। मनुवंशी पुरुषों में से अनेक ऋग्वेद के मन्त्रों के द्रष्टा हैं, जो उनके आर्यत्व का स्पष्ट परिचायक है, न कि उनके ऊपर आरोपित द्रविड़त्व का। फलतः मानव भी उसी प्रकार विशुद्ध आर्य थे, जिस प्रकार ऐल लोग।

सौद्युम्नों के विषय में पार्जीटर का कहना है चूँकि वे दक्षिण-बिहार तथा उड़ीसा में शासन करते थे, फलतः वे मुण्डा-मानख्मेर जाति (जंगली मुण्डा जाति) के ही थे, यह कथन अनुचित है। पुराणों का साक्ष्य इसके विरुद्ध है। ये लोग मानवों के ही एक उपकुल के रूप में वर्णित हैं, जिनके साथ इनका वैवाहिक सम्बन्ध भी विद्यमान था। केवल शासन-क्षेत्र तथा स्थिति-प्रदेश की समता पर यह निष्कर्ष निकालना सर्वथा अनुचित है।

'इक्ष्वाकुवंश' नाम से वंश शब्द का तात्पर्य क्या है? वंश शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न सन्दर्भो में भिन्न-भिन्न अर्थों में होता है। 'बुद्धवंश' पालि भाषा का एक विशिष्ट ग्रन्थ है, जिसमें

'इक्ष्वाकुवंश' में 'वंश' शब्द कुल-परम्परा के लिए प्रयुक्त नहीं है प्रत्युत शासक-परम्परा के लिए ही व्यवहृत है। सूर्यवंश के समान चन्द्रवंश भी मनु से ही आरम्भ होता है। अन्तर इतना ही है कि सूर्यवंश ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु से चलता है और चन्द्रवंश पुत्री इला से चलता है। इला का विवाह चन्द्रपुत्र बुध के साथ सम्पन्न हुआ और इसीलिए यह वंश चन्द्रवंश के नाम से प्रख्यात है।

मन्वन्तर काल गणना

भारतीय इतिहास दृष्टि चक्रीय सिद्धान्त को स्वीकार करती है। एक मन्वन्तर की काल गणना बतलाते समय पुराण का एक बहुचर्चित वाक्य है- 'मन्वन्तरं चतुर्युगानां साधिकाह्येक सप्ततिः।' एक मन्वन्तर 71 चतुर्युगी का होता है। अनेक पुराणों में 71 चतुर्युगी का काल वर्षों में गिनाया गया है-

त्रिशतकोटयस्तु सम्पूर्णाः सङ्ख्याताः सङ्ख्यायद्विज।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि महामुने।।
विंशतिस्तु सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना।
मन्वन्तरस्य सङ्ख्येयं मानुषैर्वत्सरैर्द्विज।।[18]

मन्वन्तर के नाम[19]

चौदह मन्वन्तरों के नाम इस प्रकार हैं- स्वायम्भुव मनु, स्वारोचिष मनु, उत्तम मनु, तामस मनु, रैवत मनु, चाक्षुष मनु, वैवस्वत मनु, सावर्णि मनु, दक्ष सावर्णि मनु, ब्रह्म सावर्णि मनु, धर्म सावर्णि मनु, रुद्र सावर्णि मनु, देव सावर्णि मनु, और इन्द्र सावर्णि मनु।

प्रत्येक मन्वन्तर में पाँच अधिकारी होते हैं। इन अधिकारियों के रूप में भगवान् विष्णु की ही शक्ति समर्थ तथा क्रियाशील रहती है, और इन अधिकारियों को विष्णुपुराण स्पष्ट शब्दों में विष्णु की विभूति मानता है।[20] 'विष्णु' शब्द की निष्पत्ति 'विश् प्रवेशने' धातु से होती है और इसलिए यह समग्र विश्व जिस परमात्मा की शक्ति से व्याप्त है, वही विष्णु नाम से अभिहित किये जाते हैं।[21] इन अधिकारियों के नाम विष्णुपुराण[22] के अनुसार हैं- मनु, सप्तर्षि, देव, देवराज इन्द्र, मनुपुत्र। इन अधिकारियों का कार्य बड़ा ही विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण है। विष्णुपुराण के कथनानुसार जब चतुर्युग समाप्त हो जाता है, तब वेदों का विप्लव लोप हो जाता है। उस समय वेदों का प्रवर्तन नितान्त आवश्यक हो जाता है, और इस राष्ट्रहित के कार्य निमित्त ऋषि लोग स्वर्ग से भूतल पर आकर उन उच्छिन्न तथा विलुप्त वेदों का प्रवर्तन करते हैं। अतः ये ऋषि प्रत्येक मन्वन्तर में वेदों के प्रवर्तक रूप से अधिकारी हैं।[23]

निष्कर्ष यह है कि पुराण मनु को एक विशिष्ट दीर्घकाल के लिए सम्राट तथा शास्ता मानता है। मनु आदि पाँचों व्यक्ति भगवान् विष्णु के सात्विक अंश हैं, जिनका कार्य ही है जगत् की स्थिति

करना-

मनवो भूमजः सेन्द्रा देवाः सप्तर्षयस्तथा।
सात्विकोऽशः स्थितिकरो जगतो द्विजसत्तम।।[24]

फलतः जगत् के संरक्षण के कार्य में सहायक जितने भी अधिकारी होते हैं, वे मनु के साथ ही उत्पन्न होते हैं; अपना विशिष्ट कार्य सम्पादित करते हैं, जिससे लोक में सुव्यवस्था की शीतल छाया मानवों का मंगल करती है। इस प्रकार मन्वन्तर की कल्पना लोक मंगल की भावना का एक जाग्रत प्रतीक है। बिना सुव्यवस्था हुए विश्व का कल्याण हो नहीं सकता और मन्वन्तर सुव्यवस्था के निर्धारण का एक सुचारु साधन है- यही उसका मांगलिक पक्ष है।

सन्दर्भ-

1. कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विषमेषु च यद्दिवः।
दृष्टार्कपतितं ज्ञेयं तद् गाङ्ग दिग्गजोज्झितम्।।
-विष्णु., 2/9/16
2. अयनस्योत्तरस्यादौ मकरं याति भास्करः।
ततःकुम्भं च मीनं च राशे राश्यन्तरं द्विज।।
-विष्णु., 2/8/28
3. द्रष्टव्य- Dr. Hazara का लेख "The date of Vishnu Purana' (भण्डारकर पत्रिका, भाग 18, 1936-37 में)।
4. द्रष्टव्य- इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग 7, कलकत्ता, 1931, पृ. 370-371 में 'दी एज ऑव दी विष्णुपुराण' शीर्षक टिप्पणी।
5. विष्णुपुराण द्वितीय अंक, अध्याय 3
6. वही
7. पं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, पुराण परिशीलन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, विक्रमाब्द 2027, पृ. 311-312
8. विष्णुपुराण, द्वितीय अंक, अध्याय 3
9. वही
10. वही
11. विष्णुपुराण, 2/3/2
12. विष्णुपुराण, 2/3/22
13. विष्णुपुराण, 2/3/23
14. विष्णुपुराण, 2/3/4
15. विष्णुपुराण, 2/3/26
16. पार्जीटर : एनशिएण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन, पृ. 288
17. रायकृष्णदास - पुराणों की इक्ष्वाकु वंशावली, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी, वर्ष 56, सं. 2008, पृ.

234-238

18. विष्णुपुराण- 1/3/20-21

19. विष्णुपुराण, 3/1 तथा 3/2

20. विष्णुपुराण, 3/14/6

21. तत्रैव, 3/1/45

22. विष्णुपुराण, 3/2/49

23. विष्णुपुराण, 3/2/46-47
    चतुर्युगान्ते वेदानां जायते किल विप्लवः
    प्रवर्तयन्ति तानेत्य भुवं सप्तर्षयो दिवः
    कृते कृते स्मृतेर्विप्र-प्रणेता जायते मनुः
    देवा यज्ञभुजस्ते तु यावन्मन्वन्तरं तु तत्।

24. विष्णुपुराण, 3/2/54

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

आरती सिंह

'ब्रजनाद से व्योम जगा दे, देव और कुछ लाग लगा दें' के ओजस्वी हुंकार द्वारा भारत भारती कार मैथिलीशरण गुप्त ने स्वदेश-संगीत की सर्वश्रेष्ठ सशक्त रचना 'भारत-भारती' में ऋषिभूमि भारतवर्ष के अतीत के गौरवगान के साथ में वर्तमान पर क्षोभ प्रकट किया। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय चेतना पर विस्तृत प्रकाश डालने के पूर्व उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना आवश्यक लग रहा है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (3 अगस्त 1886-12 दिसम्बर 1964) हिन्दी के कवि थे। इनका जन्म 03 अगस्त 1886 में उत्तर प्रदेश झाँसी के पास चिरगाँव नामक स्थान पर हुआ। माता कौशिल्या बाई, पिता रामचरण कनकने थे। गांधी ने आपको 'राष्ट्रकवि' की संज्ञा दी। आगरा विश्वविद्यालय ने डी. लिट्. उपाधि से सम्मानित किया। 1952-1964 तक गुप्त जी राज्यसभा के मनोनीत सदस्य के रूप में इस पद को गौरवान्वित किया। 1953 ई. में भारत सरकार ने उन्हें पद्म विभूषण से सम्मानित किया। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने सन् 1932 में अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किए तथा हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के द्वारा डी. लिट्. उपाधि से सम्मानित किया गया। 1964 में साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। 12 दिसम्बर 1964 को दिल का दौरा पड़ा और साहित्य का जगमगाता सितारा अस्त हो गया।

आपकी महत्वपूर्ण रचनाएं- 'रंग में भंग, जयद्रथ, मेघनाथ वध, साकेत, जयभारत, ब्रजांगना और सन् 1914 में राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत 'भारत-भारती' का प्रकाशन किया गया।

हिन्दी कविता के इतिहास मे गुप्त जी का सबसे बड़ा योगदान है पवित्रता, नैतिकता और परम्परागत मानवीय सम्बन्धों की रक्षा करना। उनके काव्य में राष्ट्रीय चेतना, धार्मिक भावना, और मानवीय उत्थान प्रतिबिम्बित है। भारत-भारती के तीन खण्ड में देश का अतीत वर्तमान और भविष्य चित्रित है। वे मानवतावादी नैतिक और सांस्कृतिक काव्यधारा के विशिष्ट कवि थे।

गुप्त जी के काव्य में राष्ट्रीयता और गांधीवाद की प्रधानता है। भारत-भारती में देश की

---

* विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

वर्तमान दुर्दशा पर क्षोभ प्रकट करते हुए देश के अतीत का अत्यन्त गौरवपूर्ण और श्रद्धा के साथ गुणवान किया गया है। भारत श्रेष्ठ था और रहेगा। गुप्त जी कहते है-

भूलोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहाँ?
फैला, मनोहर गिरि हिमालय और गंगा जल कहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषिभूमि हो, वह कौन? भारतवर्ष।।

भारत- भारती 1912-13 में लिखी गयी थी । यह स्वेदश प्रेम को दर्शाते हुए वर्तमान और भावी दुर्दशा से उबरने के लिए समाधान खोजने का एक सफल प्रयोग है। गुप्त जी इसी काव्य के कारण जनता के प्राणों में रच-बस गए और 'राष्ट्रकवि' कहलाएं।

आचार्य शुल्क के शब्दों में- ''पहले पहल हिन्दी प्रेमियों का सबसे अधिक-ध्यान खींचने वाली पुस्तक भी यही है। इसकी लोकप्रियता का आलम यह रहा है कि इसकी प्रतियां रातों रात खरीदी गई। प्रभात फेरियों, राष्ट्रीय आन्दोलनों, शिक्षा संस्थानों, प्रात: कालीन प्रार्थनाओं में भारत-भारती के पद गाँव-नगरों में गाये जाने लगे।''

गुप्त जी कहते है कविता केवल मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि उसमें उपदेश भी होनी चाहिए-

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।

मैथिलीशरण गुप्त भारत-भारती में पूरे राष्ट्र को उसकी रूढ़िगत निद्रा से जगाते हुए कहते है-

कल कौन थे, आज क्या हो गए हो तुम
अभी जागते थे, अभी सो गए हो तुम

गुप्त जी ने पुरुषार्थ पर बल दिया है मनुष्य बेशक बार-बार असफल हो सकता है लेकिन उसे उसकी असफलता से बचाने वाला न तो उसका भाग्य हो सकता है और न ही स्वयं ईश्वर। उसे अपनी गरिमा और प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए स्वयं ही बार-बार प्रयत्न करना होगा।

नर हो न निराश करो मन को, कुछ काम करो कुछ काम करो
जग में रहकर कुछ नाम करो, कुछ तो उपयुक्त करों तन को। नर..

यह बात सम्पूर्ण राष्ट्र के उत्थान के लिए भी महत्वपूर्ण है।

मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्रकवि का गौरव प्राप्त है भारत के बारे में उनका कहना है-

भारत-माता का मन्दिर यह समता का संवाद जहाँ
सबका शिव कल्याण यहाँ है पावे सभी प्रसाद यहाँ
जाति धर्म या सम्प्रदाय का, नहीं भेद व्यवधान यहाँ
सबका स्वागत, सबका आदर, सबका सम-सम्मान यहाँ।

भारतीय साहित्य में भारत-भारती सांस्कृतिक नवजागरण का ऐतिहासिक दस्तावेज है-

मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारे आरती
भगवान! भारत वर्ष में गूँजे हमारी भारती।

गुप्त जी कहते है कि हमारा भारत वर्ष संसार में अग्रणी रहा है, यह वही देश है जिसे सोने की चिड़िया कहा जाता है।

हाँ, वृद्ध भारत वर्ष ही संसार का सिर मौर है।
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है?

गुप्त जी हिन्दू धर्म में विद्यमान शौर्य, शक्ति, दया, शम, अहिंसा, सत्यता पर गहरी दृष्टि डालते हुए कहते है-

हिन्दू सनातन धर्म के ऐसे पवित्र विधान है
संसार में सबके लिए जो मान्य एक समान है।

गुप्त जी कहते है। धर्म का तात्पर्य मजहब से नहीं नित्य क्रिया कर्म से है।

विख्यात हिन्दू-धर्म ही सच्चा सनातन धर्म है
वह धर्म ही धारण क्रिया का नित्य कर्ता-कर्म है।

मैथिलीशरण गुप्त की कृति भारत-भारती में हरिगीतिका छंद प्रयुक्त हुआ है। भारतीय राष्ट्रीय चेतना जागृति में इस पुस्तक का हाथ रहा है। यह पुस्तक तीन खण्डों मे विभक्त है। एक अतीत खण्ड दो वर्तमान खण्ड तीन भविष्य खण्ड। अतीत खण्ड में भारत वर्ष के प्राचीन गौरव का बड़े मनोयोग से बखान किया गया है। भारतीयों की वीरता, आदर्श, विद्याबुद्धि, कलाकौशल, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य, दर्शन, स्त्री-पुरुषों आदि का गुणगान किया है गुप्त जी वर्तमान खण्ड में भारत की वर्तमान अधोगति का चित्रण है। इस खण्ड में कवि ने साहित्य, संगीत, धर्म, दर्शन आदि के क्षेत्र में होने वाली अवनति, रईसों और सपूतों के कारनामें, तीर्थ और मन्दिरों की दुर्गति तथा स्त्रियों की दुर्दशा आदि का अंकन किया है। भविष्य खण्ड में भारतीयों को उद्‌बोधित किया गया है तथा देश के मंगल की कामना मैथिलीशरण गुप्त जी ने किया है।

भारत : सभ्यता के उषा काल से 1947 के विभाजन तक

शचीन्द्र मोहन*

इतिहास अतीत का गौरव गीत नहीं, महामानवों की कथा-मात्र नहीं, वह टूटी मूर्तियों का संग्रहालय भी नहीं और न है खण्डहरों का विवरण ही। पुराने सिक्के कौतूहल पैदा करते हैं, पर वे बाजार में चलते नहीं। इतिहास केवल लेखा-जोखा नहीं है। वह राह दिखाने वाला दीपक है, मील का पत्थर है, अपने आपको देखने के लिए शीशा है। अतीत काल कभी अतीत नहीं होता, वह तो वर्तमान में जीता है। वर्तमान को जानने के लिए अतीत की आरसी चाहिए। इतिहास को नये ढंग से समझने की जिज्ञासा सदा बनी रहेगी।

भारतीयता भारत की मौलिक सीमाओं में सिकुड़ी नहीं रही। यह पहुँची असुर देश जिसे अब असीरिया कहते हैं। इसके जलयान किसी दिन टकराते थे समुद्री लहरों से। न तो दुर्गम पहाड़ हमें रोक सके न समुद्र हमें बाँध सका। हमने समुद्र पर पुल बाँधा, हमारे कश्यप पहुँच गये थे काश्यप सागर (कैस्पियन सी) तक। बौद्ध धर्म पहुँच गया था तुर्क, चीन, जापान, सुवर्ण भूमि और सुवर्ण द्वीप तथा राम उपासना पहुँची थी द्वीप समूहों में। संकीर्णता से मुक्त हो, उदारता से धनी हो, यह शिक्षा देता है हमारा सांस्कृतिक इतिहास।

हम भारतीय कभी रुके नहीं, हम बढ़ते गये। प्रकृति पर हमने विजय पायी क्योंकि बाधाओं पर विजय पाने की हमारी लालसा अदम्य थी। कहते हैं किसी दिन हमारे यहाँ आये द्रविड़ और आ बसे आर्य। फिर आयीं अनेक विदेशी जातियाँ- ईरानी, यूनानी, बैक्ट्रिया, शक, कुषाण, हूण, मुसलमान और अंग्रेज।

ऐतिहासिक युग में ही विदेशी लोगों ने भारत पर आक्रमण किया जिसमें सर्वप्रथम फारस के निवासियों ने हम पर आक्रमण किया। परसियन लोग भी आर्यों की एक शाखा थे। ईस्वी पूर्व छठीं शताब्दी में फिर ये लोग एक दूसरे के सम्पर्क में आये जब डेरियस ने भारत पर आक्रमण किया और उसके कुछ भाग जीतकर उसे फारस के साम्राज्य का एक अंग बना लिया। ईस्वी पूर्व 326 में सिकन्दर ने जो यूनान का रहने वाला था, भारत पर आक्रमण कर दिया और 19 माह तक निरन्तर

*शोध छात्र, इतिहास विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

युद्ध करता रहा पर यकायक उसे लौट जाना पड़ा। सिकन्दर की मृत्यु के बाद बैक्ट्रिया के यूनानियों ने भारत पर कई बार आक्रमण किया और पंजाब के कुछ भागों पर अपना राज्य स्थापित कर लिया।

ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दी में शकों का भारत पर आक्रमण हुआ और पंजाब, मथुरा, काठियावाड़ प्रायद्वीप में अपना राज्य स्थापित कर लिया। अन्त में भारतीयों में इनका सम्मिश्रण हो गया। ईस्वी पूर्व पहली शताब्दी में कुषाण भारत पर आक्रमण कर एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। कनिष्क प्रथम जो कुषाण वंश का संस्थापक था- बौद्ध धर्म के प्रति काफी सहिष्णु था। इसके वंशजों में एक ने वासुदेव नाम रखा। अन्य विदेशियों के समान ये सब भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति को स्वीकार कर लिये थे। ईस्वी सन् की पाँचवीं तथा छठीं शताब्दी में हूण की एक शाखा ने जिन्हें श्वेत हूण कहा जाता था भारत पर आक्रमण कर दिया। हूण लोग भी अन्य विदेशियों की भाँति भारतीयों में मिल गये और सभ्यता और संस्कृति को स्वीकार कर लिया। आठवीं शताब्दी के आरम्भ से ही मुसलमानों के आक्रमण भारत पर प्रारम्भ हो गये और इसका मुख्य कारण भारत के हिन्दू और बौद्ध एक दूसरे के विरोध में उठ खड़े हुए थे। परिणाम यह हुआ कि अरबों के सिन्ध विजय से भारत में इस्लाम धर्म का बीजारोपण हुआ। अतः देश की एकता भंग हो गयी। भारत में आगे चलकर इस्लाम धर्म का प्रचार हो जाने पर हिन्दू-मुस्लिम समस्या एक उग्र रूप धारण कर ली तथा अन्त में देश की राजनीतिक एकता का बलिदान करके पाकिस्तान के निर्माण में सहायक सिद्ध हुई।

आज सभी भारतवासी भारतभूमि को मातृभूमि मानते हैं और 'जननी जन्मभूमिश्च-स्वर्गादपि गरीयसी' में पूर्ण विश्वास रखते हैं जिसका अर्थ है मातृभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। राष्ट्रीय एकता से ओत-प्रोत 'वन्देमातरम्' और 'जन-गण-मन अधिनायक' को राष्ट्रीय गीत के रूप में अपनाया जाना तथा 'जयहिन्द' कहकर एक दूसरे का अभिवादन करना वर्तमान युग में प्राचीन काल के भारतीय विचारों का प्रतिरूप है। और, यही कारण है कि 1962 ई. के चीनी और 1965 के पाकिस्तानी आक्रमणों में भारतवासियों ने विभिन्न सैद्धान्तिक, जातीय, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक तथा धार्मिक मतभेदों को भूलकर एक राष्ट्र के रूप में मिलकर दुश्मनों के दाँत खट्टे कर दिये थे।

भारत की संस्कृति और सभ्यता की एक अन्य विशेषता यह रही है कि बार-बार प्रहारों के बावजूद यह नष्ट नहीं हो सकी। विदेशी आक्रमणकारी आये और गये, मुसलमानों के अधीन भारत लगभग 650 वर्षों तक रहा, पर इसकी सभ्यता और संस्कृति का मूल लगभग वही रहा। भारतीयों के लिए धर्म से बढ़कर कुछ नहीं है। धर्म रक्षा के लिए जान देने वाले लोगों की कथाओं से इतिहास भरे पड़े हैं। गुरु गोविन्द सिंह के दोनों किशोर बालकों को आज कौन नहीं जानता जिन्होंने औरंगजेब के सभी प्रलोभनों का तिरस्कार करते हुए धर्म की रक्षा के लिए अपना जीवन दान दिया। भारत की जनसंख्या में यद्यपि हिन्दुओं की संख्या सर्वाधिक है तथापि यहाँ विभिन्न धर्मों के मानने वाले लोगों

का निवास है। आज की जनसंख्या में हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, जैन, सिख और ईसाई मतावलम्बियों की प्रमुखता है। अविभाजित भारत में 9 करोड़ इस्लाम धर्मावलम्बियों का निवास था। ये मुसलमान बहुत थोड़ी संख्या में हमारे देश में आक्रमणकारी और व्यापारी के रूप में आये थे पर भारत में आ जाने के बाद यहाँ के मूल निवासियों को कई प्रकार से धर्म परिवर्तन कराकर अपनी संख्या बढ़ाते गये।

जैसा कि हम जानते हैं कि 700 ई. से 1200 ई. के बीच पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रान्त की ओर से होने वाले खतरे की गहराई को भारतीय राजाओं ने कभी भी ठीक तरह से नहीं समझा। यह सत्य है कि जब कभी भारत के पश्चिमोत्तर राज्यों की सुरक्षा सुदृढ़ रही भारत का गौरव बढ़ा पर जब कभी भी पश्चिमोत्तर सीमान्त की सुरक्षा कमजोर हुई सम्पूर्ण भारत के लिए भयंकर स्थिति उत्पन्न हो गयी।

712 ई. में सिन्ध पर हुए मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के समय नागभट्ट प्रथम ने दाहिर की सहायता न कर अदूरदर्शिता का परिचय दिया। परिणाम यह हुआ कि भारत भूमि पर सर्वप्रथम इस्लाम का बीजारोपण हो गया और भविष्य में आने वाले तुर्क आक्रमणकारियों का रास्ता खुल गया। तुर्कों का आक्रमण भारत के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। भारत भूमि में अन्दर तक प्रवेश पाने का प्रथम श्रेय गजनवी वंश के सुल्तान मुहम्मद गजनवी को था। उसने गुजरात के प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर को ध्वस्त करवाया और बर्बरतापूर्ण लूटपाट कर लगभग 50,000 हिन्दुओं को उसने मौत के घाट उतरवाया। इसके आक्रमण के विरोध में भारत में संघ तो बना पर राष्ट्रीय आधार पर प्रतिरक्षा की दृष्टि से उसे संगठित नहीं किया गया। पर तत्कालीन भारतीय गाहड़वाल और चाहमान राजाओं ने बड़ी ही वीरता से इनका मुकाबला कर इन्हें भारत की भौगोलिक सीमा से बाहर कर दिया।

पुनः मुहम्मद गजनवी ने भारत पर आक्रमण 1027 ई. में किया जो उसका अन्तिम आक्रमण था। मुहम्मद गोरी ने अपना प्रथम आक्रमण 1157 ई. में किया। अतः इन दोनों विदेशी मुसलमानों के आक्रमण में 130 वर्षों का अन्तर है। परन्तु तत्कालीन भारतीय राजवंशों ने कुछ भी सीखने का प्रयास नहीं किया। यद्यपि राजपूत शासकों में मुख्यतः पृथ्वीराज ने अपनी प्रतिरोधात्मक नीति के तहत गोरी को कई बार हराया था पर भारत पर वह बार-बार आक्रमण करता रहा। मुहम्मद गोरी के आक्रमण का मुख्य उद्देश्य था हिन्दू धर्म के मन्दिरों को तोड़वाना तथा हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन कर इस्लाम में ले आना। उसने हिन्दू राजाओं में फूट डलवाने में सफल होकर तराइन के द्वितीय युद्ध में सफलता प्राप्त कर ली। पृथ्वीराज की हार हो गयी तथा राजपूत वंश का शासन भारत से समाप्त हो गया और 1206 ई. में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो गयी। सन् 1206 ई. में गुलाम वंश की स्थापना कुतुबुद्दीन से लेकर कट्टर मुगल शासक औरंगजेब की मृत्यु 1707 ई. तक भारतवर्ष पर विभिन्न इस्लामधर्मी राजाओं ने शासन किया। मुगल शासन काल में स्वदेश, स्वधर्म, स्वतन्त्रता और स्वाभिमान के लिए सर्वस्व न्योछावर करने वाले महाराणा प्रताप और राणा सांगा जैसे महान् देशभक्तों

ने मुगलों के खिलाफ युद्ध छेड़कर उनके दाँत खट्टे कर दिये थे। मुगलों के शासन काल में राजगद्दी प्राप्त करने के लिए शासकों के पुत्रों में युद्ध हुआ करता था, पिता को बन्दी बनाकर उत्तराधिकारी की घोषणा करवाना आम बात हो गयी थी। अत: औरंगजेब ने अपनी वसीयत में अपने साम्राज्य को तीन बेटों के लिए तीन हिस्सों में बाँट दिया था। प्रसिद्ध विद्वान् और चिन्तक श्री प्रियंवद ने अपनी पुस्तक 'भारत विभाजन की अन्त:कथा' (पृ. 48) में इसे देश के विभाजन का पहला अभिलेखीय प्रमाण माना है।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद लगभग 13 वर्षों में राजगद्दी प्राप्त करने के लिए सात बड़े खूनी युद्ध किये गये थे जिस कारण मुगल बादशाह की आन्तरिक सैनिक शक्ति और तन्त्र छिन्न-भिन्न हो गया था। मुगल शासन अब अध:पतन की ओर बढ़ रहा था। औरंगजेब का पौत्र मुहम्मद शाह जो औरंगजेब के पुत्र बहादुर शाह का पुत्र था एक अयोग्य शासक था तथा वह भारतीय राजनीति और मुगलवंश के पतन की पराकाष्ठा माना जाता है। इसके ही शासन काल में नादिर शाह का दिल्ली पर आक्रमण हुआ। वह केवल 50 लाख रुपये लेकर दिल्ली से लौटना चाह रहा था पर मुहम्मद शाह ने इस रकम को न देकर उसके दूत की हत्या करवा दी। इससे नाराज होकर नादिर शाह ने मुहम्मद शाह को बन्दी बना लिया। इस पर मुहम्मद शाह के सिपाहियों ने अफवाह फैला दी कि नादिर शाह भी मर गया है और उसके कुछ सैनिकों को मार दिया गया है। यह अफवाह जब नादिर शाह को मालूम हुआ तो उसने दूसरे ही दिन दिल्ली में अपने शेष सिपाहियों के द्वारा कत्लेआम का आदेश दे दिया। इस कत्लेआम में मरने वालों की संख्या 20,000 है। नादिर शाह दिल्ली में 57 दिनों तक रहकर 70 करोड़ नकद के साथ-साथ कोहिनूर हीरा और मयूर सिंहासन लेकर अपने देश को लौटा। नादिर शाह द्वारा मुहम्मद शाह को पुन: दिल्ली की गद्दी पर बैठाने के लिए मुहम्मद शाह ने सिन्धु के पश्चिमी भाग का प्रान्त तथा पूरा अफगानिस्तान ही दे दिया। 1748 ई. में मुहम्मद शाह की मृत्यु हो जाती है। 1748 ई. से 1767 ई. के बीच अहमद शाह अब्दाली का आक्रमण हुआ।

अब दिल्ली की राजनीतिक अवस्था दिनानुदिन गिरती जा रही थी। देश के पूर्वी भाग बंगाल में अंग्रेज व्यापारियों का आगमन तेजी से होने लगा। सन् 1615 ई. से ही सर टॉमस रो इंग्लैण्ड के राजा तथा कम्पनी के प्रतिनिधि के रूप में भारत आया था। उस समय शाहजहाँ का पुत्र शुजा (जो औरंगजेब का भाई था) बंगाल का गवर्नर था उसने केवल 3,000 रुपये के भुगतान पर अंग्रेजों को बंगाल में व्यापार करने की अनुमति दे दी थी। इस प्रकार सन् 1700 ई. तक अंग्रेज हर प्रकार से मुगल शासकों के अधीन थे पर सन् 1757 ई. में प्लासी की लड़ाई में विजयी होकर क्लाइव ने अंग्रेजी शासन की नींव रखी तथा 1764 ई. का बक्सर का युद्ध तो अंग्रेजों को सम्पूर्ण अधिकार दे दिया। जो अंग्रेज जिन्हें फिरंगी भी कहा जाता था- वे भारतवर्ष में मिर्च-मसालों के व्यापार के लिए आये और देश की राजनीतिक अवस्था का लाभ उठाकर हमारे देश के भाग्य विधाता बन बैठे। जब

उन्हें मुगल वंश के पतनोन्मुख शासकों द्वारा दीवानी के अधिकार प्राप्त हो गये तो स्थायी बन्दोबस्त तथा अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से हिन्दू और मुसलमानों के बीच अनायास ही दो अलग समाजों, धर्मों और आर्थिक हितों के बीज बो डाले जिसका परिणाम अन्ततः हमारे देश को वे दो टुकड़ों में सदा-सदा के लिए बाँटकर अपने देश को पुनः वापस हो गये।

सन् 1857 ई. आते-आते अंग्रेज भारतीयों को भ्रष्ट तथा भारतवर्ष अंग्रेजों के लिए है- ऐसा कहना प्रारम्भ कर दिया था। डलहौजी उस उक्ति की पराकाष्ठा था। इसी के विरोध में 1857 ई. का भारतीयों का विरोध इसकी स्वाभाविक परिणति थी। अंग्रेजी इतिहासकार इसे सामान्य सिपाही विद्रोह मानते हैं पर इसके विपरीत सावरकर इसे भारत की स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम मानते हैं। सावरकर द्वारा सन् 1909 ई. में 'The Indian War of Independence 1857' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ था। इस पुस्तक को अंग्रेजों ने जब्त कर लिया क्योंकि इस पुस्तक में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देने के लिए सावरकर ने आह्वान किया था। अंग्रेज इसे जनता में प्रचार नहीं चाहते थे क्योंकि भारतीय जनता की राष्ट्रीय भावनाओं को प्रखर करने के उद्देश्य से इस पुस्तक की रचना की गयी थी। सन् 1923 ई. में सावरकर को अंग्रेजों से माफी माँगनी पड़ी थी जिस कारण अब मुसलमान लोग सावरकर को अंग्रेजों का शत्रु न मानकर मुसलमानों के शत्रु मानने लगे। पुस्तक में हिन्दू धर्म और हिन्दू राज का एक अन्तर्निहित स्वर है जो स्वधर्म और स्वराज का पर्याय माना गया।

1857 ई. के विद्रोह से दो महत्त्वपूर्ण परिणाम हमारे समक्ष उपस्थित हुए- पहला- देश से मुगल सम्प्रभुता की समाप्ति और दूसरा- हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग धर्मों, सम्प्रदायों और राष्ट्रीयताओं के रूप में पहचाने जाने लगे- जो इसके पहले कभी नहीं हुआ था। सन् 1857 ई. की क्रान्ति के बाद सन् 1907 ई. लगभग 50 वर्षों तक देश की राजनीतिक, समाज व संघर्ष चेतना में एक गहरा सन्नाटा हमें देखने को मिलता है।

इसी बीच भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 ई. में हुई। इसका पहला सत्र 28 दिसम्बर 1885 ई. को बम्बई में हुआ। कांग्रेस अपने स्थापना काल से ही यह कहती रही कि वह सम्पूर्ण देश का यानी मुसलमानों का भी प्रतिनिधित्व करती है पर दो ही वर्षों के बाद यानी 1887 ई. से ही मुसलमान कांग्रेस से अलग होना प्रारम्भ हो गये। कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में 28 दिसम्बर 1886 ई. को दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में तथा तीसरा अधिवेशन मद्रास में 28 दिसम्बर 1887 ई. को बदरुद्दीन तैयब की अध्यक्षता में हुआ। कांग्रेस ने एक मुसलमान को अध्यक्ष बनाकर सैयद अहमद खाँ की आशंकाओं एवं प्रश्नों का सीधा उत्तर दिया था। अलीगढ़ यूनिवर्सिटी का प्रिन्सिपल बेक मुस्लिम बौद्धिक जगत् को किसी भी तरह के राजनीतिक संघर्ष से जुड़ने या कांग्रेस से जुड़ने का निरन्तर विरोध कर रहा था। बेक के बाद थियोडोर मौरीसन यूनिवर्सिटी का प्रिन्सिपल हुआ। उसने भी बेक की नीतियों को आगे बढ़ाया। हिन्दू-मुस्लिम खाई को चौड़ा करने के

लिए ये दोनों प्रिन्सिपल सदा-सदा के लिए याद किये जाते रहेंगे।

सर सैयद अहमद खाँ ने भी कांग्रेस के मुकाबले एक अलग संस्था बनाना प्रारम्भ कर दिया जो किसी भी प्रकार के भारतीयता के विरोध में मुस्लिम हितों को महत्त्व दे। अत: Indian Patriotic Association नामक संस्था की स्थापना सन् 1888 ई. में हुई। सन् 1889 ई. में सर सैयद अहमद खाँ की मृत्यु हो गयी। अत: 20-21 अक्टूबर 1901 ई. में लखनऊ में हामिद अली के निवास पर भारत के प्रमुख मुसलमानों की एक सभा हुई। इस सभा के प्रस्ताव ने हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई की भावनाओं को तोड़ दिया वरन् भारत के मुसलमानों को एक ऐसी संस्था बनानी चाहिए जो उनकी सामाजिक और राजनीतिक अवस्थाओं को विकसित करने में सहायक हो सके। इनका दूसरा मुख्य उद्देश्य यह था कि भारतीय मुसलमानों को कांग्रेस से अलग रहना चाहिए क्योंकि कांग्रेस यह चाह रही थी कि चुनाव द्वारा सरकार बनाना और मुसलमानों को प्रतियोगिता परीक्षा में बैठकर सरकारी नौकरी में प्रवेश पाना था- ये दोनों मुसलमानों के लिए हानिकारक है।

सन् 1902-1903 ई. आते-आते ऐसा स्पष्ट होने लगा कि मुसलमान केवल कांग्रेस का विरोध ही नहीं कर रहे थे वरन् वे एक राजनीतिक मुस्लिम संस्था बनाने की भी सोच रहे थे। बंगाल का विभाजन सन् 1905 ई. में हुआ। यह मुसलमानों के अलग संगठन बनाने की भावनाओं और आवश्यकताओं के लिए आग में घी का काम किया। सन् 1906 ई. में मुस्लिम लीग का जन्म हुआ जो कांग्रेस के हर क्रिया-कलापों को चुनौती देने का काम कर रहा था।

प्रारम्भ में बंगाल विभाजन का विरोध हिन्दू और मुसलमान दोनों ने किया। इन दोनों ने मिलकर 'वन्देमातरम्' भी गाये तथा वन्देमातरम् के झण्डे भी लहराये। कई स्थानों पर तो वन्देमातरम् तथा अल्ला हो अकबर के नारे भी साथ-साथ लगाते थे। लेकिन ब्रिटिश हुकूमत पूरी तरह इस विभाजन के समर्थन में मुसलमानों को रखना चाहता था जिससे कि उसके विभाजन का प्रजातान्त्रिक औचित्य सिद्ध हो सके।

12 दिसम्बर 1911 को दिल्ली में जॉर्ज पंचम के दरबार में दो महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ हुईं- प्रथम यह कि बंगाल विभाजन वापस ले लिया गया और द्वितीय यह कि देश की राजधानी अब कलकत्ता के बदले दिल्ली होगी। इन दोनों घोषणाओं से मुसलमान अधिक उग्र हो गये और उन्होंने इस दिन को शोक दिवस के रूप में मनाया। 4 मार्च 1912 को मुस्लिम लीग के पाँचवें अधिवेशन में मुहम्मद अली ने यह प्रस्ताव रखा कि मुसलमानों को विभाजन रद्द करने से गहरा दुख है। उन्हें विश्वास है कि ब्रिटिश सरकार बंगाल में मुसलमानों के हित सुरक्षित रखने के कदम शीघ्र ही उठायेगी।

बंगाल विभाजन के बाद 1 अक्टूबर 1906 को 35 कथित महत्त्वपूर्ण और सम्मानित मुसलमानों का एक प्रतिनिधिमण्डल वाइसराय लॉर्ड मिण्टो से शिमला में मिलकर एक ज्ञापन जिसमें 4,000 मुसलमानों के दस्तखत थे- दिया। लॉर्ड मिण्टो ने मुसलमान समुदाय को आश्वस्त किया कि

उनके सामुदायिक हित एवं अधिकार राज व्यवस्था में सुरक्षित रखे जायेंगे। मुसलमानों का यह प्रयास भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। ये मुसलमान प्रतिनिधि अब राजनीतिक मुसलमानों के रूप में बदल चुके थे। इस कारण सन् 1908 ई. में इंग्लैण्ड में भारत सरकार के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट से मुसलमानों को अलग निर्वाचक मण्डल दिये जाने की संस्तुति की। सन् 1909 ई. से यह लागू भी हो गया तथा कांग्रेस ने भी मुसलमानों की इस पृथक निर्वाचक मण्डल की माँग को सिद्धान्त रूप से स्वीकृति दे दी। इस स्वीकृति को तिलक और जिन्ना ने भी अपनी सहमति दी थी। उस समय तिलक पर यह आरोप लगा कि वे मुसलमानों के हित में बहुत झुक गये हैं। प्रान्तीय कौंसिलों में हर प्रान्त के लिए मुसलमानों का प्रतिनिधित्व निश्चित कर दिया गया था तथा केन्द्रीय परिषद् में एक तिहाई मुसलमानों के प्रतिनिधित्व पर सहमति हुई थी और यहाँ से ही प्रारम्भ होता है अलग राष्ट्र के माँग की कहानी। ब्रिटिश हुकूमत ने बंग विभाजन के बाद कांग्रेस के बढ़ते प्रभाव, जन समर्थन व उग्र विरोध को देखकर तय कर लिया था कि मुसलमानों को कांग्रेस से पूरी तरह अलग रखना व इसके मुकाबले में खड़ा करना सर्वाधिक जरूरी शासकीय नीति होनी चाहिए।

कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच सहयोग में सबसे बड़ी भूमिका जिन्ना की थी कि मुसलमान और दूसरे सम्प्रदायों के बीच मित्रता और एकता को प्रोत्साहित किया जाय। सन् 1913 के करांची अधिवेशन में कांग्रेस ने जिन्ना के इस प्रस्ताव का स्वागत किया। जिन्ना ने सन् 1915 ई. में यह परम्परा शुरू की कि जिस शहर में कांग्रेस का अधिवेशन हो उसी शहर में मुस्लिम लीग का भी अधिवेशन हो जिससे दोनों दलों के सदम्य एवं श्रोतागण एक दूसरे के कार्यक्रमों में भाग ले सकें। सन् 1920 ई. के नागपुर में कांग्रेस अधिवेशन में राजनीति में धर्म और साम्प्रदायिकता के समावेश और ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध असंवैधानिक माध्यमों को आन्दोलन में अपनाये जाने के विरोध में जिन्ना इस आन्दोलन को गाँधी की हिमालयी भूल कहकर असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पारित होने पर कांग्रेस से अलग हो गये।

तिलक के देहावसान के बाद गाँधी जी का आगमन यकायक भारतीय राजनीति में हो जाता है। उन्होंने ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध संघर्ष की घोषणा कर दी। उन्होंने 1921 के असहयोग आन्दोलन और खिलाफत आन्दोलन की संयुक्त भूमिका तैयार कर ली। इसका सारा श्रेय गाँधी एवं जिन्ना को जाता है क्योंकि 1913 ई. में लीग के उद्देश्यों में राष्ट्रवाद एवं अन्य समुदायों से सहयोग जोड़ने के लिए जिन्ना ने कहा तो गाँधी जी ने मुसलमानों की खिलाफत की लड़ाई के साथ जुड़कर करोड़ों मुसलमानों का विश्वास अर्जित किया और उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ा। गाँधी जी का एकमात्र लक्ष्य था ब्रिटिश शासन को भारत से हटाना। तिलक ने भी सन् 1916 ई. में यह महसूस किया कि भारत में मुख्य शत्रु अंग्रेज हैं और उन्हें बाहर करना है तभी उन्होंने मुस्लिम लीग से समझौता किया था। गाँधी जी ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में खिलाफत को असहयोग से जोड़ दिया। पर जिन्ना

का ऐसा मानना था कि गाँधी अंग्रेजी साम्राज्य के संघर्ष से अलग होकर अपने धर्म की राजनीति में लग गये हैं। अत: जिन्ना सन् 1920 ई. में कांग्रेस से अलग होकर 1940 ई. के बाद सदा धर्म की राजनीति करते हुए अपने नये राष्ट्र के जनक बन गये।

चौरीचौरा में कुछ सिपाहियों की हत्या कर देने के बाद गाँधी ने इस असहयोग आन्दोलन को वापस ले लिया। सन् 1923 ई. में हिन्दू महासभा पुनर्गठित हुई और स्वामी श्रद्धानन्द एवं मदन मोहन मालवीय आदि ने मूल रूप में मुसलमानों के विरोध में शुद्धि कार्यक्रम चलाया। सावरकर का हिन्दुत्व प्रकाशित हुआ। जिन्ना राष्ट्रवाद, समानता, एकता, ब्रिटिश विरोध एवं संवैधानिक सुधारों के साथ अपनी छवि बनाने में लग गये थे पर कांग्रेस में उनका स्थान गौण ही रहा। मुसलमानों के एक वर्ग में उनकी लोकप्रियता घट रही थी।

देश में कम्युनिस्ट पार्टी के जन्म से युवाओं की नयी पीढ़ी ने हिंसक शक्ति और साधन पर सक्रिय संगठन बनाये। भगत सिंह इस युवा शक्ति के प्रेरणास्रोत बने। नेहरू और सुभाष भी इस युवा शक्ति को बढ़ावा देने लगे। हिन्दू एवं मुस्लिम कड़वाहट के बीच दोनों में एकता एवं सहमति के कई प्रयास हुए। इसी बीच इंग्लैण्ड से साइमन कमीशन भारत भेजा गया जिसके विरोध में मुस्लिम लीग के जिन्ना गुट एवं कांग्रेस के बीच सहमति बनी। साइमन कमीशन के बहिष्कार पर मदन मोहन मालवीय ने कहा कि ईश्वर ने यह अवसर दिया है कि हम सब संगठित हो इसका विरोध करें। इस पर जिन्ना की प्रतिक्रिया यह थी कि- "इंग्लैण्ड के विरुद्ध एक संवैधानिक युद्ध छेड़ दिया गया है। सुलह के लिए पहल हमारी ओर से नहीं की जायेगी। मैं अन्य हिन्दू नेताओं का भी स्वागत करता हूँ जिन्होंने कांग्रेस और महासभा के मंच से हमारी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया है।"

कांग्रेस और मुस्लिम लीग यह समझ रहे थे कि केवल साइमन कमीशन के बहिष्कार से अंग्रेज भारत से नहीं जा सकेंगे। अत: ऑल पार्टी कॉन्फ्रेन्स की एक मीटिंग बम्बई में कांग्रेस अध्यक्ष अंसारी ने बुलायी जहाँ मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमिटी गठित की गयी। उन्हें भारत के संविधान के आधारभूत सिद्धान्तों को पूरा करने के लिए कहा गया। यह नेहरू रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। नेहरू रिपोर्ट के समर्थन व विरोध को लेकर मुस्लिम लीग एकमत नहीं हो रहा था। कांग्रेस के अन्दर भी एक मत नहीं था। अन्तत: 31 दिसम्बर 1929 की आधी रात में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ और 26 जनवरी 1930 को सम्पूर्ण देश में प्रथम स्वाधीनता दिवस मनाया गया। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण देश में सम्पूर्ण स्वराज्य संकल्प लिया गया। पर जिन्ना ने इसका खुलकर विरोध किया इसलिए कि इस पूरे प्रसंग में मुसलमानों को, मुस्लिम लीग को और जिन्ना को इस महत्त्वपूर्ण कदम को उठाते समय पूछा नहीं गया। गाँधी ने दांडी यात्रा प्रारम्भ कर दी। जिन्ना ने अब कांग्रेस की इस राष्ट्रीय चेतना एवं गाँधी के व्यक्तिगत दांडी यात्रा से अपने को अलग कर लिया। गाँधी-इर्विन समझौता हुआ। गोलमेज कॉन्फ्रेन्स की तिथि निश्चित हो

गयी।

23 मार्च 1940 को लाहौर में हुए लीग के अधिवेशन में पारित प्रस्ताव को लाहौर प्रस्ताव को बाद में पाकिस्तान प्रस्ताव कहा जाने लगा। इस प्रस्ताव ने भारत और पाकिस्तान को दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को राजनीतिक तौर पर स्थापित कर दिया। जिन्ना ने मुसलमानों को संगठित होने का आह्वान किया। वह जानता था कि मुसलमान संगठित होकर एक स्वर में बात करेंगे तो अधिक शक्तिशाली होंगे और इससे हिन्दू-मुस्लिम समस्या का समाधान जल्दी निकल जायेगा।

सन 1937 ई. के चुनावों में कांग्रेस की अप्रत्याशित जीत, उसका राजनीतिक वर्चस्व व महत्त्वाकांक्षाएँ उनसे टकराती मुसलमानों की भयातुर शंकाएँ व हिन्दूवादी संगठनों के आक्रामक बयान ही पाकिस्तान के निर्माण का मुख्य कारण बना। दिसम्बर 1939 ई. में दूसरा विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ तथा 15 अगस्त 1945 को जापान के समर्पण करने के बाद यह युद्ध अन्तिम रूप से समाप्त हो गया। पर ब्रिटिश सरकार ने भारत को भी इस युद्ध में शामिल होने की घोषणा कर दी। इस घोषणा के विरोध में कांग्रेस ने गहरा असन्तोष जाहिर किया। कांग्रेस ने दो माँगें रखीं जिनके सन्तोषप्रद उत्तर पा जाने पर ही कांग्रेस युद्ध में ब्रिटिश सरकार को सहयोग देने पर विचार करेगी- माँग संख्या 1- ब्रिटिश सरकार इस युद्ध के उद्देश्यों को स्पष्ट करे तथा माँग संख्या 2- प्रजातन्त्र एवं भारत की स्वतन्त्रता व अधिकारों को लेकर ब्रिटिश सरकार अपनी नीति व लक्ष्य घोषित करे।

13 जनवरी 1940 को लिनलिथगो से मुलाकात में जिन्ना ने युद्ध में सहयोग करने के बदले में इस बात का आश्वासन लिया कि इस युद्ध के पश्चात् संवैधानिक सुधारों और पुनर्विचार में किसी भी प्रकार के ऐसे प्रस्ताव पर विचार नहीं किया जायेगा जो मुस्लिम लीग द्वारा स्वीकृत न हो। बंगाल और पंजाब की लीग सहयोगी सरकारों ने युद्ध में ब्रिटिश सरकार को सहयोग दिया। फरवरी 1940 ई. में गाँधी और लिनलिथगो की मुलाकात हुई पर कोई सकारात्मक हल नहीं निकला। अत: पटना में 28 फरवरी 1940 को कांग्रेस कार्य समिति ने पूर्ण स्वराज्य तथा एक संवैधानिक सभा के गठन द्वारा संविधान के निर्माण के अपने उद्देश्य को पारित किया। ब्रिटिश हुकूमत इस प्रस्ताव को मानने में असमर्थता दिखलाती है तो नागरिक अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया जायेगा। वाइसराय लिनलिथगो ने कांग्रेस, लीग और देशी रियासतों के चैम्बर और अन्य दलों से बात करके युद्ध में सबका सहयोग पाना चाहा। कांग्रेस का रुख साथ देने को नहीं था अत: लिनलिथगो ने जिन्ना को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया। 19 मार्च 1940 ई. को रामगढ़ के कांग्रेस अधिवेशन में पटना के इस प्रस्ताव पर मुहर लगा दी गयी और कांग्रेस की ओर से यह घोषणा हुई कि किसी भी रूप में युद्ध में भाग नहीं लेगी जब तक कि ब्रिटिश हुकूमत पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा न करे। गाँधी जी को नये आन्दोलन का नेतृत्व का अधिकार प्रदान कर दिया गया।

जैसा कि विदित है द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति की घोषणा 15 अगस्त 1945 को हुई।

लॉर्ड वेवल ने भारत में चुनावों की घोषणा 19 सितम्बर 1945 को कर दी। उसी दिन प्रधानमंत्री एटली ने रेडियो पर भाषण देते हुए कहा था कि भारतीयों को एक ऐसा संविधान तैयार करने की कोशिश करनी चाहिए जो सभी दलों को स्वीकार हो। भारतीय मुसलमानों का असली प्रतिनिधित्व लीग करती है अथवा कांग्रेस। मुस्लिम लीग ने यह चुनाव पाकिस्तान के नारे पर लड़ा। जिन्ना और दूसरे मुसलमान नेताओं की माँग थी कि पंजाब, सिन्ध, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त, बलूचिस्तान, बंगाल और आसाम का अपने सम्पूर्ण स्वरूप में अलग प्रभुसत्ता वाला राज्य बने जिसे पाकिस्तान कहा जाये। अत: इसे देखते हुए बहुत से मुसलमान लीग में शामिल होने लगे। जिन्ना ने बहुत जोर देकर कहा कि वह भारत का मामला दस मिनट में हल कर सकते हैं अगर गाँधी कह दें कि वे पाकिस्तान के निर्माण के लिए राजी हैं। जिन्ना ने कहा कि पाकिस्तान की हमारी सरकार सम्भवत: प्रान्तों की स्वायत्तता पर आधारित एक संघीय सरकार होगी।

दिसम्बर 1946 के अन्त में केन्द्रीय सभा के चुनाव परिणाम आये। गैर मुस्लिम सीटों पर कांग्रेस को 91.3 प्रतिशत हिस्सा मिला जबकि मुस्लिम सीटों पर मुस्लिम लीग को वोटों का 86.6 प्रतिशत हिस्सा मिला। यह महत्त्वपूर्ण बात थी कि मुस्लिम सीटों पर मुस्लिम लीग ने प्रत्येक सीट जीत ली। जो मुसलमान कांग्रेस से लड़े उनमें से कई की जमानत राशि भी जब्त हो गयी। जिन्ना इस जीत से मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि बन गया। अत: इस जीत की खुशी में मुसलमानों की एकजुटता को प्रदर्शित करने के लिए लीग ने 7 अप्रैल 1946 को दिल्ली में अपने सभी विधायकों का सम्मेलन बुलाया। 9 अप्रैल 1946 को पाकिस्तान के लिए एक प्रस्ताव पास किया गया।

इसके पूर्व 28 जनवरी को वाइसराय ने घोषणा की थी कि वह अपनी नयी कार्यकारी समिति का गठन करेंगे जिसमें सभी दलों के नेता होंगे तथा संविधान बनाने के लिए एक समिति भी बनायेंगे। कांग्रेस ने तो इसका स्वागत किया पर जिन्ना का विरोध यह था कि लीग किसी कामचलाऊ कार्रवाई में भाग नहीं लेगी जब तक पाकिस्तान का सिद्धान्त तत्काल मान नहीं लिया जाता है।

बम्बई में नौसैनिकों का विद्रोह 18 फरवरी 1946 को हो गया जिसमें लगभग 250 लोग मारे गये थे। इंग्लैण्ड से एक कैबिनेट मिशन जिसमें तीन सदस्य थे, भारत भेजा गया जिन्होंने भारत आकर विभिन्न दलों के नेताओं से बैठकें प्रारम्भ कर दीं। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से 3 अप्रैल को मिशन से मुलाकात की। आजाद ने कहा कि भारत का विभाजन कांग्रेस नहीं चाहती है। मुसलमान जिस तरह का पाकिस्तान माँग रहे हैं- बहुतों को तो समझ ही नहीं आ रहा है कि वह क्या है? गाँधी जी ने मिशन के एक सदस्य पैथिक लॉरेन्स से मुलाकात की थी। गाँधी जी ने कहा कि जिन्ना के साथ 18 दिनों तक बैठकें हुई हैं। वे स्वयं को मुसलमानों का हितैषी मानते हैं पर वह जिन्ना द्वारा माँगे गये पाकिस्तान की सार्थकता को समझने में असमर्थ हैं। गाँधी जी ने तो यहाँ तक कह डाला कि एक छोटे हिस्से को छोड़कर अधिकांश मुसलमान जनमानस धर्मान्तरण

निवासियों का है और वे भारतवर्ष में जन्मे पुरुषों के वंशज हैं। गाँधी जी स्वयं द्विराष्ट्र सिद्धान्त के विरोधी हैं।

यह मिशन तीन माह तक रहकर भारत के विभिन्न नेताओं से सम्पर्क कर वापस हो गया। जुलाई 1946 के प्रारम्भ में मौलाना अबुल कलाम आजाद के स्थान पर नेहरू कांग्रेस अध्यक्ष बनाये गये। कांग्रेस महासचिव की हैसियत से कृपलानी जी ने ही नेहरू के नाम को प्रस्तावित किया था। गाँधी जी का झुकाव पटेल के मुकाबले नेहरू की तरफ अधिक था जो अन्तरिम सरकार तथा स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री हो गये। पटेल इससे बड़े दुखी हुए तथा कृपलानी ने भी इसे अपनी भयंकर भूल मान ली। मौलाना आजाद ने भी अपनी पुस्तक में कृपलानी के पछतावे को स्वीकार किया है।

10 जुलाई 1946 को नेहरू ने एक प्रेस कॉन्फ्रेन्स में यह कहा कि संविधान सभा में वे क्या करेंगे इसके लिए वे स्वतन्त्र हैं। अत: जिन्ना ने नेहरू के इस बयान पर नाराजगी प्रकट करते हुए कहा कि नेहरू अपने अधिकार और कर्तव्य को ठुकरा रहे हैं। 14 अगस्त 1946 को जिन्ना का बयान आया कि मुसलमान उन स्थितियों को पूरी तरह समझ लें जिनका मुसलमान भारत में सामना कर रहा है और यह भी कि वे स्वयं को किसी भी हद तक अन्तिम स्थिति का सामना करने के लिए तैयार रखें। अत: जिन्ना के इस बयान से कलकत्ता में 16 अगस्त से 20 अगस्त तक हजारों की संख्या में नरसंहार हुआ। कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग इस नरसंहार के लिए एक दूसरे पर दोषारोपण कर रहे थे।

22 अगस्त को नेहरू ने वाइसराय को पत्र लिखा कि कांग्रेस मुस्लिम लीग के साथ मिलकर साझा सरकार बनाने को तैयार है पर इसका यह अर्थ नहीं कि इसके लिए लीग की हर माँग को अथवा उनके जिद्दी रवैये को मान लिया जाये।

24 अगस्त को गवर्नर जनरल की नयी कार्यकारिणी का गठन किया गया। अन्तरिम सरकार ने 2 सितम्बर 1946 को शपथ ली। शपथ की पहली सन्ध्या में ही मुस्लिम सदस्य सर शफात अहमद खाँ के ऊपर हमला कर दिया गया जिस कारण बम्बई और अहमदाबाद में साम्प्रदायिक झगड़े हुए। 7 सितम्बर को नेहरू का रेडियो प्रसारण हुआ। 8 सितम्बर को लन्दन डेली मेल के प्रतिनिधि से जिन्ना ने कहा मुझको छुरा भोंका गया है और सान्त्वना से खून बहना बन्द नहीं किया जा सकता।

वाइसराय वेवल से 16 सितम्बर तथा 25 सितम्बर को मिलकर जिन्ना ने सारी स्थितियों को स्पष्ट किया। 26 सितम्बर को नेहरू की मुलाकात वेवल से हुई। नेहरू ने कहा कि उन्हें विश्वास है कि यदि सारा मामला होशियारी और समझदारी से निपटाया जाये तो लीग के सरकार और संविधान सभा में शामिल होने पर समझौता हो जायेगा। वाइसराय ने गाँधी से भी मुलाकात की। उन्होंने गाँधी

को अपनी और जिन्ना की बातचीत का सारांश बताया और उनको भी नेहरू का दिया हुआ तर्क दिया। गाँधी ने स्पष्ट किया कि उचित यही है कि नेहरू एवं जिन्ना आपस में मिलकर समस्या को तय करें।

22 मार्च 1947 को माउण्टबेटन भारत के चौंतीसवें तथा अन्तिम ब्रिटिश गवर्नर जेनरल के रूप में आ गये। माउण्टबेटन से गाँधी की मुलाकात हुई। गाँधी जी ने कहा कि जिन्ना और मुस्लिम लीग को केन्द्र में सरकार बनाने को कहा जाये। जिन्ना देश के प्रधानमन्त्री बनकर जिस रूप में देश चलावें- चलाने दें। माउण्टबेटन ने पूछा कि क्या जिन्ना चाहेंगे। गाँधी ने कहा कि जिन्ना कहेंगे- आह! फिर वही कपटी गाँधी। गाँधी ने माउण्टबेटन से कहा कि आपको दृढ़ होना पड़ेगा क्योंकि आपके पूर्ववर्ती जितने भी वाइसराय आये उन सबों ने ब्रिटिश सरकार की 'फूट डालो और राज करो' की नीति में ऐसी स्थितियाँ पैदा कर दी हैं कि देश में अब यही विकल्प दिखता है कि कानून व्यवस्था को बनाये रखने के लिए ब्रिटिश शासन जरूरी है अन्यथा देश में खून की नदियाँ बह जायेंगी।

गाँधी के इस सुझाव से ब्रिटिश नौकरशाही और कांग्रेसी खेमे में खलबली मच गयी क्योंकि अंग्रेज भारत का विभाजन ही चाह रहे थे और जिन्ना अगर असफल हो जाते हैं तो सत्ता पूरी तरह से कांग्रेसी हो जायेगी- कांग्रेस अंग्रेजों के खिलाफ है। पाकिस्तान बन जाने से अंग्रेज वहाँ आसानी से ठहरकर भारत को बरबाद करने में लगे रहेंगे। पटेल भी मानसिक रूप से देश के विभाजन को चाह रहे थे। नेहरू भी यही चाह रहे थे कि बार-बार के इस घुटन से छुटकारा पाने के लिए देश ही दो भागों में बँट जाये। 5 अप्रैल को वाइसराय के कर्मचारियों ने नेहरू को बतलाया कि वाइसराय ने गाँधी के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया है। गाँधी ने कांग्रेस कार्यसमिति को भी समझाया था। गाँधी कहते रहे कि विभाजन से समस्याएँ उत्पन्न होंगी पर गाँधी की बातों को किसी ने भी स्वीकार नहीं किया। गाँधी ने माउण्टबेटन को इन सब बातों की जानकारी दे दी कि कांग्रेस कार्यसमिति ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया है। गाँधी ने यह भी कहा कि माउण्टबेटन अब इन तथ्यों पर सारी बातचीत कांग्रेस कार्यसमिति से करें। अब कांग्रेस और गाँधी अलग-अलग विचारों से ग्रसित हो गये हैं। माउण्टबेटन को गाँधी ने यह भी कह दिया कि समझौते की चर्चा में उन्हें न रखें। इस बात की खबर गाँधी ने सरदार पटेल को भी दे दी। माउण्टबेटन ने गाँधी एवं जिन्ना के अतिरिक्त प्रत्येक महत्त्वपूर्ण दल के नेताओं से मिलकर भारत के बँटवारे पर चर्चा की। सामूहिक एवं अलग-अलग रूप से इन समस्त साक्षात्कारों के बाद माउण्टबेटन ने विभाजन और सत्ता हस्तान्तरण की गहरी जटिलता को समझा। नेहरू ने अपने एक भाषण में ऐसा भी कह दिया था कि मुस्लिम लीग पाकिस्तान ले सकती है अगर वह इसे लेना चाहे पर इसी शर्त पर कि वह अपने साथ भारत का वह हिस्सा नहीं ले जायेगी जो पाकिस्तान में नहीं जाना चाहता। जिन्ना ने यह कहा कि बंगाल और

पंजाब नहीं बँटना चाहिए। अगर बँटते हैं तो सारे प्रान्त भी उसी प्रकार बाँट दिये जायें। इसका उत्तर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने दिया कि 1940 के लाहौर अधिवेशन में लीग ने सिर्फ बंगाल और पंजाब के विभाजन की बात कही थी इसलिए उन प्रान्तों के विभाजन की बात करने का कोई औचित्य नहीं है जहाँ मुस्लिम बहुल संख्या नहीं है। अगर विभाजन होना ही है तो बंगाल व पंजाब का और सेना का हो। इसी शोर में सिखों के समूह ने अलग खालिस्तान की माँग कर दी और पठानों के एक समूह ने एक अलग पठानिस्तान की माँग कर दी।

माउण्टबेटन को यह महसूस हो गया कि देश में अराजकता की स्थिति उत्पन्न होने जा रही है अत: उसने 3 जून 1947 को भारत विभाजन की घोषणा कर दी। नेहरू और जिन्ना ने बारी-बारी से भाषण देकर अन्त में जयहिन्द और पाकिस्तान जिन्दाबाद का नारा दिया। माउण्टबेटन ने विभाजन की तारीख भारत के लिए 15 अगस्त और पाकिस्तान के लिए 14 अगस्त निश्चित कर दी। मुस्लिम लीग की बैठक में जिन्ना को यह अधिकार मिला कि योजना में वर्णित बुनियादी सिद्धान्तों के आधार पर उचित रूप में भारत के बँटवारे को आगे बढ़ाएँ। इसके विरोध में अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति की बैठक 14-15 जून को हुई। गोविन्द वल्लभ पन्त ने यह प्रस्ताव रखा कि 3 जून की योजना को हम स्वीकार करें या आत्महत्या। प्रस्ताव का अनुमोदन आजाद ने किया। आजाद पन्त से असहमत थे कि देश का बँटवारा 16 मई की कैबिनेट मिशन योजना से अच्छा समाधान है। प्रस्ताव का विरोध पुरुषोत्तमदास टण्डन ने राष्ट्रवादी मुसलमानों ने और उन प्रान्तों के हिन्दू प्रतिनिधियों ने किया जो पाकिस्तान में जा रहे थे। टण्डन ने कहा पाकिस्तान में हिन्दू भय में जीएँगे और भारत में मुसलमान।

कांग्रेस के समक्ष बड़ी समस्या थी। कांग्रेस ने लीग के सामने घुटने टेक दिए और समर्पण कर दिया ऐसी बातों के विरोध में नेहरू ने यह कहा कि निर्दोष व्यक्तियों की हत्या से यह अच्छा है कि देश का विभाजन हो। अंग्रेज तो चाह ही रहे थे कि देश से जाने से पहले इसे दो राष्ट्रों में बाँट दें और मुस्लिम लीग की हठधर्मिता ने तो आग में घी का काम किया; क्योंकि यह गुट तो देश को तोड़-फोड़ की धमकी दे रहा था। पटेल ने भी नेहरू का समर्थन किया क्योंकि मुस्लिम लीग की अड़ंगेबाजी से छुटकारा पाने का कोई और रास्ता नहीं रह गया था। पटेल ने आगे कहा कांग्रेस पाकिस्तान के विरुद्ध है फिर भी सदन के समक्ष जो प्रस्ताव है वह विभाजन को स्वीकार करता है। इस पर गाँधी ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन कर दिया यह कहते हुए कि कांग्रेस पाकिस्तान के विरुद्ध थी और वे स्वयं उनमें हैं जिन्होंने प्रारम्भ से ही हिन्दुस्तान के बँटवारे का विरोध किया है। नौ घण्टे तक इस बँटवारे के विरोध में बहस चलती रही। इसी अवसर पर कांग्रेस अध्यक्ष जे.बी.कृपलानी ने कुछ उपद्रवग्रस्त भागों का विवरण प्रस्तुत किया जो हृदय को दहला देने वाली सूचना थी।

गाँधी सदा यह कहते रहे कि विभाजन मेरी लाश पर ही होगा पर अब गाँधी को सुनने वाला

कोई नहीं था। दंगों का बोलबाला हो गया। सुहरावर्दी बंगाल में था जिसके पास गाँधी विभाजन रोकने की वकालत कर रहे थे और दंगाग्रस्त क्षेत्रों में शान्ति हो सके इसका भी प्रयास करते रहे। वे माउण्टबेटन से मिलने गये पर माउण्टबेटन से मिलने पर हतोत्साहित हो गये। माउण्टबेटन ने कहा कि मि. गाँधी कांग्रेस अब आपके नहीं वरन् मेरे साथ है। इस पर गाँधी ने कहा कि देश मेरे साथ है पर अब 78 वर्ष की अवस्था पर पहुँचे गाँधी को देश में भ्रमण करना असम्भव सा लगता था। उनके विश्वस्त सेनानायक भी अब उनसे दूर होकर कौन देश का नेतृत्व संभालेगा इसमें लगे हुए थे। गाँधी अब अकेले पड़ गये और 3 जून 1947 से 15 अगस्त 1947 तक देश के विभिन्न हिस्सों में कई दंगे हुए। हजारों की संख्या में लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया।

जब हम विभाजन की प्रक्रिया का गहन अध्ययन करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों देशों के बीच जन्म से ही आपसी घृणा, असहयोग एवं दुराग्रह का प्रभाव बढ़ चुका था। 11 अगस्त 1947 को पाकिस्तान की संविधान सभा में जिन्ना को सभा का राष्ट्रपति चुना गया। 13 अगस्त 1947 को माउण्टबेटन कराँची पहुँचे और 14 अगस्त 1947 को पाकिस्तान सभा को सम्बोधित किया और उसी दिन जिन्ना ने पाकिस्तान के गवर्नर जेनरल की शपथ ली। लियाकत अली खाँ वहाँ के प्रथम प्रधानमन्त्री बने।

इधर भारत में 14 अगस्त की रात्रि में संवैधानिक सभा की बैठक में नेहरू ने सभा को सम्बोधित किया। 15 अगस्त 1947 को नेहरू ने प्रधानमन्त्री के पद को संभाला।

अन्त में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (1909-1960) जिन्होंने भारत की आजादी की लड़ाई को स्वयं देखा है उनकी रचना 'भारत भारती' स्वतन्त्रता आन्दोलन में लगे लोगों के लिए गीता की तरह थी। गुप्त जी ने अपने समय में समाज में राष्ट्रीयता के अभाव का तीव्रता से अनुभव किया था। उन्होंने कहा-

'जातीयता क्या वस्तु है निज देश कहते हैं किसे?
क्या अर्थ आत्म त्याग का वे जानते हैं क्या इसे?'

'काबा और कर्बला' गुप्त जी की दूसरी रचना है जिसमें विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायियों को आन्तरिक शान्ति के लिए सद्भाव और सहभाग के साथ रहने का संदेश देते हैं। मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए जो बातें कही गयी हैं वे आज भी प्रासंगिक हैं-

मुसलमान भाई हो शान्त, सोचो तुम्हीं तनिक एकान्त
तुम निज हित करो सब कर्म और छोड़ दें हम निज धर्म
रहे तुम्हारा कुछ भी बोध हमको तुमसे नहीं विरोध
मातृभूमि का नाता मान हैं दोनों के स्वार्थ समान

और अन्त में वे कहते हैं-

"सुख और दुख में एक सा सब भाइयों का भाग हो
अन्तःकरण में गूँजता राष्ट्रीयता का राग हो।"

राष्ट्रीयता का यह भाव भारत-भारती का केन्द्रीय भाव है। इसका स्वरूप सांस्कृतिक है। इस राष्ट्रीयता के भाव की झलक अथर्ववेद के '**माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः**' मन्त्र में, भागवत के '**अहो भुवः सप्त समुद्र वत्या द्वीपेषु अधि पुण्य मेतत**' तथा विष्णु पुराण के '**गायन्ति देवाः किल गीतिकानि धन्यास्तुते भारतभूमि भागे**' जैसे श्लोकों में मिलती है। (महाराणा प्रताप पी.जी. कॉलेज में भारत विभाजन की पूर्व संध्या 13 अगस्त 2012 ई. को आयोजित व्याख्यान)

सन्दर्भ सूचीः

1. सिंह, राजगोविन्द - भारतवर्ष पर विदेशी आक्रमणों का इतिहास (अप्रकाशित); मगध विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. उपाधि के लिए 1975 में प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध
2. सिंह, संजय कुमार - गुर्जर, प्रतिहार, गाहड़वाल और चाहमान राजाओं की पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रान्तों की प्रतिरोधात्मक नीतियों का तुलनात्मक अध्ययन (700 ए.डी. से 1200 ए.डी. तक); बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर की पी-एच.डी. उपाधि के लिए 2008 में प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध
3. आजाद, मोहम्मद अबुल कलाम - India Wins Freedom, ओरियन्ट लौंगमैन, बम्बई, 1959
4. प्रसाद, राजेन्द्र - India Divided, हिन्द किताब लिमिटेड, बम्बई, 1947
5. शर्मा, राम विलास - सन् सत्तावन की राज्यक्रान्ति और मार्क्सवाद; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990
6. प्रियंवद - भारत विभाजन की अन्तःकथा; भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2008
7. जकारिया, रफीक - The Man Who Divided India. Popular Prakashan Pvt. Ltd.. Mumbai. 2002
8. गुप्त, सदानन्द - 'भारत भारती- स्मृति से जागरण यात्रा का काव्य', सन्दर्भ- दिसम्बर 2011

कमजोर वर्गों के विकास में सामाजिक न्याय की भूमिका

हनुमान प्रसाद उपाध्याय*

भारतीय समाज एक अत्यन्त प्राचीन समाज है, जो कि अपने आप में जटिलता लिये हुए है। इसका इतिहास लगभग पाँच हजार वर्ष पुराना है। भारत की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विविधताएं यहां की ग्रामीण एवं शहरी निवास की दशाओं में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

प्रत्येक समाज की संरचना के समान ही भारतीय सामाजिक संरचना में भी उच्च वर्ग व निम्न वर्ग विद्यमान हैं। भारतीय समाज में कुछ समूह सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। जिन्हें कमजोर वर्ग कहा जाता है। कमजोर वर्गों में अनुसूचित जातियां, अनुसूचित जनजातियां, अन्य पिछड़ा वर्ग, महिला तथा अल्पसंख्यक को सम्मिलित किया जाता है। इन वर्गों के उत्थान के लिए भारतीय संविधान में विशेष प्रावधान किया गया है।

हमारे देश में अनुसूचित जातियाँ जाति व्यवस्था का अभिशाप झेल रही हैं। जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थिति चिन्तनीय है। परम्परागत भारत में इन्हें भग्न पुरुष, बाह्य जाति, अवर्ण, अछूत/अश्पृश्य, उपेक्षित माना जाता रहा है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इन्हें 'भग्नपुरुष' या 'भग्न जाति, कहा है।[1] अंग्रेजों ने इन्हें दलित वर्ग (Depressed Class) कहा है। **महात्मा गांधी** ने इन्हें हरिजन नाम दिया।[2] साइमन कमीशन तथा सरकारी विज्ञप्ति द्वारा 1935 में 'अनुसूचित जाति' शब्द का प्रयोग किया गया जो कि अश्पृश्य लोगों के लिए प्रयोग में लाया गया। स्वतंत्र भारत में इसी नाम का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार अनुसूचित जाति विभिन्न नामों से जानी गयी।[3]

जे.एच. हट्टन ने कुछ निर्योग्यताओं के आधार पर अस्पृश्य जातियों को स्पष्ट करते हुए कहा कि अश्पृश्य जाति वह है जो (1) उच्च जातियों की सेवा पाने के लिए आयोग्य है, (2) सवर्ण हिन्दुओं की सेवा करने वाले व्यक्तियों (जैसे-नाई, धोबी, दर्जी, कहाँर आदि) की सेवा पाने के लिए अयोग्य है, (3) हिन्दू मंदिरों में प्रवेश करने से निषेधित है, (4) सार्वजनिक सुविधाओं के उपयोग से वंचित है तथा (5) घृणित पेशे से अलग होने में असमर्थ हैं।[४]

* विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर।
Email:- drhp.upadhyay77@gmail.com

अनुसूचित जाति, जाति प्रथा के परिणामस्वरूप विकसित उस व्यवस्था का अंग है जिसमें मानवता के बीच इतना अधिक अन्तर हो गया है कि उनके स्पर्श मात्र से ही गैर अनुसूचित/सवर्ण जातियों के लोग अपवित्र हो जाते हैं। **डी.एन. मजूमदार** का विचार है कि अस्पृश्य जातियां सामाजिक और राजनीतिक सुविधाओं से वंचित रही हैं। ऐसा व्यवहार सवर्णों विशेषकर उच्च/प्रभावशाली जातियों द्वारा प्रदान किया गया है। इस प्रकार मजूमदार ने अस्पृश्यता की सामाजिकता पर बल दिया है।[५] भारत की 2011 की अंतिम जनगणना रिपोर्ट के अनुसार देश में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या (20.137 करोड़) है, जो कि देश की कुल जनसंख्या का 16.6 प्रतिशत है।[६]

भारतीय संविधान में कुछ वर्ग जो कि सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से पिछड़े हैं, के उत्थान और कल्याण के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं। इसी आशय से जिन जनजातियों के नाम संविधान की अनुसूची में सम्मिलित किये गये है, उन सभी को अनुसूचित जनजाति कहा जाता है। भारत में अनुसूचित जातियां एक लम्बे समय से अमानवीय शोषण का शिकार रही हैं। अनुसूचित जातियां अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक अधिकारों से वंचित रही हैं। ये निर्योग्यताएं ही उनकी वास्तविक विशेषताएं है जो उन्हें शेष हिन्दू समाज से अलग कर देती हैं।

अनुसूचित जातियों के विकास व कल्याण के लिए अनेक सराहनीय कार्य किये गये हैं। जिसका लाभ कुछ हद तक उनको मिला भी है लेकिन सुधार की जितनी अपेक्षाएं की गई थी, उतना अभी नहीं हुआ है।

पिछड़े वर्गों में उन संजातीय समूह को सम्मिलित किया जाता है जो जातीय सोपान में निम्न नहीं है लेकिन सामाजिक, शैक्षिक तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हैं। पिछड़े वर्गों में ब्राह्मणों मे निम्न और अछूत जातियों से उच्च, मध्यम श्रेणी की जातियों और समूहों को सम्मिलित किया गया है। पिछड़े वर्ग में आने वाली जातियां सामाजिक रूप से पिछड़ी हैं, क्योंकि वे शिक्षा, सरकारी सेवाओं, व्यवसायों और व्यापार आदि में भी पीछे रहे हैं। सन् 1950 में पहली बार 'अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग संघ' का गठन किया गया। **काका कालेलकर** की अध्यक्षता में राष्ट्रपति ने 29 जनवरी 1953 को एक पिछड़ा वर्ग आयोग की नियुक्ति की। जनता पार्टी की सरकार में लोकसभा के एक सदस्य **बी.पी. मण्डल** (बिन्देश्वरी प्रसाद मण्डल, बिहार) की अध्यक्षता में द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग की नियुक्ति की। आयोग ने सिफारिश की कि गहन और समयवद्ध कार्यक्रम तैयार कर पिछड़ी जातियों में प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार किया जाना चाहिए। 27 प्रतिशत आरक्षण का सिद्धान्त नौकरियों और शिक्षण संस्थाओं दोनों के लिए सुझाया गया था। भारतीय समाज में संरचनात्मक परिवर्तन लाने के लिए आयोग ने पिछड़े वर्गों के आर्थिक उत्थान के लिए भी सुझाव दिए।[७]

हमारे समाज में महिलाओं को भी कमजोर वर्गों में रखा जाता है क्योंकि हजारों वर्षों से समाज द्वारा इनके ऊपर अनेक सामाजिक-धार्मिक निर्योग्यताएं लादी गयी हैं, जिसके कारण उन्हें

शोषण का शिकार होना पड़ा है। जबकि स्त्री और पुरुष मानव समाज की आधारशिला हैं। किसी एक के अभाव में समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। इसके बावजूद स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के बराबर नहीं मानी जाती है।

मार्क्स का कहना है कि स्त्री का कोई वर्ग नहीं होता, विश्व की आधी आबादी वर्ग विहीन है। स्त्री के वर्ग का निर्धारण पुरुष के वर्ग से होता है। महिलाओं के सम्बन्ध में **स्वामी विवेकानन्द जी** ने कहा कि ''वह देश और राष्ट्र जिसने स्त्रियों का आदर नहीं किया, कभी भी महान नहीं बन सका और न ही भविष्य में बन पायेगा।''

फ्रांसीसी बुद्धिजीवी **सिमोन दी बुआ** का कहना है कि 'औरत पैदा नहीं होती, बल्कि बना दी जाती है।' अर्थात स्त्री सुलभ गुण-दोष या व्यक्तित्व लिंग भेद के प्राकृतिक आधार पर नहीं बल्कि संस्कार और सीख के आधार पर बनते हैं।[८] आज विशेषकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं की स्थिति में सर्वांगीण विकास हुआ है। वे प्रत्येक क्षेत्र एवं व्यवस्था में अपना योगदान दे रही हैं।

महिलाओं के उत्थान के लिए 1985 में **'महिला एवं बाल विकास विभाग'** की स्थापना की गई, जिससे महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। महिलाओं के विकास के लिए गांधी जयंती के अवसर पर 2 अक्टूबर 1993 से **'महिला समृद्धि योजना'** प्रारम्भ की गई तथा प्रत्येक वर्ष 8 मार्च को **'अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस'** मनाया जाता है। महिलाओं को सामाजिक न्याय व अधिकार दिलाने के लिए अनेक अधिनियम एवं कानून बनाये गये जिससे उन्हें सामाजिक, न्यायिक एवं पारिवारिक सुरक्षा मिल सके।

भारतीय समाज एक बहुलवादी समाज है, जिसमें अनेक भाषा-भाषी तथा विभिन्न धर्मावलंबी निवास करते हैं। विश्व में ऐसा कोई भी देश नहीं है जहां किसी न किसी प्रकार के अल्पसंख्यक न हों। **इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका** के अनुसार 'अल्पसंख्यक एक समूह के रूप में सामान्य अवतरण में भाषा या धार्मिक विश्वास एवं अनुभूति जो कि राजनीतिक सत्ता के अन्तर्गत बहुसंख्यक से भिन्न होता है, बंधे रहते हैं।[९]

अल्पसंख्यक की अवधारणा के अन्तर्गत जनसंख्या के वे उपप्रमुख समूह आते हैं जो स्थायी, प्रजातीय, धार्मिक एवं भाषायी परम्परा को या शेष जनसंख्या के गुणों से भिन्न अपनी विशेषता को बचाये रखना श्रेयस्कर समझते हैं।[१०]

एन. विर्थ ने बताया कि ''अल्पसंख्यक एक समूह है जो शेष समाज के सदस्यों से प्रजातीय एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर भिन्न होता है, जिनके साथ पृथकता एवं अधीनस्थ व्यवहार किया जाता है।''[११] इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अल्पसंख्यक वे हैं जो तुलनात्मक दृष्टि से धर्म व भाषा के आधार पर कम संख्या में हों इस दृष्टि से मुस्लिम, सिख, इसाई, बौद्ध तथा जैन

धर्म आदि के मानने वाले लोगों को अल्पसंख्यक कहा जाता है।

अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए सरकार द्वारा अनेक उपाय किये गये। अल्पसंख्यकों में कमजोर वर्गों के लिए आर्थिक व विकास क्रियाकलापों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 30 सितम्बर 1994 को 'राष्ट्रीय अल्पसंख्यक विकास एवं वित्त निगम' की स्थापना की गई।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम 1992 द्वारा पाँच धार्मिक समुदाय जैसे मुस्लिम, सिख, इसाई, बौद्ध तथा पारसी को अल्पसंख्यकों के रूप में अभिसूचित किया गया जो सम्पूर्ण देश की जनसंख्या का लगभग 18 प्रतिशत हैं।

अल्पसंख्यकों की समस्याओं के समाधान के लिए सरकार ने अनेक प्रयत्न किये हैं। भारतीय संविधान में उनके हितों को सुरक्षित रखने तथा उन्हें उन्नत बनाने हेतु आवश्यक संरक्षण प्रदान किये गये हैं, जिससे उन्हें सामाजिक न्याय व अधिकार मिल सके।

वर्तमान समय में कमजोर वर्ग जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग, महिला व अल्पसंख्यक आते हैं, उनको धार्मिक, आर्थिक राजनैतिक तथा सामाजिक न्याय व अधिकार और सुविधाएं देने के लिए सरकार के द्वारा अनेक कल्याणकारी योजनाएं चलायी जा रही हैं। जिसका लाभ इन कमजोर वर्ग के लोगों को मिल रहा है। इनकी सभी स्थितियों में अधिकाधिक सुधार हुआ है, लेकिन इसे पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। हमें यह दृढ़ संकल्प लेना चाहिए कि परस्पर सहभागिता और जागरूकता के द्वारा सभी कमजोर वर्ग के लोगों के लिए सामाजिक न्याय व अधिकार उपलब्ध कराकर हमारे द्वारा कमजोर वर्गो के विकास की भूमिका का निर्वहन किया जा सकता है। जिससे प्रगतिशील, प्रतिभाशाली, समृद्ध एवं सशक्त आधुनिक भारत का निर्माण किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. B.R. Ambedkar : The untouchables, Amrit Book Co. New Delhi. 1948.
2. M. Gandhi : The Removal of Untouchability, Navjivan Publishing House, Ahmedabad, 1954.
3. The Scheduled Castes, के.एस. सिंह
4. J.H. Hutton : Caste in India, Its Nature, Function and origin, Oxford University Press Bombay, 1961.
5. D.N. Majumdar : Races and Cuttures of India; 1948
6. Final Data of schedule census : 2011
7. The Politics of Backwardness : Reservation Policy in India- Pannikar
8. द सेकेण्ड सैक्स : 1949 सिमोन द बुआ
9. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (Encyclopaedia Britanica)
10. यूनाइटेड नेशन्स सब-कमीशन आन प्रिवेंशन एण्ड प्रोटेक्शन ऑफ माइनारिटीज United Nations Sub-commission on prevention & Protection on Minorities.
11. बर्ल्ड कांग्रेस ऑफ सोशियोलाजी इन स्विटरजरलैण्ड 1950 : एन. विर्थ

कर्मचारी भविष्य निधि संगठन द्वारा प्रदत्त सेवाओं का विपणन : एक दृष्टि

सुभाष कुमार गुप्ता*

सारांश-कर्मचारी भविष्य निधि सरकारी एवं निजी क्षेत्रों में कार्यरत सभी कर्मचारियों के लिए बचत का प्रमुख साधन है, इसकी शुरूआत 15 नवम्बर, 1951 को कर्मचारी भविष्य निधि अध्यादेश के आने के पश्चात् हुई थी। इसके बाद कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम 1952 पारित किया गया। जो अब कर्मचारी भविष्य निधि एवं विविध प्रावधान अधिनियम, 1952 के नाम से जाना जाता है। यह अधिनियम जम्मू कश्मीर छोड़कर भारत के सभी राज्यों एवं केन्द्र-शासित प्रदेशों में लागू है।

कर्मचारी भविष्य निधि, भविष्य की जरूरतों को ध्यान मे रखते हुए एक महत्वपूर्ण निवेश है। इस पर दिया जाने वाला ब्याज करमुक्त होता है। इसके परिपक्वता पर दिये जाने वाले लाभ आर्थिक रूप से काफी सहायक सिद्ध होते है। अगर लम्बे समय तक भविष्य निधि के रूप में धन की बचत की जाए तो यह कर्मचारी के लिए भविष्य में एवं सेवा निवृत्ति के बाद की जरूरतों के लिए अत्यंत सहायक सिद्ध होता है। आपात कालीन स्थिति में हमें अक्सर धन की कमी महसूस होती है एवं उस समय हमारे पास लोगो में उधार मांगने के अलावा कोई और रास्ता नहीं बचता है। ऐसी स्थिति में कर्मचारी भविष्य निधि हमारे लिए सहायक सिद्ध होता है क्योंकि जिस तरह का लाभ हमें इससे प्राप्त होता है, वैसा लाभ किसी और निवेश से प्राप्त नहीं होता है। भविष्य निधि का उपयोग समय-समय पर विभिन्न जरूरतों के लिए किया जा सकता है।[1]

प्रस्तावना: कर्मचारी भविष्य निधि संगठन की स्थापना 15 नवम्बर, 1951 में की गयी थी। इसका स्थापना कारखानों और अन्य संस्थानों में कार्यरत संगठित क्षेत्र के कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए की गयी थी।[2]

कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के पास उन सभी संस्थानों/कम्पनियों/कारखानों को रजिस्टर्ड कराना पड़ता हैं जहाँ पर 20 से अधिक कर्मचारी काम करते हैं साथ ही अगर किसी कर्मचारी का

*असिस्टेंट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़ गोरखपुर।
Email - dr.subhashgupta53@gmail.com, Mobile No. 9889037817 ◆ युगद्रष्टा ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की 50वीं एवं राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 05वीं पुण्यतिथि के अवसर पर आयोजित सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला में दिनांक 19 अगस्त 2019 को दिया गया व्याख्यान।

वेतन प्रति माह 15000 रू. से कम है तो उसे नियमानुसार कर्मचारी भविष्य निधि में योगदान करना पड़ता है। कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, नियोक्ताओं एवं कर्मचारियों को विविध प्रकार से सेवाएं प्रदान करता रहता है। कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, कर्मचारियों को विविध प्रकार से लाभ भी सुलभ कराता है। जैसे-सेवा निवृत्ति पर, नौकरी छोड़ने पर, मृत्यु होने की स्थिति में कुल संचित राशि एवं निधि पर मिलने वाला ब्याज, गृह निर्माण, उच्च शिक्षा, शादी, बीमारी एवं आंशिक धन की निकासी इत्यादि।

अध्ययन की विधिः- इस अध्ययन में द्वितीयक समंको का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक समंको को लिए सामग्री बेवसाइटों, सरकारी गजट एवं पत्रिकाओं से प्राप्त किया गया है।

अध्ययन की उद्देश्यः-प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य का निम्न है-

1. कर्मचारी भविष्य निधि की अवधारणा को स्पष्ट करना।

2. कर्मचारी भविष्य निधि संगठन द्वारा नियोक्ताओं एवं कर्मचारियों को प्रदान की जाने वाली सेवाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण करना।

3. कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।

नियोक्ता एवं कर्मचारी द्वारा अंशदान -भविष्य निधि कर्मचारियों को वित्तीय सुरक्षा एवं स्थिरता प्रदान करता है। भविष्य निधि खाते में कर्मचारी का अंशदान उसके संस्था में शामिल होने के बाद शुरू हो जाता है। यह अंशदान नियमित रूप से किया जाता है।

कर्मचारी अपने मासिक वेतन का एक छोटा हिस्सा भविष्य निधि के रूप में बचाता है ताकि सेवा निवृत्त होने के पश्चात् जब वह काम करने में सक्षम न हो, तब वह इस बचत राशि का उपयोग कर सकता है। नियोक्ता एवं कर्मचारी दोनों के द्वारा वेतन का 12 प्रतिशत भविष्य निधि में जमा किया जाता है। इसके अतिरिक्त नियोक्ता को कर्मचारी भविष्य निधि एवं विविध प्रावधान 1952 के तहत लाभों के प्रबन्धन हेतु भी अंशदान करना होता हैं।[3]

नियोक्ता एवं कर्मचारी द्वारा अंशदान का वर्तमान दर

द्वारा	अंशदान खाते			प्रशासनिक खाते		कुल अंशदान
	ई.पी.एफ.	ई.पी.एस.	ई.डी.एल.आई.	ई.पी.एफ.	ई.डी.एल.आई.	
कर्मचारी	12%	0	0	0	0	12%
नियोक्ता	3.67%	8.33%	0.50%	0.50% 01.06.2018 से लागू	0 01.06.2018 से लागू	13%
कुल	15.67%	8.33%	0.50%	0.50%	0	25%

विशेष श्रेणी के अन्तर्गत निर्धारित संस्थाओं के लिए भविष्य निधि में अंशदान करने की सीमा 10 प्रतिशत है, ये संस्थाएं निम्नलिखित है-

- ऐसी संस्था जिसमे 20 से कम कर्मचारी कार्यरत हो।
- ऐसी औद्योगिक कम्पनी जिसे औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड द्वारा आर्थिक रूप से कमजोर घोषित कर दिया गया हो।
- ऐसी संस्था जिसका किसी वित्तीय वर्ष के अंत में कुल घाटा उस संस्था के कुल लागत के बराबर या उससे, ज्यादा हो।
- जूट, बीड़ी, ईट, उद्योग इत्यादि से जुड़ी संस्थाएं।

इन अंशदानों को निर्धारित विधि से निवेशित किया जाता है। सदस्यों के भविष्य निधि राशि पर एक निश्चित दर से ब्याज दिया जाता है। यह ब्याज हर वर्ष निर्धारित किया जाता है।

कर्मचारी भविष्य निधि संगठन द्वारा प्रदत्त सेवाओं का विपणन- इन सेवाओं को दो भागों में विभाजित किया गया हैं ।

(I) कर्मचारियों के लिए सेवायें (II) नियोक्ताओं के लिए सेवायें

(I) कर्मचारियों के लिए सेवायें: 1.सदस्य पासबुक, 2. सदस्य यू.ए.एन. पोर्टल ऑनलाइन सेवा, 3. उमंग ऐप की सेवा 4. अपने दावे की स्थिति जानने की सेवा 5. अपनी शिकायत पंजीकरण करवाने की सेवा, 6. खाता स्थानान्तरण की सुविधा 7. पेंशनरो के लिए पोर्टल, 8. निष्क्रिय खाता हेल्प डेस्क 9. मिस्ड कॉल एवं लघु कोड एस.एम.एस. सेवा 10. बीमा की सेवायें 11. नॉमिनेशन की सुविधा। 12. अग्रिम धन प्राप्त करने की सुविधा।

1. ऑनलाइन पास बुक- सदस्य www.epfindia.gov.in साइट जाकर कुछ सूचनाएं जैसे- यू.ए.एन. एवं पासवर्ड डालकर अपना पासबुक डाउनलोड कर सकता है। इस पासबुक में भविष्य निधि खाते के लेनदेनो का विवरण दिया रहता है। आप इस सुविधा का लाभ उठाने संबंधी सहायता भी प्राप्त कर सकते है।

2. सदस्य यू.ए.एन. पोर्टल ऑनलाइन सेवा- कर्मचारी भविष्य निधि (ई.पी.एफ.) में अंशदान देने वाले कर्मचारियों के लिए एक तरह का महत्वपूर्ण उपकरण है। ई.पी.एफ.ओ. के यूनिफाइड पोर्टल के लॉन्च हो जाने के कारण अब कई काम जल्दी हो जाते है। इसके साथ ही साइट पर दिये गये ऑनलाइन पी.एफ. क्लेम जैसे विकल्प संस्था की प्रक्रिया को पेपरलैस बनाने के साथ-साथ संगठन के लक्ष्य को भी दर्शाते हैं। इसकी विभिन्न सेवाओं का लाभ उठाने के लिए ई. पी.एफ.ओ. के मेम्बर यूनिफाइड पोर्टल को एक्सेस करना होगा। अगर आपका इसका फायदा उठाना

चाहते है तो आपको इसके लिए www.epfindia.gov.in पर जाना होगा। इसके बाद सदस्य को यू.ए.एन. या ऑनलाइन सर्विसेज पर क्लिक करना होगा।

3. उमंग एपः- यह एप प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा लांच किया गया है। आपको इसकी 162 से भी ज्यादा सेवा मिलती है। इसके अंदर आपको केन्द्र सरकार और राज्य सरकार की बहुत सी सेवाएं मिलती है। इस एप के द्वारा आप डिजिटल इण्डिया की सारी सेवाओं का इस्तेमाल कर सकते है। इस एप के इस्तेमाल से अनेक फायदे होते है-

1. इस एप के द्वारा पी.एफ. खाते की जानकारी, ऑनलाइन जीवित प्रमाण-पत्र, के.वाई.सी. एवं दावे की स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकते है।
2. इस एप के द्वारा ही एस.एम.एस एवं मिस्ड काल के माध्यम से खाते की जानकारी प्राप्त कर सकते है।

इस एप मे पेंशनधारी एवं नियोक्ता को भी विविध लाभ प्राप्त होते रहते है।

4. खाते में उपलब्ध शेष राशि सम्बन्धी पूछताछ एवं दावा- सदस्य अपने भविष्य निधि खाते की शेष राशि एवं दावे की स्थिति की जानकारी ऑनलाइन प्राप्त कर सकते है। इसके लिए आपको कुछ जानकारियाँ, जैसे- अपना नाम, मोबाईल नम्बर इत्यादि देनी होगी। इसके बाद आपका भविष्य निधि खाता संख्या/यू.ए.एन. एवं मोबाईल नम्बर सुरक्षित कर लिया जाता है। सफलतापूर्वक कॉल करने के पश्चात् आपके खाते में उपलब्ध शेष राशि की जानकारी दिए गये मोबाईल नम्बर पर एस.एम.एस. के द्वारा भेज दिया जाता है।

5. शिकायत दर्ज करवाने सम्बन्धी सुविधाः- यदि कर्मचारी जहाँ पर कार्य कर रहा है वहाँ का संस्थान/प्रतिष्ठान आपके भविष्य निधि में अंशदान नहीं करती है अथवा अंशदान में चूक या विलम्ब करता है तो आप इसकी शिकायत ऑनलाइन दर्ज करा सकते है। इसके लिए आपको एक ऑनलाइन प्रपत्र भरना होगा जिसमें आपको अपनी संस्था के बारे में एवं शिकायत सम्बन्धी अन्य विवरण देने होंगे। आप अपनी दर्ज शिकायत की स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकते है एवं कर्मचारी भविष्य निधि संगठन को शिकायत सम्बन्धी अनुस्मारक भेज सकते है।

6. खाता स्थानान्तरण की सुविधा- यदि कर्मचारी चाहे तो यूनिफाइड मेम्बर पोर्टल के माध्यम सें अपना भविष्य निधि खाता ऑनलाइन स्थानांतरित कर सकता है। इस पोर्टल से खाता हस्तान्तरण की प्रक्रिया को सभी के लिए आसान एवं सुगम बनाने एवं इसमें पारदर्शिता लाने की कोशिश की गई है।

7. पेंशनर्स सर्विस पोर्टल- इस पोर्टल पर देश भर के पेंशनर अपने मामलों की ताजा स्थिति की जानकारी ले सकते है। इसके साथ ही पेंशन भुगतान की प्रक्रिया विभाग से होते हुए बैंक

तक पहुँची है या नहीं, इसकी भी जानकारी मिल सकती है।

8. निष्क्रिय खाता हेल्प डेक्स- कर्मचारी भविष्य निधि संगठन ने अपने अंशधारको को निष्क्रिय भविष्य निधि खातों का पता लगाने में मदद के इरादे से एक ऑनलाइन हेल्प डेक्स गठित किया है। इन ऑनलाइन हेल्प डेक्स का उपयोग कर ऐसे खातों के खाता धारक अपने खाते का पता लगा सकते है और इसका निपटान या भविष्य निधि अपने मौजूदा खातों में हस्तान्तरण करा सकते है। निष्क्रिय खाते वे हैं जहाँ 36 महिने में कोई योगदान नहीं आया है। ई.पी.एफ.ओ. 1 अप्रैल 2011 से ऐसे खातों पर ब्याज देना रोक दिया है। इस पोर्टल से बिना परिचालन वाले खातों में निपटान में मदद मिलता है।

9. मिस्ड कॉल एवं लघु कोड एस.एम.एस. सेवा- भविष्य निधि अंशदाता अपने रजिस्टर्ड मोबाईल से मिस्ड कॉल 011-22901406 नम्बर पर काल या "EPFOHO UAN TEL" to 7738299899 पर एस.एम.एस. कर खाते की समस्त जानकारी प्राप्त कर सकता हैं ।

10. ई.पी.एफ. पर बीमा की भी सुविधा- ईपीएफओ अपने सदम्यों को टर्म बीमा कवर देता है। इसे एम्पलॉई डिपॉजिट लिंक्ड स्कीम (ईडीएलएस) कहते हैं। इसके लिए नियोक्ता मूल वेतन का 0.50 फीसदी ईपीएफओ को देता हैं। इसके तहत आपको मूल वेतन का 30 गुना बीमित राशि का समूह बीमा कवर मिलता है।

11. नॉमिनेशन की सुविधा- ई.पी.एफ. के लिए भी नॉमिनेशन सुविधा ले सकते है। कर्मचारी की मृत्यु होने की स्थिति में नॉमिनी को पी.एफ. का भुगतान दिया जाता है। यदि कर्मचारी चाहे तो नॉमिनी को बदल सकता है।

12. प्रॉविडेण्ड फण्ड से अग्रिम लेने के लिए विकल्प- नौकरी पर रहे हुए पी.एफ. सदस्य विभिन्न कारणों से ई.पी.एफ. अग्रिम के लिए आवेदन कर सकता है, और इसके अंतर्गत कितनी धनराशि स्वीकृत होगी यह कारण, सदस्य का महीने का वेतन, उसकी हिस्सेदारी इत्यादि पर निर्भर करता है। यहाँ वेतन से अभिप्राय मूल वेतन+डी.ए. से होता है। साधारण परिस्थितियों में ई.पी.

एफ. अग्रिम लेने के बाद इसे वापस करने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि यह अग्रिम पी.एफ. खाते में उपलब्ध पैसों से कम ही दिया जाता है। जिसे बाद में स्वत: ही सेटल कर दिया जाता है।

1. घर/फ्लैट/प्लॉट खरीदने/निर्माण एवं घर के नवीनीकरण के लिए पी.एफ. से अग्रिम- इसे समझने के एक सारणी दी जा रही है-

क्र. सं.	अग्रिम लेने का कारण	कम से कम योगदान /सेवा	जारी किया जाने वाला अग्रिम	एक ही उद्देश्य के लिए जारी किये जाने वाले अग्रिम की संख्या
01.	घर/फ्लैट/प्लॉट की खरीदारी/ निर्माण	3 वर्ष (अप्रैल 2017 से पहले यह 05 वर्ष था।)	पी.एफ. शेष का 90 प्रतिशत या पूरी राशि, जो भी कम हो।	पूरे कार्यकाल में केवल एक बार दिया जाता है।
02.	घर के नवीनीकरण के लिए	5 वर्ष	12 माह की मूल वेतन और डी.ए. या कर्मचारी का हिस्सा की राशि जो दोनो में कम हो।	पूरे कार्यकाल में केवल एक बार।

2. **आवास ऋण को चुकता करने के लिए पी. एफ. अग्रिम**- गृह ऋण को चुकता करने के लिए भी ई.पी.एफ. अग्रिम लिया जा सकता है लेकिन इसके भी कुछ नियम है जिनका संक्षिप्त वर्णन सारणी के माध्यम से किया गया है-

पी.एफ. अग्रिम का कारण	आवश्यक कार्यकाल/अंशदान	स्वीकृत किया जाने वाला धनराशि	इसी कारण के लिए, लिए जाने वाले अग्रिम की संख्या
गृह ऋण के मूल धनराशि और ब्याज को चुकता करने के लिए।	10 वर्ष	36 महीनों का मासिक मूल वेतन एवं डी.ए. का कर्मचारी एवं नियोक्ता का कुल अंश या कुल अदत्त राशि, इनमें से जो भी कम हो।	पूरे कार्यकाल में सिर्फ एक बार लिया जा सकता है।

3. मेडिकल ईलाज के लिए पी.एफ. अग्रिम- पी.एफ. सदस्य अपने स्वयं के या किसी परिवार के सदस्य जैसे जीवन साथी, बच्चे, सदस्य पर निर्भर माता-पिता के ईलाज के लिए कभी भी ई.पी.एफ. से अग्रिम ले सकता है। इस अग्रिम को सारणी के माध्यम से स्पष्ट किया गया है-

अग्रिम लेने का कारण	कार्यकाल/अंशदान	स्वीकृत की जाने वाला धनराशि	कितनी बार ले सकते है-
स्वयं/परिवार के सदस्यों के ईलाज के लिए	N/A	6 माह का मासिक वेतन एवं डी.ए. या कर्मचारी का अंश एवं ब्याज जो भी कम हो।	N/A (जब भी सदस्य को पैसे की आवश्यकता हो।)

4. शिक्षा और शादी के लिए पी.एफ. अग्रिम- यदि किसी ई.पी.एफ. सदस्य को अंशदान करते हुए 7 वर्ष पूर्ण हो चुके है तो वह अपने स्वयं, बहन, भाई, बच्चों की शादी के लिए ई.पी.एफ. अग्रिम के लिए आवेदन कर सकता है। इसे निम्न सारणी से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता हैं-

अग्रिम लेने का कारण	कार्यकाल/अंशदान	स्वीकृत की जाने वाला धनराशि	कितनी बार ले सकते है-
अपनी/बच्चों की/बहिन की/भाई की शादी के लिए।	07 वर्ष	कर्मचारी अंश एवं अर्जित ब्याज का 50 प्रतिशत	तीन बार
बच्चों की पढ़ाई के लिए	07 वर्ष	कर्मचारी अंश एवं अर्जित ब्याज का 50 प्रतिशत	तीन बार

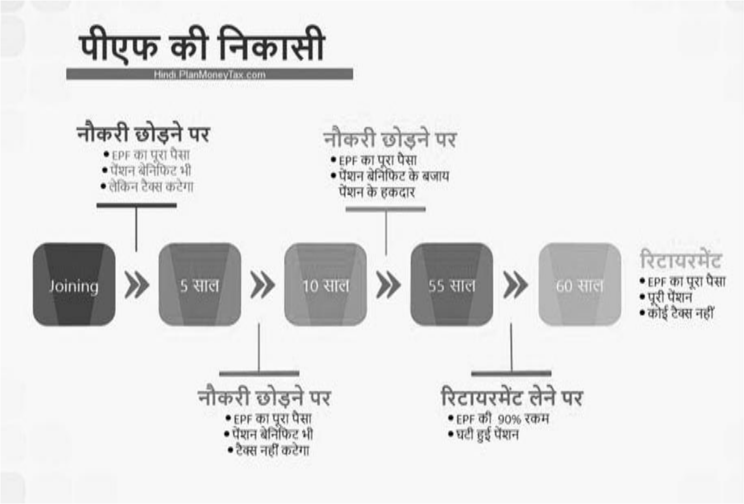

इन सबसे अलावा ऐसे कर्मचारी जो आंशिक रुप से विकलांग हो उपकरण खरीदने के लिए रकम निकाल सकता है।

(II) नियोक्ताओं के लिए सेवायें:- नियोक्ताओं को पारदर्शी एवं बेहतर सेवा प्रदान करने के लिए कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, एम्पलॉयर ई-सेवा प्रदान कर रहा है। इससे अब नियोक्ताओं को लेखा पर्चियों के लिए एक साल का इंतजार नहीं करना पड़ता है। वे अपने कर्मचारी की जमा राशि का विवरण प्रतिमाह वेबसाइट पर देख लेता है। इसके लिए नियोक्ताओं को ई.पी.एफ.ओ. वेबसाइट cpfindia.gov.in पर उपलब्ध एम्पलॉयर ई-सेवा लिंक पर पंजीयन करना पड़ता है। नियोक्ता को एक यूजर आईडी और पासवर्ड दिया जाता है। इसके द्वारा नियोक्ता इलेक्ट्रानिक चालान के माध्यम से ई.पी.एफ. एवं अन्य राशियाँ जमा कर सकता है। यह राशि सीधे सदस्य के खाते में जमा हो जाती है और इसकी सूचना सदस्य को एस.एम.एस. से भेज दिया जाता है। साथ ही नियोक्ताओं को अलग से फार्म 3 ए.आर, 6 ए.आर एवं फार्म 5/10 भरने की जरूरत नहीं पड़ती है।

नियोक्ताओं के लिए जो EPFO Unified Portal उपलब्ध है, उस पर विविध प्रकार से सेवा प्राप्त कर सकता हैं- संस्थाओं/प्रतिष्ठानों का ऑनलाइन पंजीकरण 2. ऑनलाइन ई.सी.आर. या चालान 3. ऑनलाइन शिकायत का पंजीयन 4. प्रधानमंत्री रोजगार प्रोत्साहन योजना 5. टी.आर.आर. एन की जानकारी 6. संस्थानों/प्रतिष्ठानों की खोज।

1. ऑनलाइन ई.पी.एफ. रजिस्ट्रेशन - नियोक्ता के लिए ई.पी.एफ. ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया दिसम्बर 2015 से शुरू है। वर्तमान में नई प्रतिष्ठानों/कम्पनियों का ई.पी.एफ.ओ. में रजिस्ट्रेशन कराने की प्रक्रिया को बेहद आसान बना दिया है। इस ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन को शुरू करने के पीछे ई.पी.एफ.ओ. का उद्देश्य अधिक से अधिक नियोक्ताओं के माध्यम से अधिक से

अधिक कर्मचारियों को ई.पी.एफ. का लाभ देने से है। जहाँ पहले कम्पनियों द्वारा इस काम को कराने के लिए किसी थर्ड पार्टी की सर्विस ली जाती थी, अब कम्पनियां चाहे तो यह काम एचआर विभाग से भी आसानी से करा सकता हैं। चूंकि ई.पी.एफ. कर्मचारियों के कल्याण से जुड़ी हुई एक सामाजिक सुरक्षा स्कीम है इसलिए ई.पी.एफ.ओ ने इससे जुड़ने की प्रक्रिया को बेहद आसान बना दिया है और 01.12.2015 से इस रजिस्ट्रेशन को ऑनलाइन कर दिया है, ताकि अधिक से अधिक नियोक्ता इस स्कीम से जुड़कर अधिक से अधिक कर्मचारियों को इस सामाजिक सुरक्षा स्कीम का हिस्सा बना सकें।

2. ऑनलाइन ई.सी.आर या चालान- EPFO Unified Portal पर प्रत्येक माह का एक्सल पर वेतन शीट तैयार कर टेक्स में परिवर्तित करके, अपलोड कर देने से चालान तैयार हो जाता हैं। तत्पश्चात् उसका ऑनलाइन भुगतान भी कर देते हैं।

3. ऑनलाइन शिकायत का पंजीयन- यदि नियोक्ता को भविष्य निधि से सम्बन्धित कोई समस्या है तो कर्मचारी भविष्य निधि संगठन को ऑनलाइन शिकायत दर्ज करा सकता है और अनुस्मारक भी भेज सकते है।

4. प्रधानमंत्री रोजगार प्रोत्साहन योजना- प्रधानमंत्री रोजगार प्रोत्साहन योजना (पीएमआरपीवाई) नियोक्ताओं को प्रोत्साहित एवं नए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने हेतु विकसित की गयी है, जिसमें भारत सरकार नये रोजगार के लिए नियोक्ता द्वारा अंशदान की सम्पूर्ण हिस्से अर्थात 12% का भुगतान करता है। इस योजना का दोहरा लाभ है, जहां, एक तरफ, नियोक्ता को प्रतिष्ठान में श्रमिकों के रोजगार का आधार बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा और वही दूसरी तरफ, श्रमिकों को एक बड़ी संख्या में ऐसे प्रतिष्ठानों मे रोजगार मिलेगा और इसका एक प्रत्यक्ष लाभ यह भी है कि इन कर्मचारियों को संगठित क्षेत्र की सामाजिक सुरक्षा के लाभ उपलब्ध होंगे।[4]

5. टी.आर.आर.एन की जानकारी- टी.आर.आर.एन के माध्यम से किसी भी माह का भुगतान का स्थिति का पता लगा सकते हैं।

6. संस्थानों/प्रतिष्ठानों की खोज- कर्मचारी भविष्य निधि संगठन द्वारा संस्थान को आबंटित कोड के माध्यम से सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

निष्कर्ष- कर्मचारी भविष्य निधि संगठन कर्मचारियों एव नियोक्ताओं को विविध प्रकार का सेवाएं प्रदान करता है जैसे-के.वाई.सी. का अद्यतन, यू.ए.एन. को आधार से लिंक करना, ऑनलाइन क्लेम, पास बुक की सुविधा, प्रोफाइल डिटेल्स, खाते का हस्तान्तरण, ई.पी.एफ./यू.ए.एन. कार्ड की सुविधा इत्यादि। इसमें नियोक्ताओं को सबसे पहले सेवाएं प्रदान की जाती है जिससे इस योजना को आसानी से समझ कर लागू कर सके। उसके पश्चात् कर्मचारियों को भी बेहतर सेवा प्रदान कर रहा

है जिससे अपने अंशदान एवं नियोक्ता द्वारा की अंशदान की सम्पूर्ण विवरण एवं अन्य जानकारी आसानी सें प्राप्त कर सके। इन सेवाओं के प्रभाव के कारण ही अनेक संस्थानों/कम्पनियों में यह योजना लागू होता जा रहा है। ई.पी.एफ. योजना संस्थान में लागू हो जाने से कर्मचारी अपना जीवन को थोड़ा सुरक्षित पाता है।

सुझाव:-

1. कर्मचारियों के लिए ऑनलाइन के साथ ऑफलाइन की भी सेवाएं प्रदान की जानी चाहिए।
2. कर्मचारी भविष्य निधि संगठन द्वारा प्रतिष्ठानों/संस्थानों/कंपनियों में अपना प्रतिनिधि भेजकर कर्मचारियों को जागरूक की जानी चाहिए।
3. कर्मचारी भविष्य निधि संगठन द्वारा प्रतिष्ठानों/संस्थानों/कंपनियों त्रैमासिक जाँच की जानी चाहिए।
4. कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के उप-क्षेत्रीय कार्यालयों में हो रहे भ्रष्टाचार को कम किया जाए।
5. जिन प्रतिष्ठानों में 20 से अधिक कर्मचारी कार्यरत हैं, वहाँ पर कड़ाई से भविष्य निधि योजना लागू किया जाय ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. छाबरा, टी.एन. (2014), ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेन्ट : कानसेप्ट एण्ड इशूस, पृ.सं. 110-120
2. ज्योति, पी. (2015), ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेन्ट : आक्सफोर्ड यूर्निसिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ.सं. 402
3. गुप्ता, सुभाष कुमार (2017), "कर्मचारी भविष्य निधि: एक दृष्टि", विमर्श, अंक 11, पृ.सं. 138-147
4. गुप्ता, सुभाष कुमार (2018), "प्रधानमंत्री रोजगार प्रोत्साहन योजना: एक दृष्टि", विमर्श, अंक 12, पृ.सं. 140-146
5. https://unifiedportal-emp.epfindia.gov.in
6. https://epfindia.gov.in
7. https://www.shramsuvidha.gov.in
8. https://www.epfindia.com
9. https://www.pmrpy.gov.in
10. https://www.epfo.com

हिन्दी भाषा ही राष्ट्रवाद की पहचान

महेन्द्र प्रताप सिंह*

किसी भी देश का राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पहचान उनकी राष्ट्रभाषा होती है और भारत का दुर्भाग्य ही है कि, यहाँ आजादी के 73 साल बाद भी हम एक दूसरे से अनभिज्ञ हैं। उदाहरण स्वरूप यदि उत्तर प्रदेश का कोई व्यक्ति तमिलनाडु व कर्नाटक में चला जाये तो ना तो हम उसकी भाषा समझ सकते हैं और न ही वे हमारी भाषा समझ सकते हैं। ऐसे में भारत राष्ट्र एक जैसा नहीं दिखता है और सभी प्रदेश अपने अपने वहाँ की भाषा को अपनी मूल भाषा मान कर अन्य की अवहेलना करते हैं, जबकि होना यह चाहिए कि हिन्दी भाषा को पूरे भारत में सभी राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में अनिवार्य कर देना चाहिए और दूसरे नम्बर पर उस राज्य की भाषा को मंजूरी मिलनी चाहिए इससे भारत राष्ट्र पूरे दुनिया में एक जैसा दिखेगा। भारत में एक जुटता दिखाई देगी और अपने देश के किसी भी क्षेत्र का व्यक्ति कहीं भी हिन्दी भाषा को बोलते समझते हुए कश्मीर से कन्या कुमारी तक आ जा सकता है। यह भारत के लिए गौरव की बात होगी। ऐसा करने के लिए संविधान में संशोधन करके लागू करना चाहिए। दक्षिण के राज्यों को विशेषकर इन बातों को ध्यान में रखते हुए समझना चाहिए कि भारत में विभिन्न भाषाओं के रहते हुए भी हिन्दी भाषा को भारतीय राष्ट्रवाद की एक पहचान अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर होनी चाहिए ताकि भारत राष्ट्र एक जैसा दिखे और भारत के सभी राज्यों के लोग आम जनमानस एक दूसरे की भाषा को समझते हुए देश के एक कोने से दूसरे कोने तक आ जा सकें और तब लगेगा कि हम सभी लोग भारतीय हैं।

यही काम आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य जी ने सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बांधने के लिए भारत के चारों दिशाओं में चार मठ (धामों) की स्थापना की और अफगानिस्तान से लेकर बंगाल तक और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक भारत एक सूत्र राष्ट्र की एक धारा में बंधा गया और धर्म से जोड़कर यह कोशिश की गई कि चारों धामों की यात्रा करने से मोक्ष की प्राप्ति होगी। उसके पीछे तर्क यही था कि, सम्पूर्ण भारत के लोग देशाटन करते हुए एक दूसरे के सम्पर्क में आयें।

हिन्दी जनमानस की राष्ट्रभाषा है। स्वाधीनता की लड़ाई में देश की जनता ने इसी रूप में आन्दोलन व अपना समर्थन भी दिया। इसी समर्थन से उत्प्रेरित होकर तथा हिन्दी की सहजता एवं

---

*सहायक प्रोफेसर, इतिहास, एम.पी. पी.जी. कॉलेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर, मो. 9919235427

समरसता से भारतीय राष्ट्रवाद का विकास होने लगा और यही कारण है कि, हिन्दी बाहुल्य क्षेत्र की अधिकता एवं उत्तर भारत की समता को देखते हुए दक्षिण के राज्यों ने भी हिन्दी को राजभाषा मानने हेतु अनमने मन से हामी भरी थी। लेकिन, कांग्रेस की ढुलमुल नीति के कारण यह हिन्दी भाषा हासिये पर चली गई।

देश की आजादी को आज 73 साल हो गये फिर भी हम लोग अनगिनत भाषाओं के मकड़जाल में फंस गये। जो राष्ट्रवाद के विकास में बाधक बना। डॉ. राम मनोहर लोहिया के अनुसार आजादी के तत्काल बाद से ही अंग्रेजी की जगह हिन्दी का प्रयोग शुरू हो जाना चाहिए था।

प्रारम्भिक शिक्षा उस प्रदेश की मातृभाषा में और उच्च शिक्षा केवल हिन्दी में दी जानी चाहिए और साथ ही साथ प्रान्त व केन्द्र के सभी सरकारी कार्य केवल राष्ट्रभाषा में होने चाहिए। क्योंकि, अंग्रेजी के अन्यथा मोह में पड़कर अपनी मातृभाषा का अनादर करते जा रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनने के लिए पहली शर्त है कि, उसके बोलने वालों की संख्या बल और भाषाई समृद्धि साहित्य का भण्डार भरा-पूरा हो, इसलिए हिन्दी भाषी लोगों की संख्या अधिक से अधिक बढ़ाने का प्रयास किया जाये। देश की एकता को बनाये रखने के लिए एक राष्ट्र भाषा की अति अनिवार्यता है। क्योंकि, समूचे देश को जोड़ने वाली सम्पर्क भाषा हिन्दी के अभाव के कारण ही भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857) में पराजय हुई थी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की जब स्थापना हुई थी (1600 ई.) तो उस कम्पनी की भाषा अंग्रेजी ही थी और अपने व्यापार को सुचारू रूप से चलाने हेतु कुछ भारतीयों को भी अंग्रेजी की शिक्षा-दीक्षा देकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में ले लिया और उसके बाद जो भी भारतीय थोड़ा बहुत अंग्रेजी जानना समझना व लिखना जान जाता था तो उसको ईस्ट इण्डिया कम्पनी में छोटा-मोटा पद दे दिया जाता था। इससे अंग्रेजी की महत्ता बढ़ती गयी और अंग्रेज भी अंग्रेजी को को खुलेआम बढ़ावा देने लगे जिसके कारण शासन-प्रशासन में भी अंग्रेजी भाषा का ही प्रयोग होने लगा और हिन्दी भाषा का महत्व घटने लगा। आज भी जो भारतीय अंग्रेजी का जानकार होता है या अंग्रेजी में बोलने का थोड़ा-बहुत जानकारी होती है, उसको आम जनमानस में बहुत महत्व दिया जाता है, जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए।

हिन्दी केवल भाषा मात्र नहीं है अपितु इसमें देश की सामाजिक संस्कृति को सजोकर रखने की अद्‌भुत क्षमता भी है। हिन्दी भाषा से देश में भारतीय संस्कृति की गरिमा प्रखरित होती है। यह देश में राष्ट्रीय एवं भावनात्मक एकता की पहचान भी है।

भारत विश्व का सबसे बड़ा संसदीय जनतन्त्र है, लेकिन राजभाषा के मामले में हम सभी देशों से पीछे हैं। संविधान सभा ने 14 सितम्बर-1949 को हिन्दी के राजभाषा बनाया। अनुच्छेद-351

के तहत हिन्दी के विकास की जिम्मेदारी केन्द्र सरकार पर डाली गयी लेकिन आज 73 वर्ष बाद भी दक्षिण भारत में राजभाषा हिन्दी का विरोध जारी है। फिर भी अधिकतर उपयोगिता के कारण हिन्दी का क्षेत्र लगातार बढ़ा है और भारत में सौ करोड़ से अधिक हिन्दी भाषी लोग हैं। कामचलाऊ हिन्दी बोलने वालों की संख्या लगभग ढाई करोड़ है। हिन्दी सबको जोड़ने वाला रससूत्र है। दक्षिण में हिन्दी के प्रयोग से राष्ट्रीय एकता मजबूत होगी। दक्षिण भारत के लोग सौहार्दपूर्ण शान्तिपूर्वक विचार करें और अंग्रेजी का मोह छोड़ दें, राजभाषा व अपनी भाषाओं से प्यार करें और इस प्रकार राष्ट्रवाद के विकास में हिन्दी को प्राथमिकता देते हुए हिन्दी का एवं द्वितीय भाषा के रूप में दक्षिण के सभी राज्य अपनी-अपनी भाषा तमिल, तेलगु, कन्नड़, उड़िया का प्रयोग करें।

वैश्विक स्तर पर उभरता भारत

कृष्ण कुमार*

भारत विश्व की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक है, जिसमें बहुरंगी विविधता और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है। इसके साथ ही यह स्वयं को बदलते समय के साथ ढालती भी आयी है। भारत युगों-युगों से अपनी अद्‌भुत क्षमताओं के लिए न केवल संपूर्ण विश्व को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है, बल्कि उनके लिए कौतूहल का विषय भी रहा है। भारत अपनी विशिष्टताओं के बल पर अतीत में भी संपूर्ण विश्व का सिरमौर था और आज भी विश्व के लिए प्रेरक है। सुप्रसिद्ध इतिहासविद् बिल ड्यूरंट ने कहा है कि, ''भारत हमारी नस्लों की मातृभूमि थी और संस्कृत, यूरोपीय भाषाओं की माता थी, वह हमारे दर्शन की माता थी और वह अरब के द्वारा हमारे गणित की भी माता थी और बुद्ध के माध्यम से क्रिश्चियनिटी में उपलब्ध आदर्शों की और ग्राम समुदायों के द्वारा हमारे स्वशासन और लोकतंत्र की भी माता थी। इस प्रकार भारत माता विभिन्न प्रकार से हम सबकी माता थी''।

काल के प्रवाह से किसी भी राष्ट्र के सांस्कृतिक व सामाजिक मूल्य परिवर्तित व परिवर्धित होते रहते है। समाज का उत्थान व पतन होता रहता है और भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। अनेकों आक्रमणों, सदियों की गुलामी और अपनी गलतियों के कारण भारतीयों मूल्यों का भी ह्रास हुआ है, फिर भी इस आसुरी एवं भोगवादी प्रवृत्ति के बढ़ते प्रभाव में भी भारतीयता की अविरल धारा बहती रही है। भारत आज भी अपने वैशिष्ट्य को न केवल बनाए रख सकने में सक्षम रहा है, बल्कि वह संपूर्ण विश्व के साथ कदम से कदम मिलाकर प्रगति के नित नए सोपान भी चढ़ रहा है। भारत विश्व कल्याण व विश्व शांति का हेतु है और भारत के उदय में ही विश्व का उदय सन्निहित है।[1]

आज जहां एक ओर संपूर्ण विश्व विभिन्न प्रकार की मंदियों, समस्याओं एवं प्राकृतिक व्याधियों से सर्वत्र घिरा हुआ है और कोई समाधान उन्हें सूझ नहीं रहा है, वहीं भारत आज भी वैश्विक समस्याओं का न केवल कुशलता से सामना कर पा रहा है, बल्कि अपने परंपरागत ज्ञान के

*असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति शास्त्र, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर) ● युगद्रष्टा ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की 50वीं एवं राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज की 05वीं पुण्यतिथि के अवसर पर आयोजित सप्तदिवसीय व्याख्यानमाला में दिनांक 20 अगस्त 2019 को दिया गया व्याख्यान।

आधार पर संपूर्ण विश्व का मार्गदर्शन भी कर रहा है।

अंतर्राष्ट्रीय मामलों के विशेषज्ञ कहते है कि किसी राष्ट्र के उत्थान और भाग्य को सैन्य शक्ति से अधिक राजनयिक मोर्चे पर उसकी सफलता तैयार करती है। जहां तक भारत की बात है, शांतिप्रिय देश के रूप में भारत की अंतर्राष्ट्रीय छवि भी बहुत निखरी है। उदारीकरण एवं विश्व व्यापार में तेजी से बदलते रूझानों ने भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में बहुत परिवर्तन किया है। स्वयं पर बहुत अधिक केंद्रित रहने वाली अर्थव्यवस्था से इसे वैश्विक रूप से एकीकृत अर्थव्यवस्था में बदलने के सफल प्रयासों ने अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारत की छवि पर सकारात्मक प्रभाव डाला है। हाल ही में भारतीय राजनय ने बेहद सतर्क तथा संभले कदमों से सशक्त एवं सक्रिय कदमों तक की बड़ी छलांग लगाई है। भारत के प्रधानमंत्री द्वारा अपने शपथ ग्रहण समारोह में दक्षेस (SAARC & BIMSTEC) राष्ट्रों के प्रमुखों को आंमत्रित करना, अपने आप में बहुत कुछ संकेत करता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि दुनिया की शुरूआत घर से होती है। व्यक्ति से परिवार, परिवार से पास-पड़ोस, पास-पड़ोस से समाज, समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से विश्व (व्यक्ति-परिवार-पड़ोस-समाज-राष्ट्र-विश्व) की ओर संबंधों का विस्तार होता है। भारत की विदेश नीति भी इसी आधार पर कार्य करती दिख रही है। प्रधानमंत्री के शपथ ग्रहण में दक्षेस देशों के शासनाध्यक्षों को आमंत्रण, सत्ता संभालने के तुरंत बाद भूटान से विदेश यात्राओं की शुरूआत, आगे चलकर नेपाल व बांग्लादेश के साथ ऐतिहासिक समझौते आदि संकेत देते हैं कि भारत अपनी दुनिया की शुरूआत अपने पड़ोस मे करना चाहता है और वक्त की मांग भी यही है।[2]

एक महाशक्ति के रूप में स्थापित होने में भारत के समक्ष उसके पड़ोसी ही अब तक समस्याएं उत्पन्न करते आए है। दक्षिण-एशिया एक जटिल क्षेत्र है। इस क्षेत्र के देशों की साझा विरासत और ऐतिहासिक रिश्ते है। इसके साथ ही इन देशों के धार्मिक, जातीय, भाषायी एवं राजनीतिक ताने-बाने में विविधताएं भी परिलक्षित होती है। तीस वर्ष के अस्तित्व के बावजूद, दक्षेस ने बहुत ही धीमी और सुस्त प्रगति दर्ज की है। क्षेत्र में बहुत अर्से के बाद सरकारों के लोकतांत्रिक स्वरूप ने कुछ जमीन हासिल करना शुरू किया है और कुछ देशों की आर्थिक वृद्धि दर में भविष्य के लिए कुछ सकारात्मक संकेत दिखाई दिए हैं। इस क्षेत्र में भारत की स्थिति क्या है? भारत आकार और आबादी में सबसे विशाल है, प्रभावशाली लोकतंत्र के रूप में इसका रिकार्ड कमोबेश स्वच्छ रहा है और इसकी अंतर्राष्ट्रीय छवि में व्यापक सुधार हुआ है। साथ ही भारत को एक ऐसे देश के रूप में देखा जाने लगा है, जिसका वैश्विक रंगमंच पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाना निश्चित है। परिणामस्वरूप दक्षिण-एशिया के सभी अन्य देश भारत के सामने बौना महसूस करने लगे है। दुर्भाग्यवश, भारत के इसी बढ़ते कद की बदौलत ऐसे हालात भी उत्पन्न हुए है, जिनमें छोटे पड़ोसी देश उसे गलत नजरिए से 'बड़े भाई' जैसा व्यवहार करने वाले देश के रूप में देखने लगे है। कुछ

पड़ोसी देश तो भारत से रियायतें प्राप्त करने के लिए तथाकथित 'चीन कार्ड' खेलना भी पसंद करते हैं। इस क्षेत्र के लिए भारत का दृष्टिकोण, काठमांडू में दक्षेस शिखर सम्मेलन के दौरान प्रधानमंत्री द्वारा व्यक्त किया गया। उन्होंने कहा, भारत के लिए, इस क्षेत्र में हमारा विजन पांच स्तंभों-व्यापार, निवेश, सहायता प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग, हमारी जनता के बीच सुव्यवस्थित संपर्क के माध्यम से मेल-जोल पर टिका है।[3]

प्रधानमंत्री ने जिस अंदाज से केन्द्र और राज्यों के अभिमत को संगठित कर सर्वसम्मति से 100वां संविधान संशोधन (बांग्लादेश सीमा समझौता) पारित कराना सुगम बनाया और संसद के दोनों सदनों में वर्ष 1974 के इस समझौते और इससे संबंधित वर्ष 2011 के प्रोटोकॉल के अनुमोदन का मार्ग प्रशस्त किया, वह प्रशंसनीय है। बांग्लादेश यात्रा का सही मायने में सबसे महत्वपूर्ण परिणाम भारत को व्यापार और यात्रा के लिए बांग्लादेश की ओर से अपनी जमीन से पारगमन की सुविधा उपलब्ध कराने संबंधी समझौता है। इससे भारत के पूर्वोत्तर तथा अन्य भागों के बीच संपर्क में उल्लेखनीय सुधार होगा, जो अब तक संकरे और असुरक्षित सिलीगुड़ी गलियारे पर निर्भर था जो 'चिकन नेक' के नाम से जाना जाता था।[4]

भारत के समक्ष पाकिस्तान शुरू से ही बाधा खड़ी करता आ रहा है। पाकिस्तान के साथ समस्या की जड़ पाकिस्तान के भीतर मौजूद विविध शक्ति केन्द्रों में है। ताकतवर सेना, प्रभावशाली आईएसआई, कट्टरपंथी ताकतें और गुट तथा पाकिस्तान में लोकतांत्रिक तरीके से निर्वाचित लेकिन कमजोर सरकार। जब तक इन शक्ति केन्द्रों के बीच भारत से रिश्ते सुधारने पर सर्वसम्मति नहीं बनेगी, तब तक इस बारे में कोई भी ठोस प्रगति महज ख्याली पुलाव ही रहेगी।[5]

राजनयिक जगत की नई राहों के तहत जहां छोटे देशों के साथ दोस्ती पर बल दिया गया, पड़ोसियों के साथ संबंध सुधारने की कोशिश की गई, वहीं अमेरिका, जापान, चीन, फ्रांस, कनाडा जैसे देशों की यात्रा कर प्रधानमंत्री ने 'मेक इन इण्डिया' कार्यक्रम की अच्छी मार्केटिंग कर भारत को दुनिया के समक्ष 'ब्रांड इण्डिया' के तौर पर पेश किया, जिसका सीधा लाभ विदेशी निवेशकों के भारत के प्रति भाव को सुधारने में मिला है। यही कारण है कि भारत वैश्विक पटल पर अपनी एक सशक्त उपस्थिति दर्ज कराने में सफल रहा है, जिसमें भारत के यमन में चलाए गए 'आपरेशन राहत' जैसे विभिन्न साहसिक फैसले, आपदाग्रस्त नेपाल की मदद को स्वयं आगे आने के साथ-साथ 'साफ्ट डिप्लोमेसी' के सारे आयाम शामिल हैं। संयुक्त राष्ट्र में भारत द्वारा प्रस्तावित 'अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस' (21 जून) के प्रस्ताव को 177 देशों का समर्थन मिलना भारत के बढ़ते कद का एक उदाहरण है, पिछले कई वर्षों से संयुक्त राष्ट्र शांति रक्षा अभियानों में भारत ने दुनिया में सबसे अधिक योगदान किया है।[6]

दुनिया में दूसरे सबसे बड़े समुदाय के रूप में भारतीयों की उपस्थिति ने अन्य देशों के साथ

भारत के संबंधों को वांछित रूप से प्रोत्साहन दिया है। हाल के रूझान बताते हैं कि अब तक भारत के प्रति निष्क्रिय रहे देशों ने भी भारत के साथ संबंध मजबूत करने में अपनी रूचि प्रदर्शित की है। दुनिया में भारतीयों का सबसे बड़ा उच्च-कौशलयुक्त समूह होने के कारण कोई भी देश भारत को नजर-अंदाज नहीं कर सकता, जो दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और चीन को भी पछाड़ते हुए सबसे तेज विकास करने वाली अर्थव्यवस्था है। विश्व को मंदी के दौर से बाहर निकालने में सक्षम एक विशाल मध्यमवर्गीय बाजार भी भारत के पास है।[7]

बहुस्तरीय, क्षेत्रीय एवं द्विपक्षीय स्तरों पर संस्थागत घटनाक्रमों से भी आर्थिक कूटनीति को अधिक महत्ता मिल गई है। भारत की आर्थिक वैश्विक गतिविधियां नए रास्ते पर पहुंच गई हैं और भविष्य में इनमें प्रगति होने की संभावना है। देशों के बीच संपर्क की जो प्राथमिक संभावना राजनीतिक, सैन्य एवं रणनीतिक सहयोग के क्षेत्र में होती थी, आर्थिक वैश्वीकरण और उदारीकरण के दौर में आर्थिक संपर्क उनकी जगह लेता जा रहा है। तीव्र गति से विकास करती अर्थव्यवस्थाओं में से एक होने के कारण प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से प्राप्त धन का इस्तेमाल भारत अपनी परंपरागत सैन्य क्षमताओं के साथ-साथ परमाणु एवं मिसाइल प्रौद्योगिकी के आधुनिकीकरण में कर रहा है, जिससे भारत की सैन्य क्षमता को मजबूती हासिल हुई है और वह दुनिया की एक प्रमुख सैन्य शक्ति के रूप में उभरा है। विभिन्न प्रकार के आग्नेयास्त्रों यथा-पृथ्वी, आकाश, अग्नि आदि का विकास, परमाणु पनडुब्बियों का विकास, हल्के विमानों का निर्माण (तेजस) आदि ने भारतीय सैन्य शक्ति को मजबूती प्रदान की है। अग्नि-5 के विकास ने भारत को विश्व के चुनिंदा देशों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है।[8]

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि एक महान शक्ति अपरिहार्य रूप से एक समुद्रीय शक्ति भी रही है। भारतीय नौसेना एशियाई समुद्री क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण खिलाड़ी के रूप में उभरी है, जिसमें अपनी सीमाओं के अंदर के जल क्षेत्र के बाहर भी अभियान संचालन की संभावना है। हाल ही में यमन संकट के दौरान भारतीय सेना के पोतों ने न केवल भारतीय नागरिकों को सुरक्षित बाहर निकाला बल्कि अन्य देशों के लोगों ने भी भारतीय सेना की मदद ली।

हाल के वर्षों में विज्ञान-प्रौद्योगिकी एवं अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में भारत ने वैश्विक स्तर पर अपनी जोरदार उपस्थिति दर्ज कराई है, जिसे देखकर दुनिया के विकसित देश भी हतप्रभ हैं। भारत द्वारा लाल ग्रह की कक्षा में मंगलयान की स्थापना का पल अनमोल है। इस एक क्षण ने विश्व फलक पर भारतीय कौशल, समर्पण और समयबद्धता का सिक्का जमा दिया। 5 नवंबर, 2013 को PSLV-25 से प्रक्षेपित मंगलयान 24 सितंबर 2014 को मंगल की कक्षा में प्रवेश कर गया। इसके साथ ही भारत ने प्रथम प्रयास में ही सफलता अर्जित की, जो कि अपने आप में बड़ी उपलब्धि है।[9]

अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत की शानदार उपलब्धि रहीं है। वर्तमान में भारत न केवल

अपने उपग्रहों को प्रक्षेपित कर रहा है, वरन् इसने प्रक्षेपण कार्य व्यावसायिक स्तर पर भी शुरू कर दिया है। इसरो द्वारा उपग्रहों के प्रक्षेपण में लगा खर्च विश्व के अन्य देशों की तुलना में काफी सस्ता है। इसके अलावा चन्द्रयान की सफलता ने भी अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में भारत की धाक जमाई है। अब चंद्रयान-2 को प्रक्षेपित करने की तैयारी है।

आर्थिक क्षेत्र, मानव संसाधन विकास, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों, विज्ञान-प्रौद्योगिकी आदि में भारत की प्रगति ने दुनिया को भारत की ओर ध्यान देने के लिए विवश कर दिया है। वर्ष 1947 से वर्ष 2015 तक लगातार सशक्त होते हुए भारत ने अपना भाग्य रचा है और वैश्विक व्यवस्था में न्यायोचित स्थान प्राप्त किया है। वह दिन दूर नहीं जब भारत संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बन जाएगा, जो कि उसे बहुत पहले बन जाना चाहिए था।[10]

भूमंडलीकरण के बाद की दुनिया एक छोटी-सी जगह प्रतीत होती है, जहां कोई एक-दूसरे के विकास के लिए मना नहीं कर सकता। इस वक्त कई देश मिलकर संयुक्त राष्ट्र संघ, जी-20, जी-7, ब्रिक्स और जलवायु परिवर्तन पर अंतर्सरकारी पैनल जैसे मंचों पर साथ बैठकर चर्चा करते है। भारत भी ऐसे कई संगठनों का सदस्य है। जलवायु परिवर्तन एवं दोहा दौर की वार्ताओं में भारत ने बखूबी विकासशील देशों का नेतृत्व किया है। विकासशील देश विशेषकर छोटे-छोटे द्वीपीय देश आज उम्मीदों के साथ भारत की ओर देख रहे है। इसके अतिरिक्त ब्रिक्स द्वारा स्थापित बैंक का प्रथम अध्यक्ष भारत के के.वी. कामथ को बनाया गया, जो गौरव की बात है।[11]

वर्तमान में वैश्विक मंदी आतंकवाद, जलवायु परिवर्तन जैसे मुद्दों पर दुनिया भारत की ओर देख रही है। भारत स्वयं आतंकवाद से अत्यधिक प्रभावित रहा है, परन्तु हाल ही में म्यांमार की सीमा में घुसकर भारतीय सेना द्वारा उग्रवादियों के खिलाफ कार्यवाही से आतंकियों एवं उग्रवादियों के खिलाफ भारत की एक मजबूत छवि उभरी है। वहीं अफगानिस्तान में भारत से एक प्रमुख भूमिका निभाने की अपेक्षा की जा रही है।

कहा जा सकता है कि वैश्विक स्तर पर भारत की छवि में अत्यधिक सुधार हुआ है तथा इसे भविष्य की महाशक्ति के रूप में देखा जाने लगा है। भारत भी निरंतर उसी दिशा में अग्रसर है, परंतु अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। देश में विद्यमान अनेक समस्याओं जैसे-गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, जातिवाद, संप्रदायवाद, नक्सलवाद, क्षेत्रवाद, महिलाओं की सुरक्षा आदि का समाधान जब तक नहीं किया जाता तब तक भारत का महाशक्ति बनने का सपना अधूरा ही रहेगा। हालांकि इन समम्याओं के समाधान हेतु सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के कल्याणकारी, रोजगार परक-कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, परंतु भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं के कारण उनका क्रियान्वयन सही तरीके से नहीं हो पा रहा है। फिर भी उम्मीद यही है कि देश को इन समस्याओं से शीघ्र ही निजात मिलेगी और वह एक महाशक्ति बनेगा।[12]

इक्कीसवीं सदी की दुनिया ने भारत की परिस्थितियों को भी काफी हद तक बदल दिया है। अभी भी क्षमता-निर्माण के लिए एक आश्चर्यजनक एजेंडे के साथ एक विकासशील देश भारत आने वाले वर्षों में सबसे अधिक जनसंख्या वाले देश का ही स्थान नहीं प्राप्त करेगा, बल्कि यह दुनिया की चार सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक और पर्याप्त अंतरिक्ष क्षमताओं के साथ एक परमाणु शक्ति संपन्न देश होगा और दक्षिण-एशिया में, जो वैश्विक आबादी के एक-चौथाई से अधिक के लिए उत्तरदायी है, भारत क्षेत्रीय क्रम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर निर्विवाद अग्रणी राष्ट्र हो जाएगा।

'सबका साथ सबका विकास सबका विश्वास' एक आकर्षक विचार है। सतत् विकास के लिए यह राजनीतिक और आर्थिक रूप से एक व्यावहारिक मॉडल है। सतत् व समावेशी विकास के मॉडल को अपनाकर भारत जहां एक तरफ विकास दर में तीव्र वृद्धि कर रहा है, तो वही दूसरी ओर गरीबी, शिक्षा का स्तर, आय की असमानता को कम करने व रोजगार को बढ़ाने में लगा है। आज भारत के पास विश्व का सबसे बड़ा बाजार व विश्व की सबसे बड़ी युवा शक्ति है। कौशल विकास के माध्यम से प्रशिक्षित होकर ये युवा शक्ति विश्व स्तर पर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाने को तैयार है। देश के अंतिम पंक्ति में खड़े अंतिम मनुष्य के जीवन की स्थिति ही इस देश के विकास की निर्णायक कसौटी होगी। जीवन का भिन्न दृष्टि से विचार करने वाला तथा उस विचार के आधार पर विश्व का सिरमौर देश बनकर सदियों तक जगत का नेतृत्व करने वाला अपना देश रहा है। आज एक बार फिर से विश्व की निगाहें भारत की ओर देख रही हैं।

संदर्भ

1. इण्डिया 2017, ए रिफरेन्स मैनुअल, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
2. सईद, एस.एम., 'भारतीय राजनीतिक व्यवस्था', भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2015, पृष्ठ-198।
3. वही, पृष्ठ 297।
4. इण्डिया, मिनिस्ट्री आफ सोशल जस्टिस एण्ड एम्पावरमेन्ट, नई दिल्ली, 2018।
5. भारत सरकार, ग्रामीण क्षेत्र व रोजगार मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 2015-16।
6. सेन, अमर्त्य, "भारत : विकास की दिशायें, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 2000 पृष्ठ 198।
7. सेन अमर्त्य, "भारतीय अर्थतंत्र, इतिहास और संस्कृति", राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 2005।
8. वही, पृष्ठ-279।
9. इण्डिया विजन 2020 समिति रिपोर्ट नीति आयोग, 2016।
10. वरमानी आर.सी., समकालीन राजनीतिक सिद्धान्तों का परिचय, गीतांजली पब्लिसिंग, दिल्ली, 2015।
11. कोठारी, रजनी, 'भारतीय राजनीति : कल और आज', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005 पृष्ठ-125।
12. वही, पृष्ठ-215।

Stress in Students: Major causes and effective hacks to overcome

Nisha Dubey*

It was a day before when I heard a sad news that a student lost his life due to cardiac arrest. I was really shocked to hear that he was only 10 years old. I mean is this the right age for sudden death due to stress. Next question, which came in my mind was "what is causing stress in these sparkling eyes of kids and youngsters".

After analyzing and comparing lifestyle of different students with different schedule, I come to know various major stress boosters among students.

1. Competition

In this competitive world, everyone is chasing someone else to win the race. The day we start our schooling this chase gets started. Getting first rank in every test and exam is the main target for every student and parents. It is not possible for every kid to win the race there will be a single winner for each competition.

2. Too much workload

Many kids are blessed that they can handle more than one activity at the same time time easily. Every parent wants their kid to perform best in every activity which is not possible. We all have different qualities and interests that encourage us to do things in life.

3. Lack of sleep

Due to different activities and academics, many students find themselves unable to sleep properly. A sound sleep is very essential for our brain to function properly and it helps us to deal with stress effectively.

4. Multitasking

Either its studies or extra curricular activities we all have to give some time for

*Software Engineer & Social Blogger

that. If we will continue to do multiple tasks at the same time it will always hamper our body mentally and physically both.

5. Pressure

I have realized that most of the tasks we do just because of peer pressure of society and family. Like "What people will say" force us to do different tasks which we don't want to do ever.

6. Sudden changes in lifestyle

Two days extra class, then seminars, after that different function to be held in school. All these make us tired Physically sometimes which is never beneficial for our body and brain.

7. Poor time management

We all have equal hours, but some people manage this time very effectively and utilize every seconds of life. If we fail to manage our working hours efficiently then we can't get our work done on time.

8. Academics

Nowadays kids have a lot of books to read in less time. I have seen many students reading topics from their books, then they study same topic online. Yes! This way is very effective in getting deep knowledge about any topic, but causes more stress if we start same process with every topic.

9. Non interesting syllabus

At a certain age, we all have to study same syllabus. Most of us don't love every subject equally.

These were a few common causes, which we all must read and think about all.

Now I would like to share something which should not be neglected while talking about students and studies.

Earlier extracurricular activities were very limited in schools. So most of the talented kids were forced to do studies only up to class 10th and 12th. If I compare my school time with today's schooling if a kid is very good in singing or dancing there were very less opportunity for their talent. In fact parents used to ask them to complete their basic education first, then think about their hobbies. Nowadays every student is getting a chance to enhance their talent and choosing their hobbies as a career.

A few things which guardians/parents can do for reducing stress among their

kids-

1. Talk to them, it is very essential. Nourish your relationship in such a way that your kid never hide anything from you. We all posses different likes and dislikes at different stages. So, never react too harshly to something, as it could make you an enemy of your kid. For example, at some age, we like long hairs and at some point of time we love to cut them short. In such situations I have seen some parent behaving too rude to their kids. Which is not needed I think, for such things we should let them choose until unless it is not related to their health.
2. Make them free for selection of their extra curricular activities. Maybe dancing could be a good career nowadays, but my kid loves painting. So just because I want her to be a good dancer and she loves painting, she is doing both the classes. Which is not good for her in any way. She is dealing with the extra pressure. Not only this she is not leaving the painting because she loves to do that, so she is okay with both.
3. Money is not everything in this world. Teaching your kids is very essential so that they can gain knowledge and turn this knowledge into wisdom. Money can be earned in multiple ways, but earning moral values are far more important.
4. Enhance peace and love in your home. Positive vibes in your house encourage your kids to do studies and learn new things quickly. Asking kids to behave in a certain ways never works if you don't show the same in your behavior.

A few things which teachers can do for reducing stress among their students-

1. Do not compare students in your class. It is good that you give an example of bright students in your class, which could motivate many students, but it could demotivate most of them at the same time.
2. Organized syllabus is a very important factor for on time completion of lectures and assessments. Teachers make sure that they divide their complete syllabus in such a way that students don't feel burdened in a last few days of exams. Teachers can motivate and help students who find themselves slow in learning and understanding concepts.
3. Reduce extracurricular activities and projects. It is best that students learn easily by doing projects and doing practical implementations. But teachers must make sure that it should be done if it is really time and cost effective for students. If you can teach that simple concept in a 30 minute lecture, then don't ask students to make huge chart papers for that spending several hours of their studies.

Awesome stress management techniques for students, which really works-

1. **Relax**

   Whatever is the situation in your life, just RELAX. Try to stay calm when nothing is going very well. Get some time everyday for yourself, either meditate or do some exercise or yoga, but do something for your brain and body.

2. **Time management**

   Make a time table which suits you well. Same timetable can't work well with every student. So differentiate your study and activity time and work according to that.

3. **Do what you love**

   Sometimes we find ourselves failing to recognize what we love to do. Most of the time we get attracted towards what others do, but we don't love doing that really. So before starting any activity think about your interest and then enroll yourself in different activities.

4. **Don't follow others blindly for the sake of money**

   People are earning well with online marketing, but it is not necessary that it will work well with you. Continue with a career which is your interest and you know it well. I believe if you are good at something you can earn enough money in that job.

5. **Think positive**

   There is always something good in everything that happens. So think positive in every situation. If you fail you get some experience about what not to do and if you get success you become an example.

6. **Manage your tasks and schedule it**

   Anyone can achieve anything in life only hard work is required. Prioritize your work and perform your tasks accordingly.

7. **Stop multitasking**

   The quality of the task is always noticed more over quantity of task. If you want to be stress free in life, then do single work at a time. Always remember doing a single task at a time will increase your performance.

8. **Stop procrastinating**

   A good timetable works as a catalyst in your success, if and only if you always stick to it. Being a student it is very necessary to stop delaying your tasks. Delay in your homework will cause a heap of pending work for the coming days and all this extra work will cause stress in your peaceful life. Try to complete your assignments on the same day.

9. Health First

A healthy body is very essential for a healthy brain. So always manage your lifestyle in such a way that it does not harm your health at all. Most important eat healthy food and avoid eating junk here and there. If you find any difficulty with your health tell the same to your parents and teachers. Manage to visit your doctor time to time for a proper health checkup. Stay healthy and win the world.

10. Take help from elders

Our elders always feel happy to help us. So it's better to seek someone to help rather than getting stressed alone. I always seek my teachers first if they were not available then I ask the same topic to my elder siblings or seniors. So always find a few people who are always willing to help students in studies.

11. Proper Sleep is necessary

Whatever activity or exams you are dealing with, take a proper rest. Try to sleep at least 7 to 8 hours within 24 hours in your daily activities. Lack of sleep reduces your performance in studies. So manage your time in such a way that you get time to take a sound sleep.

12. Give some time for your hobby

Its my personal experience, that whenever we do our favorite activity we get less tired. It also boosts our mood, so try to spend some time in your hobby. Listen to music or dance do whatever you want to do in your free time except sleeping. Sleeping every now and then makes you lazy.

13. Say NO to distractions

Avoid social media while studies. Don't respond to every notification on your phone. Set a no phone time zone in your house and do your studies there.

If you still find yourself stressed then try some breathing exercises, yoga and meditation.

Don't think about things you can't control. Believe in yourself and move ahead in your life. Hard work is the only key for success, so never escape from doing hard work.

Discover a positive vision in life.

Visit http://www.widevisions.in for more such articles and blogs.

Role of Chemical in Water Purification

Gaurav Tiwari*

Introduction:

The first experiment on the water filtration was done by Sir Francis Bacon in the 17th century. He used a sand filter model for water purification i. e. to desalinate the sea water by making its flow through it. He failed the first time in his experiment, but his idea, efforts; got a new interest for various scientists. It was marked as the beginning of research in this field.AntonieVanleewvenhoek and Robert Hook, known as the fathers of microscopy, they have observed the small material particles (tiny particles) for the first time, which were suspended in the water, by using the heavy invented microscope. This gave the basic information required for the study of water pathogens in the future. In olden days the presence of minute particles in the water sample were not considered and people were drinking the same water, as they were not aware of the dangerous effects of these minute particles. The high concentration of these particles in the human body may cause health diseases, after realization of these affects people then started some basic treatment methods of water purification.

Basic water purification techniques:

- **Boiling:**

This is the oldest and effective way of purifying water as it eliminates most microbes causing intestinal related diseases. The water is boiled up to its boiling point to 100 Ocat normal pressure, but this process cannot remove chemical toxins or impurities. Since the heat resistant microbes are not intestine affecting, therefore, complete sterilization of water is not required for human health. The microbes start getting eliminated at temperatures greater than 60°c, hence, it is advisable to boil water for a minimum ten minutes, for additional safety.

The boiling point does not affect the disinfecting process though it decreases with increasing altitudes. The bicarbonate ions are decomposed due to boiling resulting in partial precipitation of calcium carbonate, in areas where the water is very hard.

*Assistant Professor, Department of Chemistry, Maharana Pratap P.G. College Jungle Dhusan, Gorakhpur

Other solutes except calcium of higher boiling points than water are not removed by boiling, their concentration increases in the stored water, hence new pathogens may be found in water, if it has been stored for longer time.

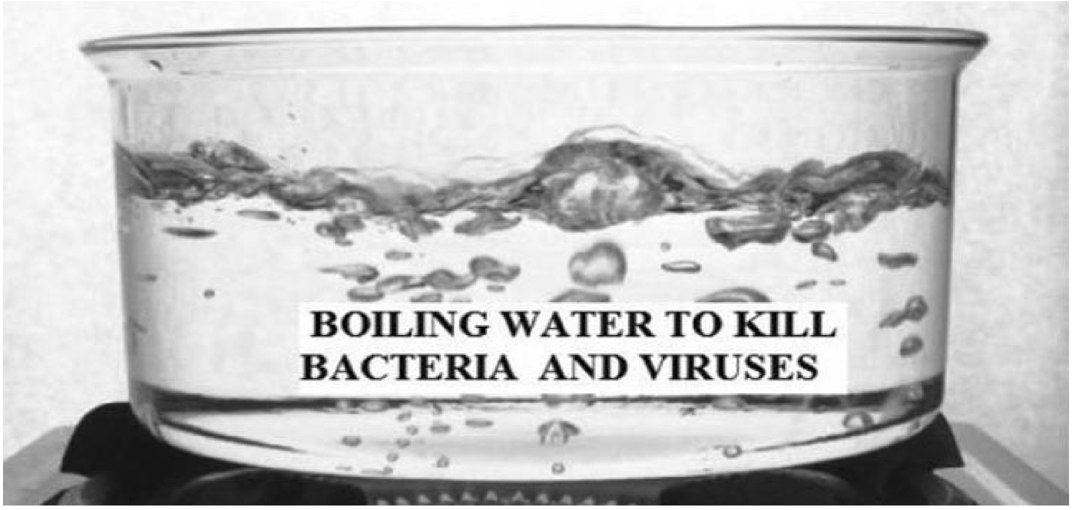

Basic method of boiling water sample to kill bacteria.

Many toxic compounds undergo adsorption by activated carbon having a high surface area. The water, which is passed through activated carbon is used in municipal region, which is also free from organic contamination, taste and odors. Activated carbon is in used in many household filters and fish tanks too. Household filters used for drinking water contain silver as metallic silver nano particles. When this water is kept incarbon block for a longer period, it starts feeding and contaminated due to the growth of micro-organisms. Silver nano particles are acting as a good antibacterial medium, it decomposes toxic halo organic compounds such as pesticides to non- toxic organic compounds.

Boiling:

1. Over fuel is used in the boiling process, hence it costly process and laborious also, as it is a batch process, at home we cannot boil a huge quantity of water.
2. Firewood, kerosene and gas are wasted for boiling purpose which ultimately cutsthe forest trees so there is problem of indoor air pollution and deforestation.
3. There is an objection of taste when water after boiling is applied for drinking purposes.
4. As the method is not safety, as it is an open process and there is a possibility of injury to labours
5. It is very difficult to remove turbidity, chemicals from the water and problem

taste, smell, colour etc.

6. The boiling process is time consuming as it requires a lot of time to boil water andthere no guaranty, only temporary hardness creating salts are removed.
7. Water should be cooled properly before its applications for various purposes, except for hot area applications.

Reverse osmosis:

Mechanical pressure is applied to an impure solution in order to force pure water through the semi permeable membranes. It is considered as the most important method for large scale of water purification; in a theoretical way. The semi permeable membranes are very difficult to form. Algae and other aquatic species colonize the membranes, so it should be well maintained. The term reverse osmosis is also called R.O, where minerals are separated by certain pressure through certain membranes called semi-permeable membrane. Not only ions, but also molecules and large sizedparticles are separated out through this method.

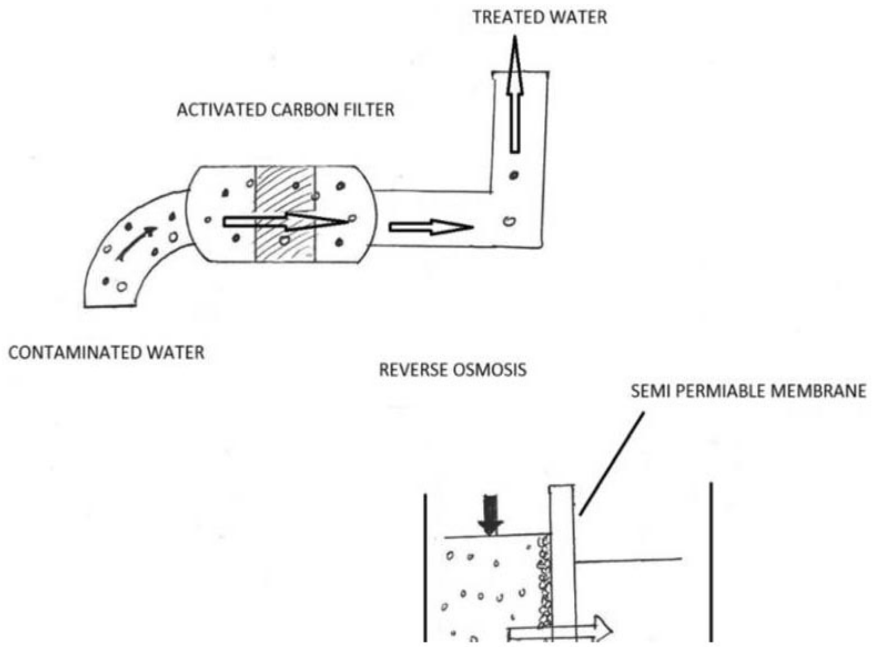

Water passed through AC filter & b. Reverse osmosis

UV water purifier:

1. UV filters have various drawbacks, it cannot filter the bacteria, viruses, also does not remove pesticides rust, arsenic, fluoride, etc. It is difficult here to convert hard water to soft water. There is no special system of storage of water, one

should use separate containers for it.

2. If there is randomly cut off of electricity then there is problem in water purification as there is no special arrangement of storage.
3. If the water, which is to be filtered contain muddy particles then it cannot be filtered through UV filter, hence we should clear it with other filters.
4. As the light which is applied in the filter is invisible so it is very difficult as the light is working properly or not. This may give impure water; there is no special indication of light life.
5. The rays are not remaining in the purified water, if some microbes remain in the filtered water sample, can grow very fast and contaminate the pure water rapidly. The chlorine treatment is needed, though water is filtered through UV filter.

Treatments

To make water safe for drinking or for a specific purpose is the main target to purify the waste water. In Industries, treatments are used to remove unwanted constituents in water, and various methods are applied to remove contaminants like fine solids, pharmaceutical pollutants, and some soluble, insoluble impurities.The various methods used here for purification of water is commonly depended on the quality of water being, the cost of the treatment process and the quality standards expected for water.

PRE TREATMENT: 1. Pumping and containment: This water is transferred into pipes or holding tanks with the help of pups from respective sources. Construction of physical infrastructure is made from special material so that there should not be any contamination addition to the water.

2. Screening: To remove large parts such as sticks, plastic bags, woods, leaves, rubbish and other large particles which may create obstacles in the purification process. Water from ground level doesn't require any screening before other purification steps, as it is coming from the numerous rocky material.

3. Storage: Water from rivers is collected in a bank side reservoir and allows it for a period between a few days up to many months, so that to allow natural biological purification. This process may include slow sand filters. Storage reservoirs are allowed to use when river water is unfit or polluted.

4. Pre chlorination: There are certain micro organisms which are also said to be fouling micro-organisms which grow in pipe work or in the tanks, so to minimize their concentration the water should be pre chlorinated. Excess chlorination is also dangerous as it may affect the quality of water.

5. pH adjustment: The pure water pH range is near to 7 that means (neither acidic nor basic). The sea water pH range is in between 7.5 to 8.4 (slightly basic). If the quality of water is found to be acidic (the range is below 7), then lime soda ash or sodium hydroxide should be added to reuse it further. If the concentration of calcium ion increases in the water sample then the water become so hard i.e, it leads to increase the hardness of water. If we take water into alkaline condition may help in coagulation and flocculation process to work effectively and it also helps to minimize the risk of lead formation which is coming from lead pipes and from the lead soldier during fitting of the pipe. Iron pipes are corroded when comes in contact with moisture, which can be minimized by appropriate alkalinity. The calcium carbonate, which is formed in water can protect metal and reduce metal toxicity.

Coagulation and Flocculation:

The addition of chemicals to drinking water is the first step of purification of water, so that it can remove particles suspended in water. Turbidity and color come to water owing to the presence of organic and inorganic particles present in it.

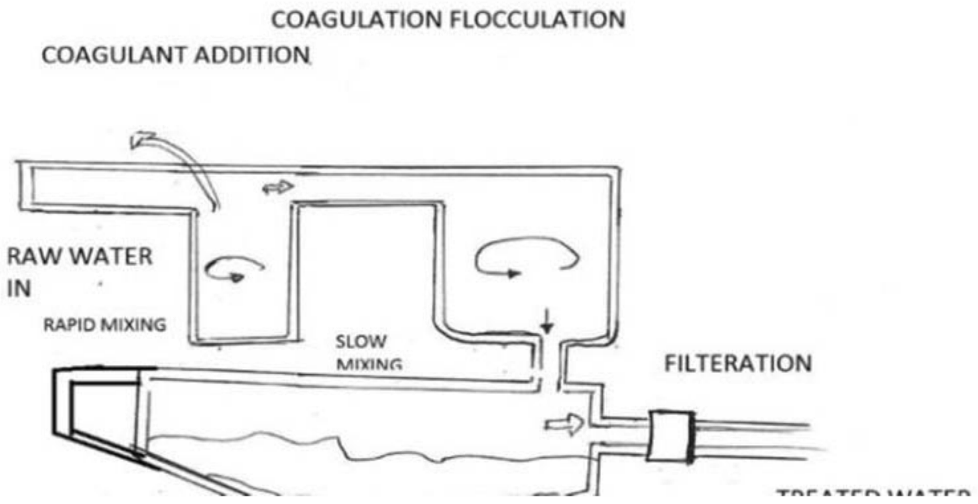

Coagulation and flocculation method

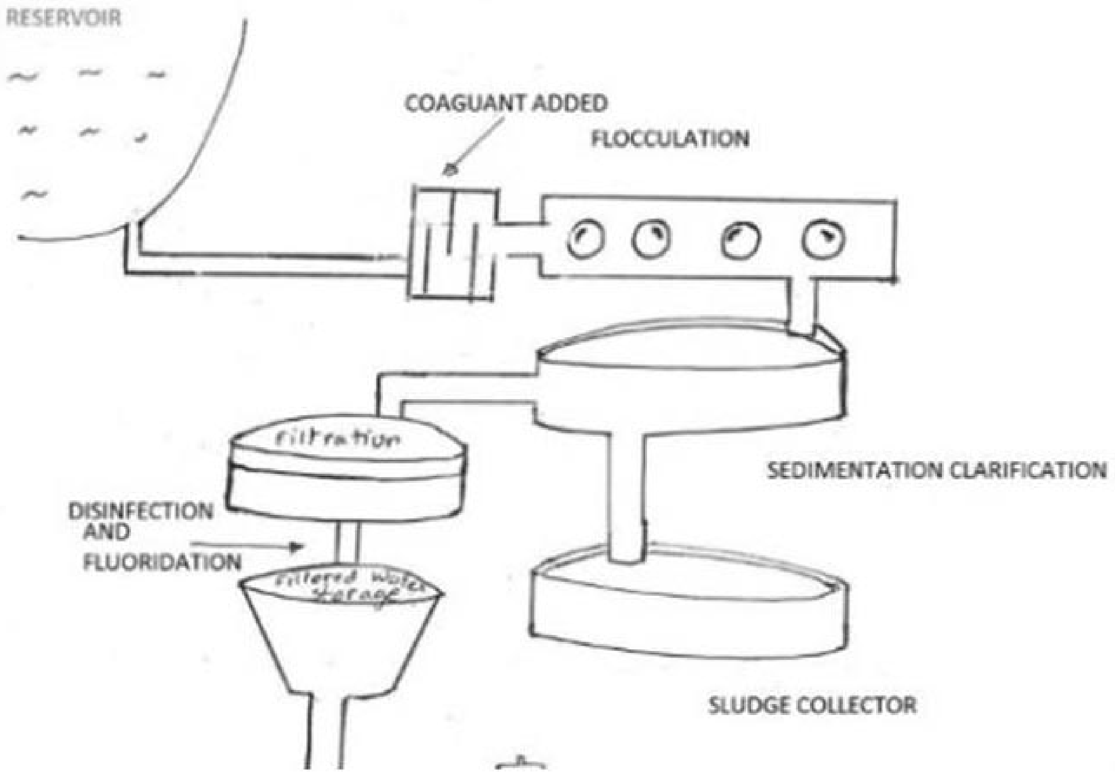

Advanced method, coagulation and flocculation of water sample.

Due to the addition of some inorganic coagulants such as aluminum sulphate (or alum) or iron (III) salts such as iron (iii) chloride, the physical and chemical interaction is caused. After some time interval the negative charges on the practices are neutralized by inorganic coagulants. The metal hydroxide precipitates of the aluminum and iron (III) ions start to develop under natural process, these precipitates combined to form larger particles which later on shows the Brownian movement or motion which is referred to as flocculation process. By sedimentation and filtration, large amorphous aluminum and Iron (III) hydroxides absorb and enmesh particles in suspension and facilitate the removal of particles. The pH range between 5.5 to 7.7 is suitable for the formation of Aluminumhydroxide while Iron (III) hydroxides is formed over a range of pH between 5 to 8.5. There is somewhat confusion over the usage of factor or term coagulation and flocculation. In 1960, organic polymers were developed as coagulant which are used as replacement for the inorganic salt coagulant.There are some polymers named synthetic organic polymer which are with high molecular weight compounds that may carry –ve, +ve or neutral charges.When organic polymers are added to water with particulates, the high molecular weight compounds absorb on particle surfaces and through inter-particle bridging coalesce with other particles to form floc. Poly DADMAC (+ vly charged) very active cationic organic polymer applicable to cleaning process of water.

Sedimentation:

There are various tanks, which are used for sedimentation process. These dimentation process includes collection of smaller sized particles at the base of thecontainer; this is due to gravity acting on them. Due addition of some coagulants to water tiny particles gather together and form floc, these particles moves fast due to Brownian movement. Due to electromagnetism and acceleration the speed become very high. Water from the flocculation tank is transferred to sedimentation tank or basin. The other name for this basin is as clarify. The other name for this basin is as clarifier or settling tank. As due to heavy weight of large particles, settles at the bottom. The size of this tank is bigger as compare to flocculation tanks.The arrangement of these tanks is as shown in the figure; they are placed very close to each other. As due to heavy weight the tiny clay particles after flocculation converted into large sized particles settles at base, so that the pure water which remains at the top collected slowly with the help of pipes.The sludge which is remains at the base of sedimentation tank collected and disposed carefully. In 1904 Allen Hazen showed efficiency to sedimentation process which becomes the main function of speed of particle setting, which also gives information regarding the flow via tank and the surface sides of the tank. The design made for sedimentation tanks is typically within the range of overflow rates between 0.5 to 1.0 allons /minute /square foot

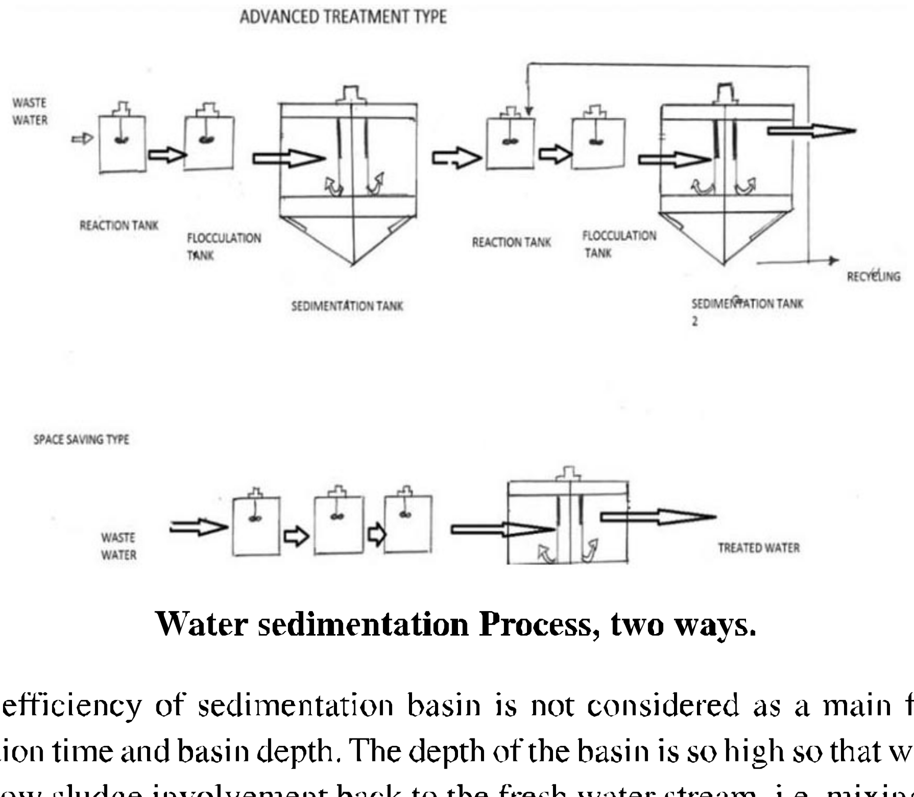

Water sedimentation Process, two ways.

The efficiency of sedimentation basin is not considered as a main function of time detention time and basin depth. The depth of the basin is so high so that watercurrent will not allow sludge involvement back to the fresh water stream, i.e. mixing of sludge

which is formed at the base is protected carefully and is slowly taken out todispose, without disturbance.

A) Sludge storage and removal:

At the bottom of sedimentation basin, the particles settle due to gravity, a huge layer is formed, which we called sludge, slowly it is removed by skilled labour and is given proper treatment so that it can be used further for agricultural purpose, as it may contain organic, inorganic content. Near about 3 to 5% of the total volume of water to be treated, sludge is generated. The treating and disposing cost of sludge formed, can impact the working cost of a water treatment plant.The sedimentation basin is attached with well equipped mechanical cleaning devices that are useful to clean its bottom thoroughly and continuously.

B) Flock blanket Clarifiers:

This method is considered as is a subcategory of sedimentation process, which includes removal of particulates by entrapment in a layer of suspended floc as the water is forcefully transferred towards upward direction. It is an automatic filtration, where water is inserted with chemicals; huge stirrers are managed inside in order to agitate the water content and chemicals so that hard salts present in water sample can reacts with chemicals properly.

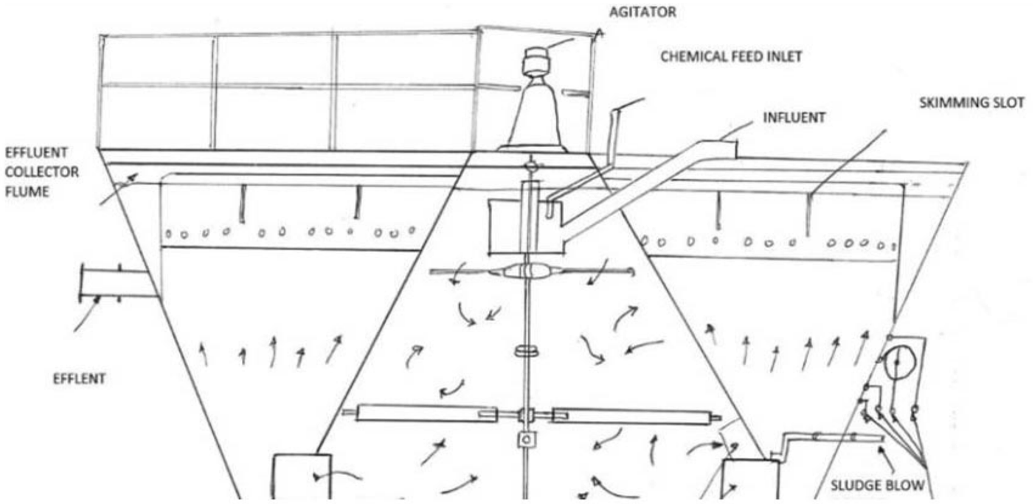

Flock blanket clarifier of sedimentation process

The mechanism of purification of water is same, once water is purified; the sludge formed at the bottom is removed mechanically.

Advantage: The Major advantage of this clarifier is that, it requires less space as compare to conventional sedimentation process.

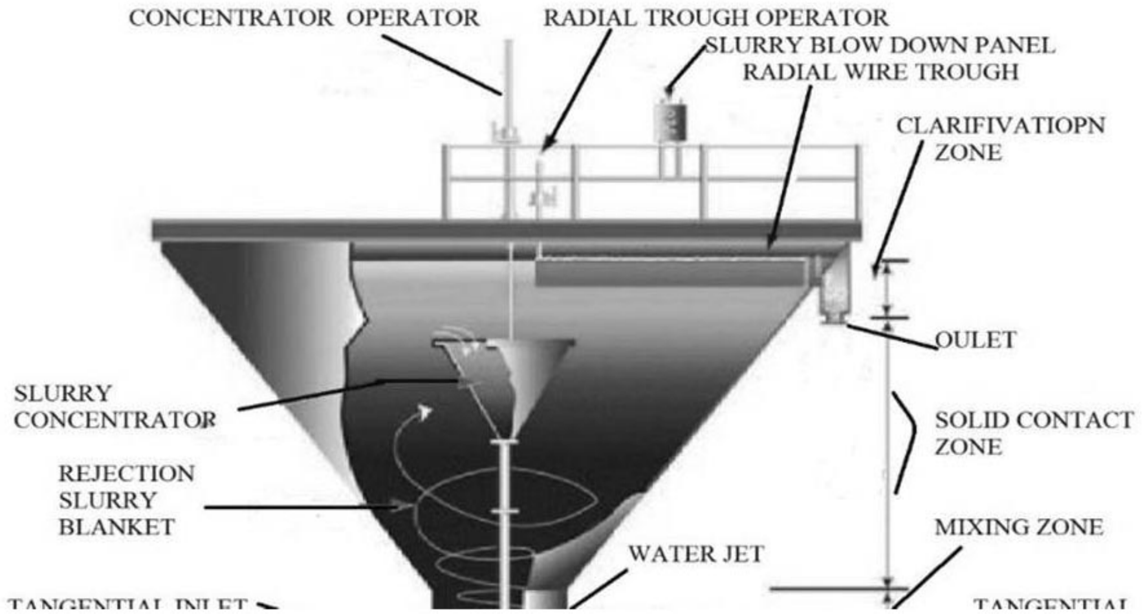

Advanced method of sedimentation process.

Disadvantage: There is high variability in the particle removal efficiency, which depends upon the quality of influent water and flow of influent water rate.

Ion exchange:

The ions which are unwanted and found to be excess can replaced by a simple process of ion exchange systems. Using ion exchange resin or zeolite packed column, water softening, benign Na+ or K+ ions replace, remove Ca++ and Mg ++ ions. Many toxic ions like nitrite, lead, mercury, arsenic, etc, are also removed by ion exchange resins.

Precipitate softening:

Calcium carbonate gets precipitated out of the solution utilizing the common ion effect when the water shows high hardness.A presence of Calcium and magnesium ions is high and is reacted with lime (calcium oxide and calcium hydroxide) or soda ash (sodium carbonate).

Electrode-ionization:

In this method, electrodes are used to remove hardness from water by passing it through a positive and negative electrode.The ion exchange membranes have permeability for only one kind of ions and hence they allow only positively charged ions migrate towards the negative electrode and only negative charged ions towards the positive electrode. These ions are present in water samples.The water produced in this

process is highly pure and deionized, but if we compare it with ion exchange treatment, it has a less degree of purification. Electro dialysis is termed as the complete separation of ions from water sample. If there is question of removal of non-ionic organic contaminants, then reverse osmosis is the suitable process to remove it. Below diagram indicates vertical plates. The plates are made of metal with Zinc and/or Copper being the popular constituents. Basically there are 5-7 plates used in this process.

Ion exchange process:

Ion-exchangers are used in water treatment show the following properties and disadvantages:

1. Ion exchange should not be toxic.
2. Water sample which is, being treated should not discolored by the ion exchangers.
3. Exchange capacity of ions should be high by these ion exchangers.
4. Physical durability should be very high.
5. Ion exchange should be resistant to acids, alkalis and other chemicals.
6. Resins which are applied in the bed should be cheaply and easily available.
7. They must be accomplished by being regenerated and back washed effortlessly and cost-effectively.
8. They must have a great exterior area because ion exchange is a facade experience. The apparatus is precious and supplementary high-priced chemicals are required. If water contains turbidity, then the productivity of the course is reduced. The turbidity should be below 10 mg per liter. If it exceeds, it should be removed first through coagulation and subsequently by filtration.
9. For Industrial and public water dealing systems the ion exchange is generally applied for water treatment. The route provides numerous advantages over other treatment methods. It is atmosphere, friendly, provides high flow rate of treated water and has short protection rate. Along with this completion, there are distinct disadvantages connected with ion exchange, such as adsorption of organic matter, bacterial contamination, calcium sulphate fouling, iron fouling, organic contamination from the resin, and chlorine contamination.
10. Calcium Sulphate Fouling: The most common regenerate (a chemical used to recharge the resin) used for cation resin is sulfuric acid. Some tremendously hardwater contains high amounts of calcium, when this calcium reacts with there generating sulphuric acid; it forms calcium sulphate as a precipitate during the restoration process. This precipitate can pollute the resin beads and can block the

pipes in the vessel.

11. Iron Fouling: Drinking water (Feed water) from the underground bore has soluble Fe (Iron) in the form of ferrous ion. The small amount of this is removed by the ion exchange softeners, but if this water comes in contact with air, prior to treatment, the ferrous ions are changed to ferric ions. These ferric ions precipitate as ferric hydroxide on treatment with water. This compound may clog the resin beads and affect the resin effectiveness. This can even result in malfunction of the softener column.

12. Adsorption of Organic Matter: Lakes and rivers usually contain high amounts of soluble organic matter. Decayed organic matter gives brown and yellow color to the water, which is filtered out through ion exchange resins. The matter is permanently adsorbed in the bed and reduces its efficiency. The quality of water is also poor here. With the help of alum the organic matter is traded and it is settled down as a precipitate.

13. Organic Contamination from the Resin: Ion exchange resin is acting as a source of organic matter. As the resins are made of organic matter, hence it should be treated with ultraviolet light. Bacterial Contamination: Microorganisms like bacteria are not removed by Ion exchange resins from the water sample. The bed itself becomes nutrient for thegrowth of microorganisms. The treated water required heat treatment as there is a possibility of microbes.

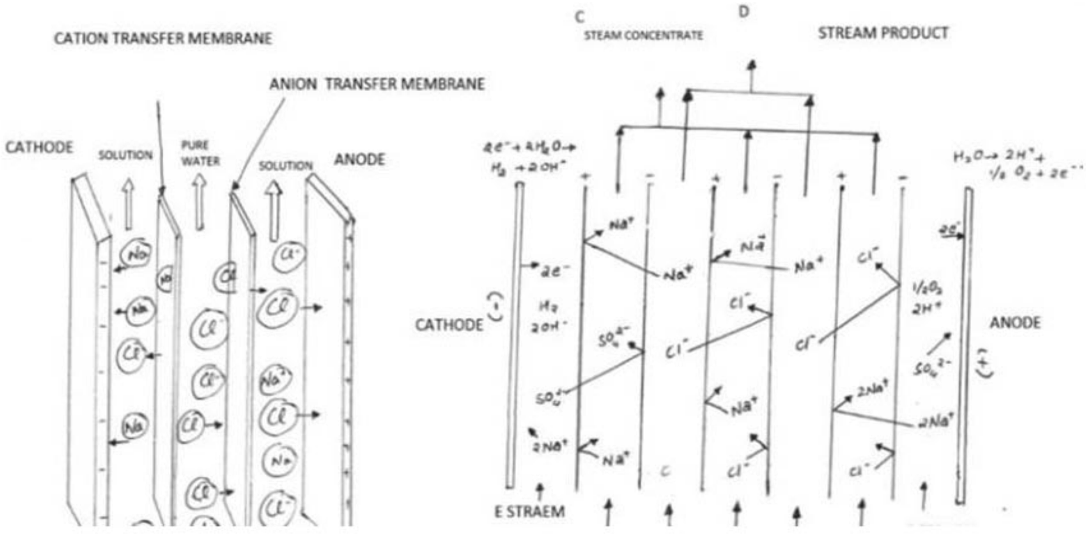

Ion exchange method of water purification.

Various portable methods of disinfection:

The taste, appearance and odour, are the terms which are important for quality of

water but more important term is it should be disinfected primarily. The some what concentration of chemicals in the water does not affect the initial safety. There are some portable methods which can be applied for purification of water in an emergency.

Solar water disinfection:

This is one of most important method of water purification, in a portable manner; solar disinfection is a economical (not so expensive) but can be made by local material. This method is not harmful to the environment i.e. it is eco friendly, Simply with the help of solar rays water is treated with some metallic plates. The contaminated water is passed through the plates which are directly exposed to the sunrays. Owing to the high heat generated by solar plates, the microbes present in contaminated water are killed and is free from the bacteria, viruses etc. Hence this method is the best portable method of purification of water. The solar water system is applicable in desert areas where there is no continuous electricity and the space available for the construction of this panel is free from shadow areas. The solar filterd water can not applied directly for daily use, as it may contain soluble impurities which we cannot see through our naked eyes.

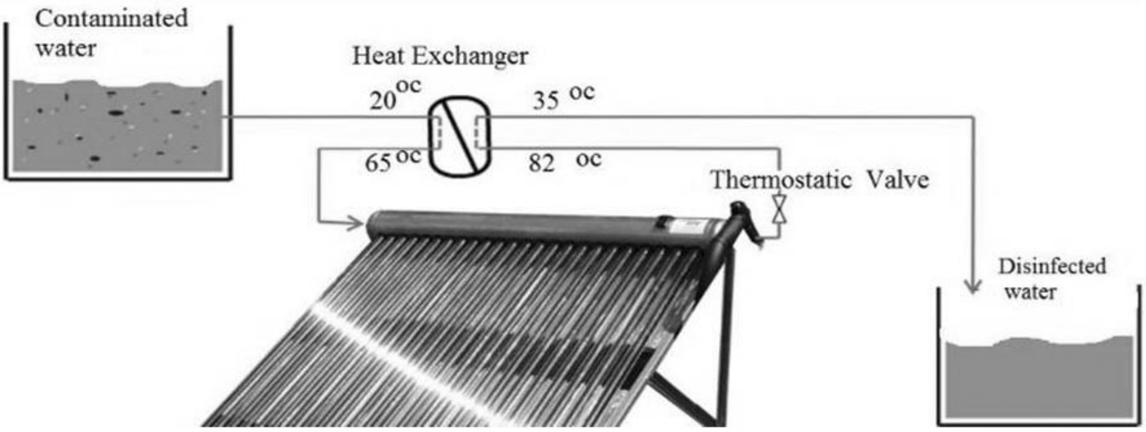

Water disinfection by solar pan.

The internal arrangement of solar panel is as shown in the figure, at the base the pure water is collected which is formed after condensation process. The dirty water is directly exposed to the sun rays owing which it is evaporated and these vapours are transferred at the top where they are condensed to liquid and directly shifted to the bottom. The contaminated water is kept in the middle position of the assembly.

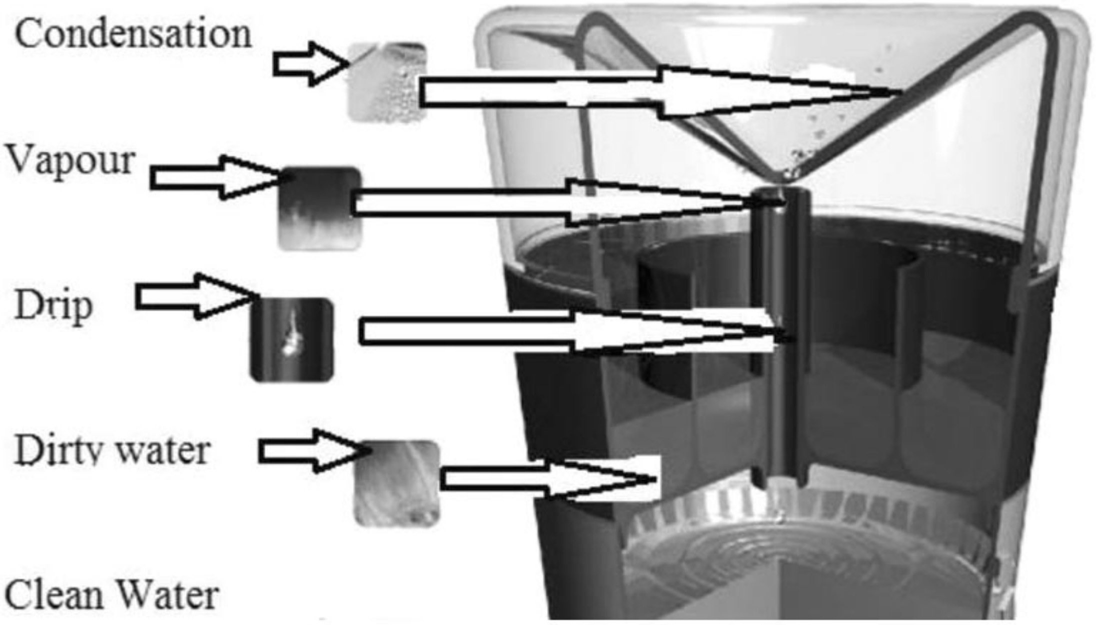

Internal structure of solar pant drum, layers of water.

It has been observed that there is growth of some species like salmonella, which become dangerous in the future, so in order to remove such species from the water sample it is treated with some quantity of hydrogen peroxide only 10 ppm addition is sufficient for disinfection. The reason behind the growth of microbes is presence darkness in the solar container.

Water Fluoridation:

To prevent tooth decay, fluorine is added to water in many areas, after the process of disinfection is over. Fluoridation process is followed by the addition of hexafluorosilicic acid in the United States of America. This chemical is decomposed and gives fluoride ion, which play a vital role in tooth decay. The special care should be taken during the addition of fluoride; it should not be added to water stream where already high concentration fluorine is present. If the concentration of fluorine is high in the water stream, then the water become toxic and may cause tooth staining alongwith some undesirable conditions or effects. If there is high concentration fluorine in the water stream then it can be controlled by the addition of some alumina or bonechar OT the water stream.

Water conditioning:

In this method, the hard water is reduced. It is heated so that it is decomposed to bicarbonate ions forms as a precipitate out of solution. The soda ash is used to precipitate

excess of salts present in the water sample. The calcium carbonate is byproduct formed after the chemical reaction between water and soda ash. (Sodiumcarbonate). The excess quantity of calcium carbonate, which is formed here, can be sold in the market for the manufacture of toothpaste. Some other methods are also suggested here like magnetic and electrical action to the water stream which also reduces the hardness of water sample.

*Plumbo solvency reduction:

The water from igneous rock is full of acidic in nature water, which shows low conductivity. This type of water easily dissolve the lead present in the inner wall of the pipes which are used to transport the water from one to other place. Hence this type of water should not pass through the pipes, in order to reduce this process some quantity of phosphate is added to water stream and pH value of such water is somewhat inclined. Due to this process the lead become insoluble and can easily settle at the bottom and remove safely from the water stream. In this way the present method is useful to acidic as well lead containing impurities.

*Radium removal

As we know the radium is a radioactive which is found in the earth's crust (ground water), it is especially found in areas of North of Illinois (River). With the help of ion exchange method this Radium can be separated out. The sludge which is formed in the purification method of is with very less amount of radioactive elements. The sludge is also called back flush which is very poor of such kind of element.

Biological oxygen Demand (BOD):

BOD stands for biological oxygen demand and is the amount of oxygen expressed in mg/l or parts per million (ppm). It is amount of oxygen that is taken by bacteria from water sample when they oxidize organic matter. The organic matter which gets into water are carbohydrate (cellulose, starch, sugars) protein, petroleum hydrocarbons and other materials and they are obtained from either natural sources or from pollution. These substances may be in dissolved in sewage. As the organic matter comprises of carbon and hydrogen, oxidation produces carbon dioxide (the oxygen combining with carbon) and water (the combination of oxygen with hydrogen), it can be oxidized by burning, by being digested in the bodies of animals or human beings or by biochemical reaction of bacteria. Bacteria in water multiply when organic matter is available for food and oxygen is available. About one-third of the food, which is consumed by bacteria, becomes organic cell material for the organisms. The other two third is oxidized to carbon dioxide and water. To determine BOD, the amount of oxygen which is consumed by the bacteria is calculated by comparing it with the amount left at the end of 5 days

with the amount known to be present at the beginning time. During five day BOD test, generally the bacteria oxidizes mainly the soluble organic particles present in sample of the water. Very little oxidation of waste solid matter takes place here.

Hardness of water:

Phenomenon of water, which does not allow soap to spread thickly or form lather is called hardness of water. It is basically a capacity of soap to be consumed by a water sample. Soaps are made-up from sodium salts of far chain fatty acids such asolcic acid, palmitic acid and stearic acid. Heavy metals reduced the hardness of water which is present in it.

$2C_{17}H_{35}COONa + CaCl_2C_{17}H_{35}COO)_2Ca + 2\ NaCl.$

Sodium stearate Calcium stearate

$2C_{17}H_{35}COO- + Ca_2 + (C_{17}H_{35}COO)_2Ca$

Types of Hardness:

1. Temporary hardness
2. Permanent hardness

***Temporary hardness*:**

The water sample is said to have temporary hardness when it consists carbonates, hydroxides and other metal. It can be removed by the very simple process of boiling.

$Ca(HCO_3)_2\ CaCO_3 + H_2O + CO_2$

Calcium bicarbonate calcium carbonate

Permanent hardness:

Permanent hardness is due to the presence of chlorides, sulphate and other heavy metals that mean non carbonates, these impurities are not removed by the simple boiling process.

Factors influencing hardness of water: Causes of hardness:

1. Dissolved minerals
2. Dissolved oxygen
3. Dissolved carbon dioxide

Dissolved minerals:

These are generally heavy metals which on mixing in water act as a soluble salts which influences hardness.

$CaSO_4 + 2H_2O$ $CaSO_4 . 2H_2O$

Gypsum

Dissolved oxygen:

Dissolved oxygen is one of the causes of hardness (on oxidation and hydration)

$2Fe_3O_4$ $3Fe_2O_3$ $3Fe_2O_3.2H_2O$

Magnetite Hematite limonite

Dissolved CO_2:

CO_2 in water affects the pH to increase or decrease in its composition It has an inverse relation with the pH.

$CaCO_3 + CO_2 + H_2O$ $Ca\ (HCO_3)_2$

Insoluble: soluble

Measurement of Hardness:

Extent of hardness depends upon the concentration of ions. Most common compounds used to express is the equivalent amount of $CaCO_3$.

Units of hardness:

Following are the most common unit of hardness:

1. Parts per million (PPM)
2. Milligrams per liter (mg/liter)
3. Grain per imperial gallon (gpg)
4. Trench degree (°f)

Adsorption nanotechnology:

All solids are gathered at one place and attract to the surface and stuck to it.The substances which are adsorbed gases or dissolved substances are called as adsorbents, while the substances which are adsorbing are called as adsorbate. High specific area of nano adsobents leads to the high adsorption rate of some organic compounds as compare to other adsorbents like granular activated carbon. It isconsidered as more novel, more efficient, process of removal of inorganic and organic pollutants. Heavy metals and micro pollutants are some examples. Some nano adsorbents are explained here,

1. Polymeric nanoadsorbents.
2. Zeolites.

Polymeric nanoadsorbents:

Branched molecule named dendrimer is known as polymeric nano- adsorbent, which is used to remove heavy metallic particles and some organic substances from the water samples. There are internal hydrophobic shells and external tailored branches which are useful to adsorb organic compounds and heavy metals respectively. In case of ultra filtration the integrated dendrimer is applied for removal of copper from water samples. The dendrimer ultra filtration process is applicable to recover all copper ions from the water. By changing the pH value of water sample the adsorbent can be recovered easily. As the production of this type of adsorbent is multistage hence this product is supplied by least companies, Currently in China this product is supplied. Bio adsorbent is highly effective, now a day it is useful to adsorbsome anionic compounds (dye) which are coming from textile waste water sample. This is formed by combination of the nanostructure of cortisone dendrimer. This adsorbent is non toxic, very biocompatible and biodegradable. Near about 99 percentage of dye is removed from this type of adsorbent.

***Zeolites nanomaterial:**

Along with silver atoms the Zeolite adsorbent is formed, which is porous where the silver particles are embedded. These silver particles are substituted by the cations from the waste water samples. After comparing various materials along with nano silver particles with zeolite bed, it is concluded that the silver attacks microbes and also stunt the growth of microorganisms, when applicable in sanitary applications. The report no KV297/12 (The waste water research commission report) gives an idea or application of zeolite as a adsorbing platform of silver particles as incase disinfectant. Laser treated (induced) zeolite is also applied in bacterial purification of waste water samples and is applied as nano particles. Arsenic, heavymetal can be adsorbed by CNTs and nano metals, which are effective nano adsorbents. CNTs and nano metals can be implemented in beads and pallets forms.There is diverse interaction between contaminants and the CNTs hence they adsorb the micro pollutants easily. If we think about the Eco toxicity the nano materials, CNTs, and Zeolites consist of material which is nature based and hence it is non toxic.The toxic nature depends upon the size and surface area of adsorbents and it also depends upon chemical stabilizers.

Nanometals and nano metal oxides:

Metal oxides, which are nano scale, are considered as best promising and effective alternatives for removal of radio nuclides and heavy metals. One important characteristic feature of the above oxide is having short intra-particle diffusion distance and compressed without reduction in the surface area. Some examples of these are nano magnetite and

maghemite is super paramagnetic, which are useful tofacilitate separation and recovery by low gradient magnetic area. Slurry reactors,certain adsorptive media are employed by these adsorbents. [á-FeO (OH)] is an ionhydroxide adsorbent, which is robust abrasion resistant with high specific area. Thisuseful for adsorption of arsenic from waste and drinking water samples. Generally,the nanometal oxides and nanometers are forcefully packed into porous small pelletsand can be used in powdered form, for various industrial applications.

Nanosilver and nano –titanium dioxide:

In the photo development techniques the nano silver is applicable and is alsoregistered with EPA. It is applicable in Algaecides (swimming pool area), also fordrinking water. It shows strong, broad spectrum antibacterial activity. It has leasteffect on human health. It is applicable in anti bio fouling surfaces, as a disinfectant.**(TiO2)**Titanium dioxide is the other nano adsorbent with high chemicalstability, low human toxicity at a low cost. It is applicable in decontaminationdisinfection methods. The main benefit of nano-TiO2 is the nearly endless lifetime ofits coatings. TiO2 is acting as a catalyst which remains fixed during the degradation of organic compounds and micro-organisms. Continuous removal of metallic silver ionsis the basic thing of antimicrobial effect. TiO2 requires ultraviolet light for itsactivation, which energy is consumed; hence it is non superior to silver adsorbent.Nano silver kills the bacteria without addition energy device; hence it is favored in theremote area.

Magnetic nano particles:

Magnetic nanoparticles (magnetite Fe3O4), were applicable already in groundwater remediation, especially for arsenic element removal. The water sample fromground water is pumped out with the help of "pump and treat" technology on thesurface and is treated with a tradition carbon filter, especially activated charcoalmethod. The situ technology is applied to save the environment, and its cost to cleanup it, and time factor. This method is replaced by magnetic nano particles which canbe injected to ground water or contaminated ground and the particles are separated outby the magnetic field. Magnetic recovery and ground water remediation make thenano particle an ideal compound which inclines the osmotic pressure of solutions(drew) to forward osmosis. It is a contrary process to reverse osmosis. Magnetic nanoparticles show great effect in the medical field. One of the important advantages, of magnetic nanoparticles is removal, fate of nanoparticles in the aqueous medium andthese particles can be easily recovered by using magnetic fields.

Chemicals used in treatment Disinfectants and disinfection by-products

The three chemicals most commonly used as primary disinfectants are chlorine, chlorinedioxide and ozone. Monochloramine, usually referred to as chloramine, is used as a residualdisinfectantfor distribution.

Chlorine

Chlorine is the most widely used primary disinfectant and is also often used to provideresidual disinfection in the distribution system. Monitoring the level of chlorine in drinkingwaterentering a distribution system is normally considered to be a high priority (if it is possible), because the monitoring is used as an indicator that disinfection has taken place. Residual concentrations of chlorine of about 0.6 mg/l or more may cause problems ofacceptability for some consumers on the basis of taste.

Points in the distribution system is sometimes used to check that there is not an excessivechlorine demand in distribution that may indicate other problems in the system, such asingress of contamination.

Chlorine reacts with naturally occurring organic matter in raw water to form a range ofunwanted by-products. Guideline values have been established for a number of these byproducts.The compounds most widely considered as representatives of chlorination byproducts for the purposes of setting standards and monitoring are the trihalomethanes(THMs) which include chloroform, bromodichloromethane, chlorodibromomethaneandbromoform. Haloacetic acids (HAAs), such as monochloroacetate, dichloroacetate andtrichloroacetate, can also be formed as the result of reaction of chlorine with organic mattercontained in raw water. Some countries monitor HAAs as well as THMs, but HAAs are muchmore difficult and expensive to analyse than THMs.

THMs and HAAs continue to develop within the distribution system; thus, monitoring can be complex. Optimizing coagulation and filtration is most important in helping to remove the precursors of these by-products and will, in turn, reduce the formation of THMs, HAAs and other unwanted by-products.

In order to ensure the microbial safety of drinking-water, disinfection should never becompromised in trying to meet guidelines for any disinfection by-products.

Chlorine dioxide

Chlorine dioxide breaks down to leave the inorganic chemicals chlorite and chlorate. Thesearc best managed by controlling the dose of chlorine dioxide applied to the water. Chlorite can also be found in hypochlorite solution that has been allowed to

age. There is no guidelinevalue for chlorate because of limited data on its toxicology, but this chemical has been shownto be less toxic than chlorite and is present at lower concentrations. Controlling chlorite will generally also adequately control chlorate.

Ozone

Ozone, used as a primary disinfectant, cannot be monitored in drinking-water, because itleaves no residual. Ozonation in the presence of inorganic bromide, which can occur naturally in raw water, can give rise to low concentrations of bromate. The analysis ofbromate is difficult and expensive, because a number of other inorganic substances thatinterfere with the analysis may be present. It is considered, therefore, that bromate monitoring is a low priority, and that management should instead involve controlling the conditions ofozonation.

Monochloramine

Monochloramine, used as a residual disinfectant for distribution, is usually formed from the reaction of chlorine with ammonia. Careful control of monochloramine formation in water treatment is important to avoid the formation of di- and trichloramines, because these can cause unacceptable tastes and odours. The formation of nitrite as a consequence of microbial activity in biofilms in the distribution

भारतीय संस्कृति : अतीत के वातायन से

फूलचन्द प्रसाद गुप्त*

उत्तर यत्समुद्रस्य हिमाद्रैश्चैव दक्षिणम्।
वर्षम् तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥

'जो समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में फैला हुआ है, उस देश को भारत कहते हैं और यहाँ पर रहने वाले लोग इसकी सन्तान हैं।'

सारे भारत में अपना साम्राज्य स्थापित कर आर्य संस्कृति का प्रसार करने वाले दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम पर इस उपमहाद्वीप का नाम भारत पड़ा। आर्यों का आदि देश सप्तसिन्धु था। पारसी सिन्धु नदी के किनारे या आसपास रहने वाले लोगों को हिन्दु कहते थे, कारण वे 'स' का उच्चारण 'ह' करते थे। अतः वे सिन्धु को हिन्दु कहने लगे। यूनानी इसे 'इण्डस' कहते थे, अतः यूरोपवासी इसे 'इण्डिया' कहने लगे।

भारत एक ओर हिमालय एवं तीन ओर समुद्र से घिरा होने के कारण संसार से अलग एक भौगोलिक इकाई बन गया और यहाँ एक विशेष सभ्यता और संस्कृति का उदय हुआ। संस्कृति किसी भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की धरोहर होती है। संस्कृति मे अनुप्राणित राष्ट्र निरन्तर प्रगति के पथ पर आगे बढ़ते जाते हैं। संस्कृति एक आन्तरिक वस्तु है, इसके अन्तर्गत मनुष्य के आचार-विचार, जीवन-मूल्य, नैतिकता, संस्कार, आदर्श, शिक्ष, धर्म एवं साहित्य आदि का समावेश होता है। अतः संस्कृति एक व्यापक तत्त्व है। 'संस्कृति' शब्द की उत्पत्ति संस्कार शब्द से हुई है। इसका अर्थ है 'निखारना' अर्थात् यह एक ऐसी क्रिया है जिससे किसी वस्तु के दोष दूर करके उसे शुद्ध बनाया जाता है।

भारतीय संस्कृति का मुख्य गुण विषमता, प्रतिस्पर्धा और अशान्ति को दूर कर समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व तथा विश्व-शान्ति स्थापित करना है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्॥

* प्रवक्ता-हिन्दी, महाराणा प्रताप इण्टर कॉलेज, गोरखपुर; मो.-9415777140

भारतीय संस्कृति की आधारशिला अध्यात्मवाद है। इसी आधार पर स्वामी विवेकानन्द ने कहा था- "भारत राष्ट्र अमर है तथा उस वक्त तक अमर रहेगा जब तक कि यह विचारधारा पृष्ठभूमि में रहेगी और उसके लोग आध्यात्मिकता को नहीं छोड़ेंगे।"

भारतीय संस्कृति सब देशों की संस्कृतियों का मूल है। पाश्चात्य विद्वान मैक्समूलर ने भी इसे स्वीकार किया है- "सम्पूर्ण विश्व में समस्त प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न, सौन्दर्य शक्ति एवं सम्पत्ति से समलंकृत देश मेरे विचार में भारतवर्ष ही है। यदि मुझसे पूछा जाय कि किस देश में मानव मस्तिष्क ने अपनी मुख्यतम शक्तियों को विकसित किया, जीवन के बड़े-से-बड़े प्रश्नों पर विचार किया और ऐसे समाधान ढूँढ़ निकाले जिनकी ओर प्लेटो और काण्ट के दर्शन का अध्ययन करने वालों का ध्यान भी आकृष्ट होना चाहिए तो मैं भारत की ही ओर संकेत करूँगा।" आज भी यूनान, मिस्र तथा रोमन आदि की पुरानी संस्कृति नहीं है। भारत ही एक ऐसा देश है जिसकी संस्कृति अमर है। इकबाल ने कहा-

'यूनान मिस्र रोमा सब मिट गए जहाँ से
बाकी मगर है अब तक नामो निशां हमारा।'

प्रो. हुमायूँ कबीर के अनुसार- "भारतीय संस्कृति की कहानी एकता एवं समाधानों का समन्वय है तथा प्राचीन परम्पराओं एवं नवीन मतों के पूर्ण सहयोग की उन्नति की कहानी है। यह प्राचीन काल में रही है और जब तक यह विश्व रहेगा तब तक सदैव रहेगी। दूसरी संस्कृतियाँ नष्ट हो गयीं किन्तु भारतीय संस्कृति व इसकी एकता अमर है।"

इतिहास उन घटनाओं का वृत्तान्त होता है, जो भूतकाल में हुई हों। प्राचीन भारत का इतिहास भारत के लिए गौरव का विषय है। प्राचीन भारतीय इतिहास का ज्ञान वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग, स्मृति, महाकाव्य, पुराण, बौद्ध धर्मग्रन्थ, पिटक, जातक, जैनग्रन्थ, अर्थशास्त्र, मुद्राराक्षस, कालिदास की रचनाओं, हर्षचरित, महाभाष्य, गार्गी संहिता, राजतरंगिणी, नवसाहसांक चरित, गौडवाहो, विक्रमांकदेव चरित, पृथ्वीराज रासो और विदेशी यात्रियों के वृत्तान्तों से होता है। प्राचीन भारत साहित्य की दृष्टि से कितना समृद्ध था, इसका अनुमान हम उपर्युक्त साहित्यिक ग्रन्थों से लगा सकते हैं।

सिन्धु सभ्यता का भारतीय इतिहास में अत्यधिक महत्त्व है। यह सभ्यता मिस्र, मैसोपोटामिया आदि की सभ्यताओं के समान विकसित एवं प्राचीन थी, कुछ क्षेत्रों में तो उनसे भी अधिक विशिष्ट थी। इस काल में मातृदेवी की पूजा, शिवपूजा, पशुपूजा, सूर्यपूजा, वृक्षपूजा, नदीपूजा प्रचलन में थी। इस प्रदेश में खुदाई के द्वारा अनेक मूर्तियाँ, बर्तन, कलश, मुहरें, आभूषण आदि प्राप्त हुए जिनसे तत्कालीन कला प्रेम पर प्रकाश पड़ता है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में उत्खनन से प्रमाणित हो गया कि सिन्धु निवासी भवन निर्माण कला, मूर्तिकला, धातुकला, चित्रकला, संगीत एवं नृत्य कला,

ताम्रपत्र निर्माण कला, मुहर निर्माण कला, लेखन कला में दक्ष थे।

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। वेद भारत की संस्कृति की अमूल्य सम्पदा है। वेद का शाब्दिक अर्थ 'ज्ञान' है। प्राचीनता तथा महानता के कारण वेदों को मानव रचित न होकर ईश्वरप्रदत्त माना गया है। भारतीय संस्कृति में वेदों का अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि हिन्दुओं के आचार-विचार, रहन-सहन, धर्म-कर्म की विस्तृत जानकारी इन्हीं वेदों से प्राप्त होती है। लौकिक वस्तुओं को देखने के लिए नेत्रों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार अलौकिक तथ्यों को जानने के लिए वेदों की आवश्यकता होती है। ऋग्वेद में जिन देवताओं की पूजा-अर्चना एवं स्तुतियाँ मिलती हैं, वे प्राकृतिक तत्त्वों में निहित शक्तियों के प्रतीक हैं। इस काल में पूजा और यज्ञ का प्रमुख स्थान था। वरुण, सूर्य, सावित्री, अदिति, उषा, इन्द्र, रुद्र, मरुत, वायु, अग्नि, सोम, पृथ्वी की पूजा होती थी। इस काल में औषधियों का ज्ञान हो गया था। विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरु के आश्रम में भेजा जाता था। इस शिक्षा के माध्यम से छात्र में ज्ञान की ज्योति प्रज्ज्वलित करना, उसकी बुद्धि को प्रखर बनाना और उसके व्यक्तित्व-विकास द्वारा उसके अन्दर चरित्र बल की स्थापना करना था। समाज में विवाह एक धार्मिक एवं पवित्र कार्य समझा जाता था। विवाह के बिना जीवन अपूर्ण माना जाता था। यज्ञ के समय पति एवं पत्नी दोनों का उपस्थित होना आवश्यक था। इस युग में स्त्रियों की समाज में सम्माननीय स्थिति थी।

उत्तर वैदिक काल में सामाजिक, धार्मिक स्थिति में बहुत अन्तर आ गया। पारिवारिक जीवन, मनोरंजन के साधन, भोजन व पेय, वेश-भूषा, प्रसाधन में भी अन्तर आया। शिक्षा के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुए। शिक्षा का उद्देश्य जीवन को सुखमय बनाना था। इस युग की शिक्षा मात्र पुस्तकीय नहीं थी वरन् वह भावी जीवन में संघर्ष का सामना करने के लिए व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती थी। इस काल में वर्ण जन्म पर आधारित हो गया। वर्ण के साथ आश्रम व्यवस्था प्रभावी थी। विवाह एक पवित्र कार्य माना जाता था।

इस काल में धार्मिक स्थितियों में परिवर्तन हुआ। वैदिक मंत्रों के महत्त्व में भारी वृद्धि हुई, कारण लोगों ने अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उन्हीं मंत्रों का सहारा लिया।

यदि हम महाकाव्य युग पर दृष्टिपात करें तो यह युग सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्व रखता है। 'रामायण' और 'महाभारत' भारत के दो प्रमुख महाकाव्य हैं। मैकडॉनल के अनुसार- "विश्व साहित्य की कोई भी रचना सम्भवत: जनता के जीवन एवं विचारों को उतना प्रभावित नहीं करती जितना कि रामायण।"

इस काल में भी समाज में चार वर्ण थे। गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों का आधार माना गया। महाकाव्य में कहा गया- 'जिस घर में स्त्री नहीं होती, वह जंगल के समान है।' विद्याध्ययन

उपनयन संस्कार से प्रारम्भ होता था। स्त्रियों की शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाता था। वेशभूषा एवं प्रसाधन साधारण थे। शिकार, नृत्य, संगीत, मल्लयुद्ध मनोरंजन के साधन थे।

इस काल में धर्म के क्षेत्र में भारी परिवर्तन हुआ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पूजा होती थी। राम और कृष्ण भी पूजे जाते थे। अवतारवादी धारणा में जनता का विश्वास था। पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती की भी पूजा होती थी।

छठीं शताब्दी ई.पू. में हुई धार्मिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म का उदय हुआ। महात्मा बुद्ध ने जाति-व्यवस्था का विरोध तथा नैतिक मूल्यों पर बल देते हुए नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इस धर्म का अत्यधिक तीव्रता से भारत में ही नहीं वरन् विदेशों में भी प्रसार हुआ। लंका, चीन, जापान, जावा, सुमात्रा आदि अनेक देशों में बौद्ध धर्म को अपनाया गया। इस धर्म के द्रुतगति से प्रसार का प्रमुख कारण तत्कालीन धार्मिक स्थिति, बौद्ध धर्म के सरल सिद्धान्त, महात्मा बुद्ध का व्यक्तित्व, समानता की भावना और जातिप्रथा का विरोध था।

बौद्ध धर्म का भारतीय संस्कृति पर व्यापक प्रभाव पड़ा। बौद्ध धर्म ने भारतीयों में अहिंसा, सहिष्णुता, परोपकार, दया व मानव कल्याण की भावनाओं को विकसित किया। बौद्ध धर्म की एक महान देन भारतीय संस्कृति का अन्य देशों में प्रचार व प्रसार था। विदेशों से भी विद्वान अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करने के लिए भारत आये। इस प्रकार भारत के अन्य देशों पर भारतीय संस्कृति का व्यापक प्रभाव हुआ। बौद्ध कला के अन्तर्गत बनी कलाकृतियाँ सौन्दर्य और निपुणता में अद्भुत हैं। भारतीय कला की परम्परा यद्यपि अत्यन्त प्राचीन है किन्तु सिन्धु घाटी की कला के अतिरिक्त भारत में उपलब्ध कलाकृतियाँ अधिकांशतया बौद्धकला के नमूने हैं।

जैन धर्म यद्यपि मुख्यतया भारतवर्ष की सीमाओं में ही सीमित रहा किन्तु भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर उसका व्यापक प्रभाव पड़ा। जैन दर्शन ने अनेक नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। अहिंसा का प्रचार जितना जैन धर्म के द्वारा किया गया उतना किसी अन्य धर्म के द्वारा नहीं किया गया। जैन धर्म को आश्रय देने वाले राजाओं ने औषधालय, विश्रामालय, पाठशालाओं का निर्माण निर्धनों के लिए किया। जैन विद्वानों द्वारा लोकभाषा में साहित्य रचना की गयी। जैनियों ने देश के भाषा विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। जैन कलाकारों ने अपनी कलाकृतियों द्वारा भारतीय कला के कोश में असीमित वृद्धि की। मन्दिरों, स्तूपों, मठों, प्रवेश द्वार, स्तम्भ, गुफाओं एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ।

ईरानी आक्रमणों ने भारत को सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष रूप से प्रभावित किया। यूनानी आक्रमण ने भी संस्कृति को प्रभावित किया। भारतीय संस्कृति पर सिकन्दर के आक्रमण का प्रभाव बहुत नहीं पड़ा, कारण भारतीय सभ्यता व संस्कृति पहले से ही काफी विकसित थी। अतः साहित्य, दर्शन व कला आदि के विकास के लिए उसे विदेशियों की सहायता की आवश्यकता नहीं थी।

भारत में सर्वप्रथम राजनीतिक एकता प्रदान करने वाले मौर्य साम्राज्य की स्थापना हुई। इस साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य थे जिनकी गणना भारत के महानतम शासकों में की जाती है। कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र', मैगस्थनीज का 'भारत वर्णन', विभिन्न अभिलेखों से तत्कालीन सांस्कृतिक स्थितियों का ज्ञान होता है। कौटिल्य ने धर्मशास्त्रों के समान चार वर्णों का ही वर्णन किया है तथा उनके व्यवसाय निर्धारित किये। मैगस्थनीज के अनुसार भारत की आबादी सात जातियों में बँटी हुई थी। विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति था। इस काल में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। राजमहल में भी स्त्रियाँ सैनिकों के रूप में कार्य करती थीं। पुरुष छात्रों के समान ही स्त्रियाँ भी शिक्षा प्राप्त करती थीं। मनोरंजन के साधनों में विहार-यात्राएँ, मल्लयुद्ध, रथदौड़, खेल-कूद, नृत्य व संगीत प्रमुख थे। इस काल के लोग सूती वस्त्र धारण करते थे। आभूषण पहनने की भी प्रथा थी जो प्राय: सोने, हीरे आदि के होते थे।

मौर्यकालीन सामाजिक जीवन की सर्वोच्च विशेषता नैतिक स्तर थी। अशोक द्वारा अपने अभिलेखों में माता-पिता की आज्ञा मानना, गुरुजन का आदर करना, अहिंसा, दान, क्षमा, सत्य, सहिष्णुता का विकास करना इस बात का प्रमाण है कि जीवन में नैतिकता का कितना महत्त्व था।

मौर्य साम्राज्य के पतन के साथ ही भारत की राजनीतिक एकता भी लुप्त हो गयी और शुंग वंश का भारतीय राजनीतिक पटल पर प्रादुर्भाव हुआ जिसके संस्थापक पुष्यमित्र शुंग थे। यह एक वीर साम्राज्यवादी व योग्य शासक थे। महान साहित्य एवं कलाप्रेमी भी थे। उन्होंने वैदिक धर्म को राजधर्म घोषित किया तथा पालि के स्थान पर संस्कृत को राजभाषा का रूप प्रदान किया। इस प्रोत्साहन के परिणामस्वरूप पतंजलि का 'महाभाष्य' तथा मनु की 'स्मृति' की रचना हुई। इस प्रकार सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्होंने महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की।

मौर्य शासन के पतन के उपरान्त भारत पर निरन्तर विदेशी आक्रमण हुए। शीघ्र ही एक के बाद एक आक्रमण हुए जिससे भारत की दशा अच्छी नहीं रही। सिकन्दर के समान ही सैल्यूकस भी भारत विजय के स्वप्न को यथार्थ में बदल न सका और वह चन्द्रगुप्त के हाथों पराजित हुआ। भारत दीर्घकाल तक यूनानियों के सम्पर्क में रहते हुए भी प्रभावित नहीं हुआ जबकि यूरोप व विश्व के अन्य देशों पर यूनानी सभ्यता की अमिट छाप पड़ी।

कुषाण वंश के कनिष्क अपनी विजयों के लिए इतिहास में इतना प्रसिद्ध नहीं है जितना कि अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए। इनके काल में बौद्ध धर्म की उन्नति हुई। इस काल में साहित्य एवं कला को प्रश्रय मिला। कनिष्क ने समकालीन अनेक विद्वानों को आदर दिया। उनकी राजसभा में अश्वघोष, नागार्जुन, पार्श्व और वसुमित्र रहते थे। आयुर्वेद के जन्मदाता एवं चरक संहिता के लेखक चरक को भी कनिष्क ने ही आश्रय दिया था। इस प्रकार संस्कृत साहित्य की कनिष्क के काल में अत्यधिक उन्नति हुई। राय चौधरी के अनुसार- "कुषाण युग साहित्यिक क्रियाशीलता

का युग था, इसका प्रभाव हमें अश्वघोष, नागार्जुन तथा अन्य विद्वानों की कृतियों से प्राप्त होता है। कनिष्क के शासन काल में भारत ने कला के क्षेत्र में भी उन्नति की। बौद्ध धर्म को संरक्षण प्रदान करने के कारण कनिष्क को दूसरा अशोक कहा जाता है।"

भारतीय प्राचीन काल से ही राजनीतिक एकता से अवगत थे। प्राचीन साहित्य से भी चक्रवर्ती सम्राट के प्रमुख आदर्श का उल्लेख मिलता है। भारत जैसे विशाल देश में राजनीतिक एकता स्थापित कर पाना काफी मुश्किल कार्य था फिर भी इस राजनीतिक एकता के आदर्श को अनेक राजाओं ने क्रियान्वित करने का सफल प्रयत्न किया। इनमें चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य आदि का नाम उल्लेखनीय है।

सातवीं शताब्दी के भारत पर यदि दृष्टिपात करें तो भारत की सम्पूर्ण राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति का सारा श्रेय सम्राट हर्षवर्धन को है। छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त भारत को एक सूत्र में पिरोकर हर्ष ने भारत को सशक्त बनाया। हर्षवर्धन का व्यक्तिगत चरित्र मानवीय मूल्यों से भरा था। उनमें आत्मविश्वास, आत्मसंयम और आत्मत्याग जैसे महान गुण भरे थे। हर पाँचवें वर्ष सम्पूर्ण संचय प्रजा को सौंप देना उनके त्याग का अप्रतिम उदाहरण है। विनम्र उदारता, निष्पक्षता और सर्वस्व त्याग जैसे गुण दूसरे राजाओं में नहीं मिलते जो हर्ष में थे। सर्वत्याग का उदाहरण प्रस्तुत कर अपने चरित्र से अपनी जनता को शिक्षा देने वाला राजा निश्चित रूप से वन्दनीय रहा होगा और आज भी है। हर्ष के युग में सांस्कृतिक वैभव, ज्ञानदान, शिक्षानुशासन, समाज की चरित्रशीलता और सद्भावना आदि की झलक देखी जा सकती है। समय-समय पर आयोजित अपनी धर्मसभाओं और विचार-गोष्ठियों में सर्वधर्म-मूल का विवेचन कर हर्ष ने चरित्र, विचार और आचरण जैसे सद्गुणों का व्यापक प्रसार कर समाज के विभिन्न वर्गों और धर्म-सम्प्रदायों में भावनात्मक समन्वय स्थापित किया। हर्ष की चेतना विश्व-कल्याण के रूप में प्रतिफलित हुई जिसकी प्रशंसा चीनी यात्री ह्वेनसांग ने की है। तत्कालीन भारत का ज्ञान, तत्त्वदर्शन और शास्त्रगत विचार-वैभव संसार को प्रभावित किया।

मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व भारत में आने वाले समस्त आक्रमणकारी भारतीय संस्कृति में घुल-मिल गये। वैदिक धर्म भारत का सबसे प्राचीन धर्म है जिसे मानने वाले हिन्दू हैं। प्राचीन भारत में वैदिक धर्म के अतिरिक्त जैन एवं बौद्ध धर्म भी फैले। इन सभी धर्मों में कुछ भेद होते हुए भी मुख्य सिद्धान्तों के बारे में मौलिक एकता सदैव विद्यमान रही। यद्यपि मुसलमानों के आक्रमण के बाद भारत में धार्मिक एकता नहीं रही, फिर भी सभी धर्म एक ईश्वर की उपासना में विश्वास रखते थे।

भारतीय इतिहास अनेक उत्थान-पतन से परिपूर्ण है। भारत पर अनेक आक्रमण हुए हैं, पर इसकी संस्कृति प्रभावित नहीं हुई। कहीं-न-कहीं कोई ऐसी बात रही, जिस कारण भारतीय एक सूत्र में बँधे रहे। स्मिथ के अनुसार- "अनेक कारणों से विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में मौलिक एकता के कुछ बन्धन हैं। यह अनिवार्य मौलिक एकता इस तथ्य पर आधारित है कि भारत के

विभिन्न लोगों ने एक विशेष प्रकार की सभ्यता एवं संस्कृति को उन्नत किया है जो कि संसार में अन्य संस्कृतियों से बिल्कुल भिन्न है, उस सभ्यता का हिन्दुत्व कहते हैं।"

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार- "पूर्वजों ने चरित्र और धर्म विज्ञान, साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में जो कुछ भी पराक्रम किया है उस सारे विस्तार को हम गौरव के साथ धारण करते हैं और उसके तेज को अपने भावी जीवन में साक्षात् देखना चाहते हैं। यही राष्ट्र संवर्धन का स्वाभाविक प्रकार है।त जहाँ अतीत वर्तमान के लिए भार रूप नहीं है, जहाँ भूत वर्तमान को जकड़ कर नहीं रखना चाहता वरन् अपने वरदान से पुष्ट करके उसे आगे बढ़ाना चाहता है, उस राष्ट्र का हम स्वागत करते हैं।"

भारत में आदिकाल से लेकर आजतक के इतिहास पर ध्यान दें तो हम पाते हैं कि इस देश में धर्म, रीति-रिवाज, भाषा, सामाजिक एवं शारीरिक विभिन्नताओं के होते हुए भी जीवन की एक विशेष एकरूपता देखी जा सकती है। भारतीय संस्कृति समन्वय में विश्वास रखती है। यह समन्वय भारत को एक सूत्र में पिरोये हुए है, ऐसी संस्कृति पर हमें गर्व है।

योगधर्म और राजधर्म का ज्ञानपीठ श्रीगोरक्षपीठ

रामदरश राय*

सिद्ध गोरक्षपीठ योगधर्म और राजधर्म का सुन्दर सन्धिपीठ है। इस पावन ज्ञानपीठ ने प्रतिज्ञाबद्ध योग्यतम नाथ-उत्तराधिकारियों के तपोतेज से पीठ की कीर्तिकथा को लोकजयी बनाया है। हजार वर्ष की प्रदीर्घ धर्मयात्रा में इस पीठ ने कभी पीठ नहीं दिखायी। अखण्ड धूनी भी और प्रचण्ड तेज भी। विधर्मी प्रभंजन इस प्रतापी पीठ से टकराकर बार-बार लौट गये। जिस तरह अयोध्या (न योद्धुं शक्या इति सा अयोध्या) युद्ध में किसी के द्वारा कभी जीती नहीं जा सकी, उसी तरह गोरक्षपीठ अपने स्थापना-काल से आज तक किसी की कुदृष्टि से तेजहीन नहीं बना। किसी भी विषवेलि का असर कैसे पड़ता? गुरु गोरक्षनाथ निर्गुण शिव के सगुण अवतार जो ठहरे! इन्द्रियनिग्रही, गो-रक्षक शिवावतार बाबा गोरखनाथ के चामत्कारिक योग-तेज और उनमें आस्थाबद्ध लोकविश्वास से कौन परिचित नहीं है? नाथ-परम्परा, संत-परम्परा, शास्त्रजगत्, लोकजगत् और अब सम्पूर्ण समरस मानव-समाज इस पीठ को सनातन-संस्कृति और मानवीय इतिहास का अक्षयपीठ मानता है।

चौरासी सिद्ध, नवनाथ और मठसेवी लक्षाधिक अनाम साधु, नाथसाधना के लोककल्याणी चिन्तन-बीज, समरस विचार-नीति तथा धर्म-दर्शन-अध्यात्म की योगमयी त्रिवेणी का पुण्य बटोरते और गुनगाथा सुनाते कभी नहीं थकते। पीठ के मध्य भाग में प्रतिष्ठापित गुरु गोरक्षनाथ की बोलती प्रतिमा, आशीष उड़ेलती अखिलेश्वरीय आभा किसी भी श्रद्धालु को अपनी अशेष शक्ति सौंपती दृष्टिगोचर होती है। सम्पूर्ण पीठ-परिभू इसी तपस्वी की योगछाया में विश्रान्ति की अनुभूति पाता है। गुरु गोरक्ष की चमकती योगकाया के पूजक-प्रहरी योगी गम्भीरनाथ, युगपुरुष दिग्विजयनाथ, राष्ट्रसन्त अवेद्यनाथ ने अपनी श्रद्धा-आस्था का सर्वस्व इस पीठ को अर्पित किया है। अब पीठाधीश्वर योगी आदित्यनाथ जी महाराज परम्परा के महासेतु पर चढ़कर अनथक-अविराम यात्रा कर रहे हैं, युग-संन्यासी के रूप में, योग-पुरुष के रूप में, राजयोगी के रूप में।

बालक अजय अजेय योगयोद्धा बनेगा, किसे पता था। जननी-जनक, बन्धु-बान्धव, शिक्षक-गुरु, सखा-शुभेच्छु, अड़ोस-पड़ोस, गाँव-गिराँव, पहाड़-नदी और वन-प्रान्तर किसी को क्या पता? एक लघुकाया में महासागर की लहराती लहरों को कोई नहीं लख सका। कैलास की गुप्तगुहा में

---

*हिन्दी विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर

उमड़ते-अँगड़ाई भरते जलप्रपात को कोई कैसे देख पाता? सावन का श्याम मेघ कहाँ गरज उठेगा, किसको मालूम? दरअसल, गढ़वाल के पर्वतीय गढ़ में पिनाक की एक गूढ़ पिनक तथा अपने प्रांगण में किसी सिंह-शावक को मचलते-गरजते और कूदते देख-सुनकर वहाँ की वादियों के अनुमान को अनुमान हो चला था कि यह केसरी-कुमार मानव-जन्म में आकर राजयोग से या तो राजमुकुट पहनेगा अथवा हठयोग से संन्यासी होकर योगमार्ग पर चल उठेगा।

इस योगकुमार को जमाना जानता है। शिशु से किशोर जीवन में और कैशोर से कुमार जीवन में उतरते इस नवयुवक ने पहाड़ी जीवन की दृढ़ता और कठोरभूमि में चलना सयाना होने से पहले ही सीख लिया था। पहाड़ की कड़ी जमीन पर चलना, मिट्टी पर नहीं, शैल-पट्टी पर दौड़ना और कायिक बल पर भरोसा करते हुए आत्मबल को सखा-साथी समझना प्राय: प्रत्येक पहाड़ी सन्तान की नीयत-तबीयत होती है। प्रकृति के पौरुषेय प्रांगण में क्रीड़ा-विनोद और प्रकृति के अभ्रशायी विमल व्योम में मन की मुक्त उड़ान किसी भी शैलबाला-बालक की आत्मनियति होती है।

देवभूमि की मन्दाकिनी के पार्श्ववर्ती पहाड़ी नीड़ में एक अनाम योगी अपने नवजात रोमिल पंखों को उड़ने लायक बना रहा था। एक मुनिकुमार अपना भवितव्य मानो अभी से देख रहा था। सत्यत:, अनागत तो अदृश्य-अमूर्त-अपारदर्शी होता है। मगर, स्वप्नभरे-सुनहरे-सुन्दर वर्तमान से उसकी भावीमूर्ति का छायाभास मिलने लगता है। अबोध अजय अन्तर्बोध के साथ अपने अनागत आदित्य के तेज में अभी से तप रहा था।

'अजय' का दूसरा जन्म हुआ 'योगी' के रूप में और तीसरा 'आदित्यनाथ' के रूप में। अब दोनों विशेषण विशेष्य बनकर लोकमानस में स्थायी अधिवास कर रहे हैं। व्याकरणिक अर्थभाष्य में 'विशेष्य' की पहचान - मुकुट 'विशेषण' होता है। मगर, शब्दशास्त्र की आलंकारिक मीमांसा में विशेषण-विपर्यय भी होते रहते हैं। अर्थात् विशेषण का विशेष्य बन उठना तथा विशेष्य का विशेषण बन जाना शास्त्रसम्मत है। आशय यह कि 'योगी' और 'आदित्य' दोनों पद एक-दूसरे के विशेषण-विशेष्य-विपर्यय का आभास देते हैं। यानि 'योगी आदित्य' और 'आदित्य योगी' दोनों ही रम्य सम्बोधन मान्य हैं। 'आदित्य' (सूर्य) की सार्वकालिक योगमुद्रा और 'योगी' की अहर्निश आदित्यमुद्रा के अर्थान्तरन्यास पर किसी भी शब्दशास्त्री द्वारा प्रतिप्रश्न नहीं उठेगा। 'योगी आदित्यनाथ' जैसे विवेकवान-अर्थवान अभिधानीकरण के लिए योगी-गुरु सन्त-सम्राट ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ की विद्या-मेधा को युगलहस्त वन्दन!

योगी आदित्यनाथ जी अब व्यक्ति नहीं, संस्था हैं। उनका 'अजय' संज्ञाधारी व्यक्ति अजेय 'योगी आदित्यनाथ' में विलीन होकर संस्थाधारी अस्तित्व में रूपान्तरित हो चुका है। अब वे विश्व-आस्था के प्रतीक भारतीय योगी हैं। विश्वश्रद्धा के केन्द्र भारतीय संन्यासी हैं। विश्वमठों में प्रधान गोरक्षपीठ के भारतीय अधीश्वर हैं। भारतीय लोकतंत्र के प्रहरी हैं। और हैं भारतीय गणराष्ट्र के

विशाल प्रान्त उत्तर प्रदेश के प्रमुख-प्रधान-सर्वस्व। योगी की तर्जनी पर प्रदेश का विकास-चक्र घूमता है। वह संस्था इसलिए हैं कि वे अपने कुटुम्ब के लिए नहीं, वसुधा-कुटुम्ब के लिए चौबीस घण्टे जागते हैं। 'अहर्निश सेवामहे' उनके अविश्रान्त जीवन का मिशन-मंत्र है। पैर थकते नहीं, वाणी विश्राम नहीं लेती, शरीर श्लथ नहीं होता। अनवरत-अविराम-अनथक चरैवेति इच्छाशक्ति के आत्मप्रहरी स्वामी आदित्यनाथ इसलिए भी संस्था हैं। कोई भी संस्था मनुष्य के निर्माण, समाज की सुन्दर रचना और राष्ट्र की रम्य मूर्ति गढ़ने में तोष की अनुभूति पाती है। इसी परितोष को पाने की अकुण्ठ अभीप्सा योगी आदित्यनाथ की आत्मप्रतिज्ञा है।

एक योगी का मुख्यमंत्री होना पूर्वांचल समेत पूरे देश के लिए सुखद-आशाप्रद और आश्वस्तिदायक है। भारत की पौराणिक और सांस्कृतिक तस्वीर उठाकर देखें तो अनेकत्र मिलेगा कि कई मनुष्य पहले राजा हुए हैं और बाद में योगी। कई-एक ऐसे भी महामानव हैं जो पहले योगी हुए और बाद में राजा। परन्तु, अनेक ऐसे भी हैं जो योगी और राजा एक साथ हुए हैं। योगवन्त और राजवन्त का युगल मुकुट एक साथ धारण करने वाले महापुरुषों में या तो मिथिला के महाराज जनक का नाम पुराण-प्रसिद्ध है या फिर हमारे समय का हिमालयी नाम है गोरखपुर के महाराज योगी आदित्यनाथ जी का। जनक राजा थे और योगी भी। गोरक्षपीठाधीश्वर आदित्यनाथ जी योगी हैं और राजा भी। लोभ-मोह-मुक्त महाराज जनक विदेहराज थे और इन मनोविकारों से मुक्त आदित्यनाथ भी विदेह हैं।

प्रसंगवश यह लोकोक्ति सही अर्थ सौंप रही है कि 'जैसा राजा वैसी प्रजा' या कि 'यथा राजा तथा प्रजा'। योगी के देह पर डेढ़-दौ सौ का गैरिक वस्त्र, पैरों में बीस-पच्चीस का देसी पगत्राण और आभा में भारतीय संन्यासी का प्रदीप्त ललाट सभी को अपनी ओर अनायास खींचता है। आदितः देखिये, दो-तीन दिन के ही राजकाज में जीव-हिंसा का निषेध तथा किसी भी सरकारी कार्यालय में पाउच-पुकार-पान-गुटखा पर प्रतिबन्ध तथा स्वच्छता-संस्कृति की प्रतिज्ञा उन्हें इस देश के मुख्यमंत्रियों में स्वतः पहला स्थान सौंप उठती है। शिक्षाविदों का विश्वास बढ़ा है कि प्राथमिक से लेकर उच्चशिक्षा तक की बिगड़ी शैक्षिक तस्वीर और आकण्ठ आर्थिक भ्रष्टाचार में डूबी आज की युगरीति पर चंद दिनों में एक राजयोगी का हठयोग औचक असर छोड़ेगा। एक योगी मुख्यमंत्री के उठते-चलते-बढ़ते कदमों को और रोज-रोज के प्रगतिशील राष्ट्रवादी संदेश को साधुवाद! पीठाधीश्वर आदित्यनाथ जी महाराज के योग-पौरुष और मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ जी के पौरुष-योग को शत बार वन्दन!! गोरक्षभूमि के एक युवतर योगी को भारत महादेश आज महानायक-लोकनायक के रूप में देख रहा है। योगशक्ति और राष्ट्रभक्ति से भरे इस महायोगी द्वारा योगविद्या का अभिनव सौन्दर्यशास्त्र रचा जा रहा है जिसे '**न भूतो न भविष्यति**' की सूक्तिरेखा में पढ़ा जा सकता है।

शैक्षिक अवसरों की समानताः भारतीय सन्दर्भ में

गिरीश चन्द्र पाठक*

शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ है, राज्य की पूरी जनसंख्या को स्थान, जाति, लिंग, धर्म, अर्थ आदि किसी भी आधार पर भेद किये बगैर शिक्षा के अवसरों की समान रूप से उपलब्धता। प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर शैक्षिक अवसरों की समानता का तात्पर्य सभी बालक–बालिकाओं के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा से है एवं विशिष्ट शिक्षा या उच्च शिक्षा के स्तर पर रूचि, योग्यतानुसार शिक्षा के अवसरों की समान रूप से उपलब्धता से है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि राज्य द्वारा देश के सभी बच्चों को जाति, धर्म लिंग या अन्य किसी आधार पर भेद किये बगैर अनिवार्य एवं निःशुल्क सामान्य शिक्षा को अनिवार्य रूप से और विशिष्ट शिक्षा को उनकी रूचि, रूझान, योग्यता एवं आवश्यकतानुसार सुलभ होना ही शैक्षिक अवसरों की समानता की स्थिति है।

भारत में शैक्षिक अवसरों की समानता, विशेष महत्व रखती है। अगर संविधान में अंकित, प्रतिष्ठित समाजवाद, धर्मनिरपेक्षवाद एवं लोकतन्त्र के लक्ष्य की प्राप्ति चाहते हैं तो सबके लिए शिक्षा के अवसरों की समानता हेतु प्रयास किये जाने चाहिये। शिक्षा ही विकास की कुंजी है। अतः यदि सभी को विकास का अवसर देना है तो उन्हें यह अवसर शिक्षा के अवसर के रूप में दिया जा सकता है। शिक्षा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य है अवसर की समानता प्रदान करना, जिससे पिछड़े एवं दलित वर्गों के व्यक्ति शिक्षा द्वारा अपनी स्थिति सुधार सकें। जो भी समाज, सामाजिक न्याय को अपना आदर्श मानता है और आम आदमी की हालत सुधारने तथा समस्त शिक्षा पाने योय व्यक्तियों को शिक्षा देने को उत्सुक है, उसे यह व्यवस्था करनी ही होगी कि जनता के सभी वर्गों को अवसर की अधिकाधिक समता प्राप्त हो। भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक संरचना को देख कर कहा जा सकता है कि शैक्षिक अवसरों की समानता के सिद्धान्त को अवश्य लागू किया जाय। पिछड़े एवं निम्न वर्ग के लोगों को शोषण एवं अन्याय से बचाने तथा उन्हें अभावग्रस्त जीवन से मुक्त करने में शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में भूमिका निभा सकती है। शिक्षा उनके जीवन मूल्यों एवं मान्यताओं में परिवर्तन ला सकती है। यथास्थिति बनाये रखने की संकुचित प्रवृत्ति,

*असि. प्रोफेसर (बी.एड्. विभाग), दिग्विजयनाथ एल.टी. प्रशिक्षण महाविद्यालय, गोरखपुर

अन्धविश्वास एवं अनावश्यक भार स्वरूप लदी हुयी परम्पराओं के प्रति मोह तथा भाग्यवादी विचारधारा से मुक्ति दिलाकर शिक्षा उनमें प्रगति की चेतना भर सकती है। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के अवसर तथा सुविधा देकर, उच्च पद तथा भूमिका प्रदान कर, उनमें नेतृत्व की क्षमता पैदा कर सकती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था अपनायी गयी। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में शासन, बहुमत की इच्छा के आधार पर चलाया जाता है। जनता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है एवं जनप्रतिनिधियों के द्वारा शासन का संचालन किया जाता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुचारू ढंग से चलने के लिए आवश्यक है कि जनता, जाति, धर्म क्षेत्र आदि के संकुचित विचारों से उपर उठ कर, योग्य एवं ईमानदार जनप्रतिनिधियों का चुनाव करे। यह आवश्यक है कि देश के नागरिक अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों से सुपरिचित हो एवं अधिकारों के विवेकपूर्ण उपयोग तथा कर्तव्यों को पूरा करने के लिए सदैव तत्पर रहे तथा वास्तविकता एवं दुष्प्रचार के बीच भेद करने में सक्षम हों।

भारत में सम्पत्ति एवं आय के विवरण में अत्यधिक विषमता है। अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में अक्षम व्यक्ति अपने सामाजिक एवं राजनीतिक दायित्वों को न तो समझ सकता है न तो उन्हें पूरा कर सकता है। वर्तमान समय में जब विज्ञान एवं तकनीकी का बोलबाला है, व्यक्ति शिक्षा के बगैर अपनी आर्थिक-सामाजिक स्थिति में सुधार कर पायेगा, कठिन प्रतीत होता है।

शैक्षिक अवसरों की समानता के महत्व के संविधान निर्माताओं ने भी अनुभव किया था एवं भारत में शैक्षिक अवसरों की समानता हेतु संवैधानिक प्रावधान किये गये-

अनु. 29 (2)-राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी नागरिक को केवल धर्म, मूल वंश, जाति, भाषा अथवा इनसे किसी आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता है।

अनु. 45- राज्य इस संविधान के लागू होने की तिथि से दस वर्ष की अवधि के भीतर 6 से 14 वर्ष के सभी बालक-बालिकाओं के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करने का प्रयास करेगा।

अनु. 46- राज्य विशिष्ट रूप से कमजोर वर्ग, मुख्यत: अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों को ध्यान में रखेगा तथा उनकी सभी प्रकार के सामाजिक अन्याय एवं शोषण से रक्षा करेगा तथा यह केन्द्र की जिम्मेदारी है कि वह विभिन्न क्षेत्रों में एवं विभिन्न वर्गों के बीच, शैक्षिक अवसरों को समान बनाये रखने का प्रयास करेगा।

संविधान के 93वें संशोधन को जिसमें प्राथमिक शिक्षा के अधिकार को मूल अधिकार का

दर्जा दिये जाने का प्राविधान है, लोकसभा द्वारा दिनांक 28 नवम्बर, 2001 को तथा राज्य सभा द्वारा 14 मई, 2002 को पारित किया गया।

भारत सरकार द्वारा समय-समय पर घोषित की गयी शिक्षा नीतियों में शैक्षिक अवसरों की समानता का उद्देश्य स्पष्ट रूप से वर्णित है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति जुलाई 1968

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में शैक्षिक अवसरों की समानता के लिये प्रयुक्त किये जाने का संकल्प लिया गया।

1. शिक्षा के सुविधाओं की व्यवस्था की दृष्टिकोण से प्रादेशिक असंतुलन को मिटाना चाहिये तथा ग्रामीण एवं अन्य पिछड़े इलाकों में शिक्षा की अच्छी सुविधायें दी जानी चाहिये।
2. सामाजिक एकता तथा राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिये शिक्षा आयोग की सिफारिशों में बतायी गयी समान स्कूल पद्धति को अपनाया जाना चाहिये। सामान्य स्कूलों में शिक्षा के स्तर में सुधार करने के प्रयत्न किये जाने चाहिये। पब्लिक व विशेष स्कूलों में छात्रों का दाखिला, योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिये और सामाजिक वर्गों के पृथक्करण को बचाने के लिये फीस माफी का अनुपात निश्चित कर देना चाहिये।
3. न केवल सामाजिक न्याय की दृष्टि से बल्कि सामाजिक रूपान्तरण की गति को तीव्र करने के लिये भी लड़कियों की शिक्षा पर बल दिया जाना चाहिये।
4. पिछड़े वर्गों एवं विशेष रूप से आदिम जातियों में शिक्षा का विकास करने के लिए प्रयासों की आवश्यकता है।
5. विकलांगों और मानसिक रूप से अशक्त बच्चों के लिये शैक्षिक सुविधाओं का विकास किया जाना चाहिये। ऐसे समन्वित कार्यक्रमों का विकास किया जाना चाहिये, जिसके द्वारा ये बच्चे नियमित स्कूलों में अध्ययन कर सकें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति अप्रैल 1979

14 अप्रैल, 1979 के घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया है कि शिक्षा प्रणाली का गठन इस प्रकार होना चाहिये कि वर्ग (क्लासेज) तथा जन मासेस के मध्य का शैक्षिक अन्तर कम किया जाये जिसमें उनमें अलगाव, उच्चभाव तथा हीनता का भाव समाप्त हो। यह संकल्प भी दोहराया गया कि संविधान में वर्णित नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अनुसार 14 वर्ष आयु तक के बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जायेगी। इस स्तर पर शिक्षा समान होगी, विशेष नहीं। इस स्तर पर छात्रों को भाषा, उपकरणीय विषय तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986

नयी शिक्षा नीति 1986 के दस्तावेज में जिन कई बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया उनमें से एक है बगैर किसी भेदभाव को बरते, शिक्षा सभी को समान रूप से उपलब्ध होने चाहिये। जिन वर्गों को शिक्षा के पर्याप्त अवसर उपलब्ध नहीं हो सके है उनके लिये शिक्षा के अवसर बढ़ाये जाने चाहिये।

शिक्षा स्त्रियों की समानता के लिये

स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिये शिक्षा एक प्रमुख साधन है। शैक्षिक संस्थाओं को प्रोत्साहित किया जाये कि वे स्त्रियों के विकास के क्रियाशील कार्यक्रमों को संचालित करें। स्त्रियों के बीच में असाक्षरता निवारण के लिये नयी शिक्षा नीति में कहा गया कि उनमें प्राथमिक शिक्षा को प्राथमिकता दी जाये, शिक्षा संस्थाओं के समय चक्र का निर्धारण उनकी सुविधानुसार हो, शिक्षा संस्थाओं को आर्थिक सहायता, समुचित रूप से दी जाये एवं इस बात पर बल दिया जाये कि स्त्रियां व्यवसायिक एवं तकनीकी शिक्षा के विभिन्न स्तरों में भाग लें। नयी शिक्षा नीति का एक उद्देश्य है कि उन्हें शैक्षिक अवसरों की समानता प्रदान कर आत्मविश्वास के साथ, अपनी स्वयं की प्रतिभा पहचानने की क्षमता का विकास किया जाये।

अनुसूचित जातियों की शिक्षा

नयी शिक्षा नीति में कहा गया कि अनुसूचित जातियों के शैक्षिक विकास पर बल दिया जायेगा जिससे वे गैर अनुसूचित जाति के लोगों के बराबर आ सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उपाय बताये गये कि-

1. निर्धन परिवारों को इस प्रकार प्रोत्साहन दिया जाये कि वे अपने बच्चों को 14 वर्ष की आयु तक नियमित रूप से स्कूल भेज सकें।
2. सफाई कार्य, पशुओं का चमड़ा उतारने जैसे व्यवसायों में लगे परिवारों के बच्चों के लिए मैट्रिक पूर्व छात्रवृत्ति योजना पहली कक्षा से लागू करना।
3. जिला केन्द्रों पर अनुसूचित जाति के छात्रों के लिए छात्रावासों की सुविधायें क्रमिक रूप से बनाना।
4. अनुसूचित जातियों का शिक्षा की प्रक्रिया में समावेश बढ़ाने हेतु लगातार नवीन तरीकों की खोज जारी रखना।

अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा

अनुसूचित जनजातियों को अन्य लोगों की बराबरी पर लाने के लिए निम्नलिखित कदम

तत्काल उठाये जायेंगे-

1. आदिवासी इलाकों में प्राथमिक शालायें खोलने के काम को प्राथमिकता दी जायेगी।
2. आदिवासी भाषाओं के माध्यम से प्रारम्भ में शिक्षा दी जायेगी।
3. पढ़े लिखे प्रतिभाशाली युवकों, प्रशिक्षण देकर, अपने क्षेत्र में ही शिक्षक बनने के लिए प्रोत्साहन दिया जायेगा।
4. उच्च शिक्षा के लिये दी जाने वाली छात्रवृत्तियों में तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा को अधिक महत्व दिया जायेगा।
5. आदिवासियों की समृद्ध सांस्कृतिक अस्मिता तथा विशाल सृजनात्मकता प्रतिभा के बारे में चेतना सभी स्तरों के पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग होगी।

इसके अतिरिक्त शैक्षिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्गों एवं रेगीस्तानी इलाकों में शिक्षा के अवसर बढ़ाने पर जोर दिया गया है। दिव्यांगों एवं अल्पसंख्यकों को भी शिक्षा के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराने का प्रयास किया जायेगा।

प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के अवसरों को समान बनाये रखने के लिए सन् 2009 ई. में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 पारित किया गया। शिक्षा का अधिकार अधिनियम या बालकों के नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार, भारतीय संसद द्वारा पारित, अधिनियम है, जो 6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के बच्चों की शिक्षा के लिये, अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत प्रदान किये गये, शिक्षा सम्बन्धी मूल अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिये, प्रक्रिया को निर्धारित करता है। इस अधिनियम को 01 अप्रैल, 2010 से लागू करके, भारत विश्व के उन देशों में सम्मिलित हो गया, जिन्होंने बच्चों के शिक्षा के अधिकार को मूल अधिकार का दर्जा प्रदान किया है। यह अधिनियम, 6 वर्ष से 14 वर्ष आयु सीमा के प्रत्येक बच्चे की शिक्षा के मूल अधिकार को सुनिश्चित करता है एवं प्राथमिक विद्यालयों के लिये विशिष्ट मानक निर्धारित करता है।

इस अधिनियम में प्रावधान है कि भारत के 6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु वर्ग के मध्य के सभी बच्चों को निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जायेगी। प्राथमिक शिक्षा पूर्ण होने के पूर्व किसी बच्चे को किसी कक्षा में रोका नहीं जायेगा, निकाला नहीं जायेगा एवं कोई बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण नहीं करनी होगी। विद्यालयों में एक निश्चित शिक्षक-छात्र अनुपात बनाये रखने का प्रयास किया जायेगा। आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के बच्चों को निजी विद्यालयों की 25 प्रतिशत सीटों पर प्रवेश दिया जायेगा, जिनके शुल्क की भरपाई सरकार द्वारा की जायेगी। प्रशिक्षित शिक्षक ही शिक्षण कार्य कर सकेंगे। जो अप्रशिक्षित शिक्षक कार्यरत है, उन्हें एक निश्चित समय-सीमा के अन्दर, प्रशिक्षण प्राप्त करना होगा। वगैर मान्यता के कोई विद्यालय संचालित नहीं हो सकेगा। वित्तीय भार को केन्द्र

एवं राज्य सरकारें, मिलकर वहन करेंगे। पूर्वात्तर राज्यों को छोड़कर, अन्य राज्यों में यह अनुपात 65:35 होगा एवं पूर्वोत्तर राज्यों में 90:10 होगा। यह अधिनियम, जम्मू-कश्मीर राज्य में लागू नहीं होगा। एक निगरानी समिति का गठन होगा, जो समुदाय के निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से स्कूल की निगरानी करेगी। केन्द्र स्तर पर, राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण परिषद एवं राज्य स्तर पर राज्य बाल अधिकार संरक्षण परिषद गठित की जायेगी।

शैक्षिक अवसरों की असमानता के कारण

1. **शैक्षिक संस्थाओं का असमान वितरण-** प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा सभी स्तर पर शैक्षिक संस्थाओं का वितरण असमान है। भारत के अधिकांश जनसंख्या गांव में निवास करती है। जबकि माध्यमिक एवं उच्च शैक्षिक संस्थायें नगरीय क्षेत्रें में स्थित है। प्राथमिक स्तर की संस्थायें भी ग्रामीण क्षेत्रें की आबादी को देखते हुए अपर्याप्त हैं। व्यवसायिक शिक्षा के स्तर पर यह वितरण और भी विषम है, जिससे सभी के लिए शिक्षा के अवसर समान नहीं रह जाते हैं।

2. **शैक्षिक संस्थाओं के स्तर में भिन्नता-** भारत में शैक्षिक संस्थाओं के स्तर में काफी अन्तर है। कुछ संस्थाओं में भवन, फर्निचर, पुस्तकालय जैसी मूलभुत सुविधायें भी उपलब्ध नहीं है। अनेक विद्यालयों में मात्र एक या दो शिक्षक सम्पूर्ण विद्यालय को संचालित करते हैं, इन विद्यालयों में अध्ययन करने वाले बालक-बालिकाओं का विकास सही ढंग से नहीं हो पाता है, जिससे उनके लिए उच्च शिक्षा के अवसर सिमित हो जाते हैं। प्रभावी अध्यापकों के उपलब्धता-अनुपलब्धता के कारण भी विद्यालयों के स्तर में भिन्नता हो जाती है। सरकारी विद्यालयों एवं निजी विद्यालयों में उपलब्ध संसाधनों के स्तर पर काफी विभिन्नता है, जिससे शैक्षिक अवसरों में विभिन्नता हो जाती है।

3. **बालक-बालिकाओं के शिक्षा में अन्तर-** भारत में बालिकाओं के लिए शिक्षा के अवसर, बालकों की अपेक्षा सदैव कम रहे हैं। परम्परागत सोच, विद्यालयों का अभाव, परिवहन के साधनों का अभाव इसके लिए प्रमुख रूप से जिम्मेवार हैं। 1992 में ग्रामीण क्षेत्र में कक्षा 1 में प्रवेश लेने वाली प्रत्येक 100 बालिकाओं में केवल 40 बालिकायें कक्षा 5 से आगे, 18 बालिकायें कक्षा 8 से आगे, 9 बालिकायें कक्षा 9 से आगे एवं एक बालिका कक्षा 12 से आगे की शिक्षा ग्रहण कर पाती है। शहरी क्षेत्र में कक्षा एक में प्रवेश लेने वाली प्रत्येक 100 बालिकाओं में 82 बालिकायें पांच से आगे, 62 बालिकायें कक्षा आठ से आगे, 32 बालिकायें कक्षा नौ से आगे एवं 14 बालिकायें कक्षा 12 से आगे की शिक्षा ग्रहण कर पाती है।

उच्च एवं व्यवसायिक शिक्षा में स्त्रियों की भागीदारी और भी कम है। 1996-97 में

नामांकित होने वाली प्रत्येक 100 महिलाओं में कला में 54.4%, वाणिज्य में 14.4%, विज्ञान में 20.1%, अध्यापक कक्षा में 3.9%, विधि शास्त्र में 1.8%, तकनीकी शिक्षा में 1.2% तथा अन्य जिसमें चिकित्सा, कृषि, शारीरिक शिक्षा सम्मिलित है, 4.5% महिलायें हैं।

पारिवारिक स्थिति

पारिवारिक स्थिति में भिन्नता के कारण शिक्षा के अवसरों में असमानता हो जाती है। सम्पन्न परिवार के बच्चें, निर्बाध रूप से अपनी शिक्षा जारी रख पाते हैं जबकि गरीब एवं निर्बल वर्ग के परिवारों से आने वाले बच्चें, शिक्षा के लिये आवश्यक धन की व्यवस्था न कर पाने के कारण शिक्षा के अवसरों से वंचित हो जाते हैं।

शैक्षिक संस्थाओं में भेदभव पूर्ण व्यवहार के कारण

शैक्षिक संस्थाओं में जाति धर्म या अन्य किसी आधार पर किये जाने वाले भेदभाव पूर्ण व्यवहार के कारण छात्र-छात्रायें अपनी योग्यता का सम्पूर्ण ढंग से विकास नहीं कर पाते हैं, उनमें प्रेरणा एवं लगन की कमी हो जाती है एवं वे न तो शिक्षा के उपलब्ध अवसरों का सदुपयोग कर पाते हैं एवं न ही शिक्षा के नये अवसरों को तलाशते हैं।

आवासीय सुविधाओं का अभाव

स्तरीय आवासीय सुविधाओं के अभाव में एवं उच्च शिक्षा के अवसर प्रभावित होते हैं। बालिकाओं के शिक्षा के अवसरों पर इसका और अधिक प्रभाव पड़ता है।

शैक्षिक अवसरों की समानता हेतु किये जा सकने वाले उपाय

1. सुदूर एवं उपेक्षित क्षेत्रों में शैक्षिक संस्थाओं खोले जाये।
2. वर्तमान शिक्षण संस्थाओं के स्तर में सुधार।
3. शैक्षिक दृष्टिकोण से उपेक्षित वर्गों की शिक्षा पर विशेष ध्यान।
4. अवरोधन एवं अपव्यय की समाप्ति।
5. शिक्षा के स्तर में सुधार।
6. अध्यापकों में गुणात्मक एवं संख्यात्मक सुधार।
7. शुल्क माफी की सुविधा।
8. छात्रवृत्ति का प्रावधान।
9. छात्रवासों का सुविधा।

10. शिक्षा को सस्ता बनाये रखना।

11. समाज में शिक्षितों, शिक्षकों के लिये सम्मानजनक स्थान।

12. दूरस्थ शिक्षा को प्रोत्साहन।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही आवश्यकता अनुभव की गयी कि राज्य को सभी के लिये शिक्षा के अवसरों को समान बनाये रखने का प्रयास करना चाहिये एवं शैक्षिक अवसरों की समानता उपलब्ध करा कर ही अपने लोकतांत्रिक स्वरूप को मजबूती दे सकते हैं एवं लोकतन्त्र का सामाजिक एवं जीवन के अन्य क्षेत्रों तक विस्तार कर सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उन कारकों को निष्प्रभावी किया जाय जो शिक्षा के अवसरों में असमानता लाते हैं। साथ ही यह भी आवश्यक है कि उपलब्ध असवरों का पूरा-पूरा उपयोग किया जाये।

संदर्भ-सूची

1. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्री आधार – रमन बिहारी लाल
2. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक – राम सकल पाण्डेय
3. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक – राणा बलवन्त
4. न्यू पॉलिसी ऑन एजूकेशन 1986 – भारत सरकार

National Policy on Education

Mahant Digvijay Nath

On July 14, 1964, Mr. Mohammad Ali Currim Chagla appointed, as the Education Minister of India, an Education Commissio n consisting of 17 Members which was comprised of 6 foreigners, 2 Muslims and the rest opponents of Hindi.

The Objective of this Education Commission was given out as being "to advise Government on the national pattern of education and on the general principles and policies for the development of education at all stages and in all aspects". This Education Commission submitted its Report to the Government of India on June 29, 1966.

On April 5, 1967, the Government of India constituted a Committee of Members of Parliament whose terms of reference were:

1. To consider the Report of the Education Commission.
2. To prepare a draft statement on the National Policy on Education.
3. To draw up a plan of work for immediate implementation.

This Committee of Members of Parliament appointed a Sub-Committee, to draw up a statement on the National Policy on Education, and it was this statement alone that was discussed by the Committee of Members of Parliament. This Committee did not go into the Report of the Education Commission in detail at all.

Among the members of Parliament which were members of this Committee, the sole representative of the Hindu Mahasabha in Parliament, Mahant Digvijay Nath, was also one. He raised a number of objections at the meetings of this Committee of Members of Parliament, but these were not given due consideration. He was, therefore, left with no alternative but to append a detailed Minute of Dissent to the statement on National Policy on Education prepared by the Committee, which has been published along with the statement on National Policy on Education.

I have gone through the report of the Education Commission at some length. I have also attended the meetings of the State Education Minister held on April 28, 29 & 30, 1967. And, I have also attended almost all meetings of the Committee of Members

of Parliament formed to study the Education Commission's report. The statement on National Policy on Education, in its final form dated June 29, 1967, has also been received by me, and the signing of this report now remains to be done. I sign it with the following Minute of Dissent.

2. I feel that the objective of education mentioned to para I of the proposed "National Policy on Education" is not properly worded. I feel that it should be worded as follows:

   Education is a powerful instrument of national development-cultural, social and economic. The highest priority should therefore be accorded to the development of a national system of education which will:-develop among the people of India a national personality based on its ancient civilization and culture;
   while the rest of the para remains as in the draft.

3. I regret to say that I found much of unreality about the entire problem of education as it has to be re-organised after twenty years of our independence, as the basic problem about the character of education to be imparted to our children has not been examined by the Education Commission, as it was expected to do. I am sorry that the Report of the Education Commission was not considered in detail by the Committee, thereby defeating the very purpose for which it had been appointed.

4. The real malaise with the present system of education in India is that it has been based on the infamous Minute of Macaulay dated February 2, 1835, the real aim of which was clearly defined by him in the following words: We must at present do our best to form a class which may be interpreters between us and the millions whom we govern-a class of person Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinions, in morals and in intellect". This clearly shows that the basic aim of Macaulay was only to produce clerks, and this aim has been carried through by the Government of India ever since March 7, 1835, when Lord William Bentinck got the Government resolution adopted which said that "the great object of the British Government ought to be the promotion of European literature and science among the natives of India; and that all the funds appropriated for the purpose of education would be best employed on English education along."

5. The objective which both Macaulay and Bentinck had before them was to convert the whole of India to Christianity, as is clear from the letter Macaulay wrote to his parents from Calcutta on October 12, 1835. In this, he wrote : "Our English Schools are flourishing wonderfully, the effect of this education on the Hindus is prodigious. No Hindu, who has received an English education, ever remains sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy, but many profess

themselves pure deists, and some embrace Christianity. It is my firm belief that if our plans of education are followed up, there will not be a single isolator among the respectable classes in Bengal thirty year hence. And, this will be effected without any efforts to proselytize, without the smallest interference with religious liberty merely by the natural operation of knowledge and reflection. I heartily rejoice in the prospect".

6. Commenting on this letter of Macaulay, Mahatma Gandhi wrote in "Young India" dated March 29, 1928 thus: "I do not know whether Macaulay's dream that English-educated India would abandon its religious beliefs has been realized, but we know too that he had another dream, namely, to supply English-educated India clerks and the like for the English rulers. That dream has certainly been realized beyond all expectation".

7. Another objective Macaulay had in this mind when introducing this English education in India, was to denigrate everything India. He wrote in para 9 of the same infamous Minute that "I have ever found one among them (the Orientalists) who could deny a single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India and Arabia". This view of his has been impressed on the Indian mind during the last seven generations continuously so much so that every Indian today considers everything Indian as inferior and everything English or Western as superior.

8. Under these circumstances, the basic aim of educational reconstruction in India must be to reverse this process, and very effort must be made through education to eliminate this inferiority complex from the minds of the new generations in India and also to produce youngmen with a fully developed national personality, based on the ancient the civilization and culture of our great country.

9. I am really very happy to note that our present Education Minister, as well as the Prime Minister and the Deputy Prime Minister, are fully conscious of this great need of educational reform. In the course of his address at the inaugural session of the Tenth Conference of the State Education Ministers, held in New Delhi on April 28, 1967 the Education Minister had stated: "Equally significant is the programme to promote national consciousness and to strengthen national integration and unity. Unfortunately patriotism has become the first casualty after independence. We must not make the schools assume responsibility for promoting national consciousness and for strengthening national integration and unity". The Prime Minister, while inaugurating this Conference clearly stated that "partly because of the system itself and partly because of unavoidable transitional factors, it has resulted in a certain degree of alienation and rootlessness. Many young

people have been cut adrift from traditional values, without being provided the anchorage of an alternative set of constructive modern values". The Deputy Prime Minister, in the course of his address at the same Conference, went a step further, when he said: "We have a very ancient, perhaps the most ancient civilization and culture. In the realm of thought, which raises human personality to the highest fulfillment, I do not think any other country can beat this country. Today also, we are having all those thoughts and ideals but they are more in name than in action. Our ideals are the highest but our actions are probably the lowest. I must agree to this indictment, but if that indictment is rightly taken by us to heart, not as a criticism but as a statement of the present state of affairs from which we are suffering, we shall soon find a way to remove this contradiction between thought and action. We have not go to lower our ideals but we have got to raise the level of our action, so that it conforms with the ideals that we profess of believe, in. I believe education is the only instrument through which we can achieve this. There is nothing else which can make a nation integrated, strong and consisting of a real human society, because it is the purpose of education to unable us to see that what is right and what is wrong and also to acquire a capacity to stick to what is right and to give up what is wrong. Judged from that standard, I am afraid, our education has been a miserable failure, barring a few exceptions here and there. That is because our education took a different turn during our days of slavery. I am happy that those days are gone, but the effects of those days are not yet gone. Whereas we have become physically independent and free, I wonder if we are mentally yet free and independent. We are still being governed, and very strongly governed, by some of the ideas which were responsible for putting us into slavery and keeping us there". These sentiments, expressed by the highest in authority in the country in regard to education, give a clear indication, as to how our educational system should be re-organized for the future.

10. It is from this standpoint that I have stated in the very beginning of this Minute of Dissent that the report of the Education Commission and all the proceedings held in connection with it, have appeared to me to altogether unreal. I had expected the Education commission to have pointed out re-organized educational system would reverse this process of de-nationalizing the people, so that a national personality might develop among the future generations. I feel that the very constitution of the Education Commission was faculty from the very start. It was most unfortunate that no less than 6 of the 17 members of the Education Commission were foreigners: two Englishmen, one Japanese, one American, one Russian and one Frenchman. Out of the remaining eleven, two represented the Muslim minority in the country. Out of the remaining nine, apart from the

Chairman, who is one of the topmost scientists and educationists of the country, and present Education Minister, a great engineer and educationist, most of the others were of a calibre which left much to be desired as members of an Education Commission, the basic objective of which was to reconstruct in India, so as to raise it to the highest standards. It is most unfortunate that the Ministry of Education could not find a single North-Indian educationist from any of the many universities in the so-called Hindi region fit enough to become a member of this Education Commission. It is a result of this faculty constitution of the Education Commission that this lopsided Report has come before us, which seems to have been written with the deliberate objective of destroying the *very* national fabric of this country. All through this Report, an excessive emphasis has been laid on diversity among our people. For example, para 1.07 says : "Our people profess a number of different religion ; and the picutre becomes even more complicated because of caste, and undemocratic institution, which is still powerful and which, strangely enough, seems to have extended its sphere of influence under the very democratic processes of the Constitution itself. The situation, complex as it was, has been made critical by recent developments which threaten both national unity and social progress. As education is not rooted in the traditions of the people, the educated persons tend to be alienated from their own culture. The growth of local, regional, linguistic and State loyalties tend to make the people forget India. The old values' which held society together, have been disappearing, and as there is not effective programme to replace them by a new sense of social responsibility, innumerable signs of social dis-organization are evident everywhere and are continually on the increase". This by itself is a misstatement of the Indian society. There is hardly any big country in the world which does not have a small minority, but this minority does not change the basic character of the Nation. As such, to repeat *ad nauseum,* as has become the fashion today, to call India amultireligious polygeot country, is basically wrong. In this connection also, the Education Commission has put too much stress on the word "Secular" This much-abused word is regarded as something sacrosanct, when the fact is that this word has a very low connotation as it gives an idea of something mudance. It was for this very reason that this word does not find any place in the Constitution of India.

According to the "New English Dictionary" the word "Secular" stands for the "the absence of connection with religion". And according to the "Encyclopedia Britanica", the word "Secular" means "anything non-spiritual, having no concern with religion or spiritual matters-anything that is distinctly opposed to, not connected with religious or ecclesiastical, things temporal as apposed to spiritual or ecclesiastical". These definitions make it perfectly clear that there is nothing in the Constitution of

India to justify the application of the title "Secular" to the political system embodied therein. As against this, Article 25 of the Constitution provides for the right to freedom of religion, clearly declaring that "subject to public order, morality and the other provisions of this part, all persons are equally entitled to freedom of conscience and the right freely to profess, practice and propagate religion". Article 26 of the Constitution further clarifies how these religious rights are to be exercised by the people. These Articles in the Constitution gives religion a place in the political life of the country as hardly any other modern Constitution does. From all this it follows that India is not a "Secular State".

11. It is not a mere omission that the word "Secular" does not find a place in the Preamble to our Constitution, whereas social, economic and political justice, liberty of thought, expression, belief, faith and worship and equality of status and of opportunity all find a place there. The fact is that the learned constitution-makers of India were fully aware of the real meaning of the word "Secular" and they deliberately refused to countenance the addition of the word "Secular" in the Constitution, in spite of concerned efforts made by some. members to introduce this work in the Constitution itself. While discussing the Chapter on Fundamental Rights, it was Prof. K.T. Shah, the great economist, who moved an amendment by which he wanted an additional Article, to be numbered 18-A serially to be inserted in the draft Constitution, and this amendments to the Draft Constitution of India, Volume One", and it ran thus : "that the following new Article be inserted under the heading 'Rights relating to Religion', occurring after Article 18.

But, our Constitution-makers refused to accept this amendment and it was duly rejected. The matter, however, did not end there. The same Prof. K.T. Shah also moved an amendment to the Preamble in the Draft Constitution, by which he wanted to add the word "Secular" between the words "Sovereign" and "Democratic Republic". but this too was rejected by the Constituent Assembly. This amendment was the very first in the list of amendments printed in book form. Then again, by amendment No. 96. printed in the list of amendments, Prof. K.T. Shah and Mr. Mohan Lal Gautam wanted Article One of the Draft Constitution running "India shall be Union of States", to be changed in to "India shall be a Secular, federal, socialist Union of States", but this amendment also met the same fate and this too was rejected. These facts clearly go to show that the learned Constitution- makers of India did not want India to be a "Secular State" in any shape of form. Under such conditions, it was most improper for the Education Commission to have gone out of its way to lay undue emphasis on secularism. as it has done in para 1.79. wherein the Education Commission has taken undue pains to make a distinction between "Religious education" and "education about religions". It goes on

to say that' "it would not be practicable for a Secular State with many religions to provide education in anyone religion". As I have shown already, India cannot be called a Secular State with many religions. As ninety per cent of the population of the country follows the Hindu religion in one form or another, the remaining ten per cent of the minorities remain minorities and they cannot be permitted to act as if they had a right of veto on the rights of the ninety per cent nationals of this country. As to who is a Hindu has been made perfectly clear in the Constitution in Explanation II to Article 25(2)(b), which clearly says that "the reference to Hindus shall be construed as including a reference to persons professing the sikh, Jain or Buddhist religion, and the reference to Hindu religious institutions shall be construed accordingly'. This explanation makes it perfectly clear that ninety per cent of the people of India profess a single religion in different forms, and as such there should be absolutely no ban placed on religious instruction in the schools. It is a tragedy of India that while all Christian institutions in the country have the liberty to teach Christianity to its students and all Muslim institutions train their children in their religion, it is only the Hindu students who are debarred from getting any linking into their own religious beliefs. This attitude of the British Government in India all through the last 100 years before independence and of our own National Government during the last twenty years after the country's independence, has left a complete vacuum in the lives of the people of this country, and the Present indiscipline among the students can largely be traced to this non-teaching of the tenants of the Hindu religion, because Hindu religion has always been a great check on sin and crime. I therefore strongly demand that this attitude must now change. The ninety per cent nationals of this country have every right to have their children trained in the religious traditions of the country. I therefore demand that from the very elementary stages of education, all students must be imparted religious instruction in the sacred books of the Hindus, including the Vedas, the Upanishads, the Ramayana, the Mahabharata, the Gita and other scriptures, so that when the children grow up as citizens, they may have a through knowledge of the background about the great past of this ancient land. It is here that Macaullay's work of denationalizing the people has to be undone and undone with a strong hand. Until this is done, no system of education, however scientific in the Western sense, imparted in our schools and colleges, can make them first-rate citizens.

12. It is in this same connection that I consider it necessary to emphasize that the attempt made by the Education Commission to dissociate holidays in educational institutions from religious festivals is most reprehensible. In para 2.36, it has been stated that "the idea of vacation terms should be made secular and dissociated from religious festivals like Diwali, Christmas or Puja". And in para 2.37(1) the opinion has been expressed that "there is no need to close an educational institution

on a religious holiday. Nor it is necessary, for instance, to close it on birthdays or death anniversaries of great Indians". I take the strongest objection to these statements in the Report of the Education Commission. In all Christian countries in the world, Christmas and Easter holidays are celebrated on a grand scale. In the same ways, in all Muslim countries, Id-ul-Fiter and Id-ul-Zuha and Moharram are celebrated by the people on a mass scale, and the students are main participants in all these celebrations. Is it any crime for Hindus in India to be Hindus, that they must be debarred for celebrating their great days? it is often said that there are too many festivals among the Hindus. The reason for this is not far to seek. In words of Mr. Morarji Desai, our Ex-Deputy Prime Minister, (already quoted) "we have a very ancient, perhaps the most ancient civilization, and culture". And, it is but natural that the older a civilization, the more great men and great deeds is must have to celebrate, so that the future generations might follow in the footsteps of these great men. It is therefore not at all improper if the Hindus have a much larger number of festivals to celebrate, and the students must have every facility to participate in these festivals. This year important national holidays like Holi and Shivaratri were not declared closed holidays by the Government of India. This was a great encroachment on the rights of the people of this country, and it seems this action was taken on the basis of this Report of Education Commission. The Education Commission seems to have been very particular about reducing the number of holidays that might be granted to students. The simplest procedure that should have been adopted by the Education Commission was that it should have suggested that only those festivals should be declared as closed holidays which concern a majority of the people, that is in which more than 50 per cent of the people participate, and all festivals which concern people numbering less than 50 per cent should have them as restricted holidays, with full pay, available only to members of the communities with which those festivals are concerned. This would save many unnecessary holidays, without doing injustice to the vast majority of the people.

13. In this same connection, I wish to draw the attention of the people to the attempt made by the Zakir Hussain Committee on Basic Education, which through a seven-year course on general science, had made on attempt to teach "Islamic Culture in India and the World" to students all over India in class V, when it had scrupulously avoided mentioning the Vedas and the Upanishads, the Ramayana and the Mahabharata, Sanskrit and Hindi and the Aryan Hindu cultures from the entire syllabus. This was deliberately done by this committee to continue the process of de-nationalizing the people of this country, a process started by Macaulay in 1835. The present Report of the Education Commission seems to be

a mere continuation of the same de-nationalizing process, and I take strong exception to it.

14. It is from the same standpoint that I take strong exception to paras 4.48 and 8.49, wherein every has been made to discourage the study of Sanskrit. It was the late Prime Minister Shri Lal Bahadur Shastri, who has once said that every State in India should have a Sanskrit University. It seems to me that the assertion of the Education Commission that it cannot support the idea of Sanskrit Universities, was incorporate in this Report to counteract this absolutely essential suggestion of Shri Shastri. As we all know, Sanskrit is the treasure-house of vast knowledge in every field of knowledge, including the sciences. The people of this country cannot become first-rate scientists until and unless they have a proper grounding in ancient Indian sciences in Sanskrit, whether it be in the field of mathematics, or in astronomy and astrology, in medicine or surgery, whether in philosophy or logic, or any other science. I take strong exception to Sanskrit being included along with other classical languages, which do not deal with sciences as such, and which have always been foreign to India. I feel that Sanskrit being the mother of all Indian languages, and of all science, its study should be made compulsory for all students from the very beginning, so that when the students grow up they might be masters of this language and it might be easy for them to grasp the modern scientific discoveries and inventions, as they are merely the continuation of the knowledge about our sciences contained in Sanskrit. In this respect also, Macaulay's mischief must be undone.

15. In regard to the language policy, I feel, a very wrong approach has been made. The fact is that a child's mind is fit to grasp several languages, while as he grows up his capacity to learn new languages grows less and less. But as regards other subjects, the child increases his capacity to learn them as he advances in age. It is therefore very wrong to say that the child not be burdened with three or four language does not need mental development of a high calibre, and learning of the other subjects does need more of mental development, the excessive emphasis laid on the teaching of science and discouraging the study of several languages to children in the initial stages, is basically wrong. In the primary classes, I feel languages in the form of short stories and the elementary principles of arithmetic and general knowledge alone should be prescribed. And, as he advances in age, less and less of languages and more and more of scientific subjects should be taught. It is an this light that I consider the teaching of Sanskrit alongwith Hindi as the national language, the regional language and a third Indian language as necessary for all students in the beginning, and Sanskrit, Hindi and the regional

language must continue all through the educational career. In this age of democracy, in which a bare majority of 51 per cent can foist its view and decisions on everybody, including the substantial minority of 49 per cent, the undue importance attached to English must not be permitted to hold up the progress of the country, which can be made only through the national language and the regional languages, simply because of a small minority of 7.4 per cent people from Tamilnadu. The assertion that English is a window to learning in the West is also not quite true. In the whole of Europe, English today is as foreign to the people there, as is Hindi. Except for England, Canada, Australia, South Africa, the U.S.A. and the countries which are under British domination till recently, English is not understood anywhere in the rest of the world. The four languages of Europe today are from West to East, Spanish, French, German and Russian. If a real window to the knowledge of the West is needed by our students, they must learn any of these Continental languages rather than English. To say that we cannot make any scientific advance without a knowledge of English is also wrong. The Russians who today are at the top in science, learnt all their sciences through Russian, although 40 years back they were the most backward and science in modern terms was not even known to them. China also learnt all its sciences through the Chinese, through the Japanese language. Even small countries in Europe, like Bulgaria, learn all their sciences through their own Bulgarian language. Why then is it necessary for the people of this country to learn a foreign language to become masters in various arts and sciences? The problem is merely one of translating scientific books in the national languages. If Maharaja Ranbir Singh of Jammu and Kashmir could get hundreds of books in Sanskrit translated in Hindi with the help of a hundred Pandits employed in the Dharmarth Trust, and if Osman Ali Khan, the late Nizam of Hyderabad, could get all textbooks from primary classes up to the post-graduate classes translated in Urdu for his Osmania University there is no reason why, our Government of India, with all resources at its command, cannot get all important scientific books in the different languages of the world translated in India spends thousands of crores of rupees on different activities, there is no reason why it should not devote a few crores on the work of translation alone, so that the nation might make maximum scientific advance in the shortest possible time through our own languages. I therefore strongly oppose the continuance of English as an associate official language along with Hindi because so long as English remains as the medium of instruction in India, in any shape orform, Macaulay's mischief of keeping Indians mental slaves of the English cannot be undone. I take strong exception to the Education Commission having gone out of its way to make changes in the three language formula, which was so

successfully being worked out all over the country. Bringing in the mother tongue as an alternative to the regional language, and proposing English as an alternative to Hindi as the link language, is the worst mischief that this Education Commission has proposed in the course of this Report, and I condemn it with all the strength at my command. I want the old three language formula to continue in practice, in which Hindi and the regional language must remain the medium of instruction throughout. The proposal to teach, up to the university stage, only in the regional language, as envisaged in the two language formula, would lead to the disintegration of the country into so many separate water-tight compartments, thereby Balkanising it completely as the compatriots of Macaulay and other enemies of our country would like to see. I therefore entirely disagree with it and strongly oppose its adoption.

16. I feel it necessary to draw attention to another matter of importance and that is in regard to the education of girls in India. All over Europe today, there is a general tendency to reduce co-education in the higher classes, as it demoralizes the students. As against this, in India, efforts are going on in the reverse direction. It is really ludicrous that while we find primary schools separate for boys and girls, more and more secondary and higher secondary educational institutions are being converted into co-educations, while in the universities co-education is being made universal, at an age which is most dangerous in one's life. The position should be that while co-education should be confined to children up to the age of 10 or so, all education above this age must be kept separate for boys and girls. I am really very sorry that the Education Commission has not paid proper attention to this aspect of education, and I want this to be incorporated in any Statement on National Policy on Education that might be prepared for the country. We must not forget that the very basis of our society in India is *Brahmacharya,* and it is on this account that our country has so far maintained its high position in the world of knowledge and social behaviour. Co-education is destroying the very foundation of our society, and I consider it our duty to restore our social behaviour to the greatness that has sustained us all through the ages. In this connection it is also very necessary that the aim of education in India should be to train our people for the future lives they have to live. As such, the courses of secondary, higher secondary and university studies for women should be confined to subjects they have to deal with all through their lives, like doctors, teachers, fine arts and household work of various kinds only. At the same time, boys should be discouraged from taking up fine arts as their subjects of study. They should confine themselves mostly to many pursuits.

17. I regret that the Education Commission has not touched on the cinema and television is the most suitable media for education. In almost all countries of the world, these media are fully utilized for this purpose. Instead of these, our young men and women are being corrupted through most demoralizing films. I demand that a total ban be imposed on "For Adults Only" films, and also to see that much of sex is not allowed to be included in the Indian films, with most obnoxious songs, as is happening today.

18. I also take strong exception to wrong name of culture being given to the lowest arts, like dancing and singing, in the Education Commission's Report. These might be part of culture for the people of the West, who have not as yet reached the higher conception of philosophical living, but for the people of India, only the highest forms of philosophical discourses, etc. have been recognized as culture. By encouraging these so called arts, a concerted effort is being made to degenerate the people as a whole. I would like to see *Yoga* and *Asanas* being encouraged on a mass scale, so that the people of the country might become healthy and strong, as a healthy body is necessary for healthy mind. I am really very sorry that the education commission has not seen fit to go into this question at all, except what concerns drill and the N.C.C. In this connection also, I cannot appreciate our girls being given any training in N.C.C. or the like. There is no shortage of man-power in India, like most countries of Europe. As such, it is not only wrong but definitely harmful to cry to prepare our girls in form of military training, except nursing, first-aid and tending the sick and wounded. I hope the day will never come in India when our women would have to go to fight in the battlefield, due to lack of men to defend the country's honour. As such, all this training in N.C.C. imparted to girls is a complete national waste. This money can very well be utilized in training all our youngmen militarily.

19. In some places in the Statement on National Policy in Education, there is a reference to the teaching of History of Freedom Movement in India. This history should cover the entire period of the last 1000 years of our struggle for freedom and not only the last 200 years.

20. I have every hope that while considering the Report of the Education Commission, the above comments of mine will also be taken into consideration, and proper decisions taken thereon.

महायोगी गोरखनाथ के संस्कृत ग्रन्थ

महन्त अवेद्यनाथ

महायोगी गोरखनाथ साक्षात् योगेश्वर भगवान् शिव के स्वरुप शिवगोरक्ष हैं। वे अमरकाय स्वसंवेद्य अलख निरञ्जन द्वैताद्वैतविवर्जित परमात्म तत्त्व में प्रतिष्ठित चारों युगों में विद्यमानता की उपाधि से समलंकृत हैं, उनका शिवोपदिष्ट नाथयोगज्ञानामृत त्रिकालोपयोगी होते हुए भी त्रिकालातीत, समय की सीमा में आबद्ध नहीं हैं। यद्यपि भारत की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में उनके उपदेश प्रमुखता से 'गोरखबानी' के रुप में संकलित हैं तथापि संस्कृत भाषा में उनके द्वारा रचित ग्रन्थ उनके चिरकालिक योगोपदेशामृत के युगों-युगों से सुरक्षित वाङ्मय हैं- क्योंकि संस्कृत अमरवाणी है- देववाणी है, किंवा भागवतवाणी है। इस दृष्टि से उनके यथोपलब्ध अद्यतन सुरक्षित ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में 'योगवाणी' के विशेषांक के रूप में 'गोरक्षग्रन्थावली' का प्रकाशन अपने आप में एक महान् यज्ञ है, जिसकी संकल्पपूर्ति में नाथयोगदर्शन सर्वथा सुरक्षित रूप में व्यावहारिक है, जनजीवन के उत्तरोत्तर दिव्यीकरण का सशक्त माध्यम है।

योगबीज-यथोपलब्ध संस्कृत ग्रन्थों के क्रम में यद्यपि 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' के लेखक ब्रिग्स महोदय ने उनकी रचना 'गोरक्षशतक' को विशेष महत्त्व दिया है, तथापित नाथयोग की साधना की दृष्टि से महायोगी गोरखनाथ द्वारा करुणापूर्वक रचित 'योगबीज' की उपयोगिता विचारणीय है। यह शिव-पार्वती के संवाद रूप में योगज्ञानसागर के मन्थन का उपदेशामृतबीज है, उद्गम का सम्भवत: आदि स्रोत है। 'योगबीज' भगवान् गोरक्षनाथ की अनुभूति का योगवाङ्मय है जिसमें भगवती पार्वती को महाज्ञान से सन्तृप्त करने का भगवान् शिव ने पुण्यव्रत निबाहा है। गोरखनाथजी ने अपनी नाथयोगानुभूति का 190 श्लोकों में वर्णन किया है। इसमें नाथसिद्धमत की योगसाधना, हठयोगाभ्यास (योगाग्नि द्वारा पक्व देह-प्राप्ति, पवन-विजय और कुण्डलिनीयोग आदि) का विवेचन किया गया है। इसमें जीवन्मुक्ति, अमरकायत्व तथा कैवल्यपद में प्रतिष्ठित होने का वर्णन किया गया है। 'योगबीज' का स्पष्ट अभिमत है कि न तो योग से श्रेष्ठ कोई पुण्य है, न कोई सुख है, न कोई सूक्ष्म ज्ञान है, न साधना का कोई श्रेष्ठ मार्ग है-

योगात्परतरं पुण्यं योगात्परतरं सुखम्।
योगात्परतरं सूक्ष्मं योगामार्गात्परं न हि।। (योगबीज-87)

सिद्धमत प्रतिपादित योगमार्ग सर्वसिद्धिकर और माया जाल का निकृन्तन करने वाला है। बद्ध

जीवात्मा इस योगज्ञान से कैवल्य में प्रतिष्ठित होते हैं। अनिर्वाच्य स्वसंवेद्य परमपद-स्वात्मप्रकाशरूप है, यह निश्छल, निर्मल, निरामय, सर्वव्यापक, सर्वातीत है। ज्ञानस्वरूप, सर्वभावपदातीत निरञ्जन ही परमात्मा है-

'सर्वभावपदातीतं ज्ञानरूपं निरञ्जनम्।' (योगबीज-13)

'योगबीज' में गोरखनाथजी का कथन है कि योगाग्नि में पका कर योगी अपने शरीर को मृत्यु का ग्रास बनने से बचा लेता है, योग से रहित शरीरधारी का शरीर मृत्यु के वश में हो जाता है। वह सिद्ध देह प्राप्त कर जीते जी मुक्त हो जाता है। योग से श्रेष्ठ मोक्ष प्रदान करने वाला दूसरा मार्ग नहीं है-

'तस्माद् योगात् परतरो नास्ति मार्गस्तु मोक्षदः' (योगबीज-72)

इस ग्रन्थ में कुण्डलिनीसाधना, त्रयबन्ध, जालन्धार, उड्डियान और मूल के अभ्यास का विशद महत्त्वांकन उपलब्ध होता है। प्राणायाम से चित्त के पवन में लीन हो जाने पर बिन्दु (वीर्य) पतित नहीं होता। नाद-श्रवण होता है, सहस्रार से चन्द्रामृत प्रवाहित होता है और योगी इस तरह सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित हो जाता है-

स्वरूपे सच्चिदानन्दे स्थितिमाप्नोति केवलाम्। (योगबीज-142)

वास्तव में योगसिद्ध का आशय यही है कि योगी जीते जी इसी शरीर के दिव्यीकरण से अमरकायत्व द्वारा जीवन्मुक्त होकर सच्चिदानन्दपद में स्थित हो जाता है। जीवात्मा का परमात्मा में यही साक्षात्कार अथवा कैवल्यप्राप्ति है। योग मोक्ष का शास्त्र है, योग सार्वभौम और सर्वमान्य है, सर्वग्राह्य जीवन विज्ञान है, यही 'योगबीज' रचना का प्रतिपाद्य है हमारी यह सुनिश्चित धारणा है कि 'योगबीज' के अध्ययन और उसमें निर्दिष्ट योगाभ्यास के द्वारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वरूप सन्तुलन प्राप्त हो सकता है। योगसिद्धि का सहज उपाय-अभ्यास ही 'योगबीज' का फल है।

गोरक्षशतक- मानवजीन में योग साधना की परमोपयोगिता सहज सिद्ध है। योग ही एक ऐसा निरपेक्ष साधन-मार्ग है, जिसके आश्रय में सर्व सामान्य को जीवन की व्यावहारिकता और अपने सच्चिदानन्दस्वरूप का ज्ञान सुलभ होता है। महायोगी गोरखनाथ ने कैवल्यपद-निरञ्जन के स्वरूप की प्राप्ति अथवा अनुभूति पर विशेष बल दिया तथा पतञ्जलि-प्रवर्तित अथवा अनुशासित अष्टांगयोग में सैद्धान्तिक प्रकाश में की गयी साधना को अपने षडंगयोग के महाज्ञानामृत से सिंचित कर उसे प्रक्रियात्मक रूप प्रदान कर आत्मसाक्षात्कार अथवा स्वरूपसिद्धि की ओर मोड़ दिया। यही शिवगोरक्ष गोरक्षनाथजी के द्वारा प्रतिपादित महायोगज्ञान उनके 'गोरक्षशतक' ग्रन्थ में उपलब्ध होता है। 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' के लेखक ब्रिग्स ने 'गोरक्षशतक' को महायोगी गोरखनाथ की मौलिक कृति कही है और उसकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध और निरापद बतायी है। अपनी उपर्युक्त

पुस्तक के एक अध्याय में उन्होंने रोमन लिपि में सम्पूर्ण 'गोरक्षशतक' टिप्पणी और अंग्रेजी रूपान्तरण सहित प्रकाशित कर उसकी महनीयता अभिव्यक्त की है। इतना ही नहीं, ब्रिग्स ने 'गोरक्षशतक' की रचना के तात्पर्य पर यथाशक्ति विचार किया है। 'गोरक्षशतक' के ही नामान्तर 'ज्ञानशक' और 'ज्ञानप्रकशशतक' है। ऐसा उल्लेख उपर्युक्त सन्दर्भग्रन्थ में उपलब्ध होता है। 'गोरक्षशतक' पर दो टीकाएँ उपलब्ध हैं; एक टीका शंकर की है तो दूसरी मथुरानाथ शुक्ल की है। इस दूसरी टीका का नाम टिप्पण भी है। इसे गोरक्षशास्त्र भी गया गया है। 'गोरक्षशतक' की लक्ष्मीनारायणकृत टीका 'बालप्रबोधिनी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह निर्विवाद-सा है कि 'गोरक्षशतक' योगसाधना की दृष्टि से नाथसम्प्रदाय का मौलिक प्रमाण ग्रन्थ है।

गोरखनाथ जी ने 'गोरक्षशतक' के दो श्लोकों में मंगलाचरण में अपने गुरु स्वानन्दविग्रह (मत्स्येन्द्रनाथ) मीननाथ की वन्दना की है। उन्होंने 'गोरक्षशतक' का प्रवचन योगियों के हित को ध्यान में रखकर किया है। 'गोरक्षशतक' के अध्ययन और तात्त्विक चिन्तन से साधक का मन विषय-भोगों के रसास्वाद से निवृत्त होकर परमात्मा के स्मरण, ध्यान और चिन्तन में तदाकार हो जाता है। इस ग्रन्थ में अजपागायत्री, प्राणायाम, कुण्डलिनीजागरणपूर्वक सहस्रार से द्रवित चन्द्रामृत पान, महामुद्रा, खेचरी मुद्रा, बन्धत्रय-जालन्धर आदि पर प्रकाश डाला गया है। गोरक्षशतक हमारे नाथसम्प्रदाय-सिद्धामृत मार्ग का अत्यन्त प्रामाणिक योगशास्त्र है। यह श्रुति प्रतिपादित है। गोरक्षनाथजी ने इसमें श्रुति कल्पतरुफल के रूप में योग के अभ्यास का उपदेश दिया है। उनका वचन है-

'शमनं भवतापस्य योगं भजत सत्तमाः।' (गोरक्षशतक-6)

गोरक्षशतक में गोरखनाथजी ने आन्तरिक शरी-विज्ञान को जानने पर विशेष बल दिया है। उनका कहना है कि यदि साधक में स्थित त्रयलक्ष्य, पंच आकाश, षोडशाधार, मन और दसों इन्द्रियों का सम्यक् ज्ञान नहीं प्राप्त करता है तो उसके लिए प्राणायाम, मुद्राबन्ध, कुण्डलिनीजागरण, नादोपासना और मन के उन्मनीकरण में सफलता प्राप्त करना स्वप्नमात्र है। 'गोरक्षशतक' में कहा गया है कि चाहे साधक वाह्य शौच आदि की निर्मलता से युक्त हो या न युक्त हो, उसे प्रणव का सदा जप करते रहना चाहिए। इससे वह पाप कर्म से उसी तरह लिप्त नहीं होता, जिस तरह कमलपत्र पानी में रहकर भी जल से लिप्त नहीं होता। ॐकार के विधिपूर्वक जप से मन, चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है और चित्त तदाकार होने पर साधक स्वरूप में स्थित हो जाता है।

'सिद्धसिद्धान्तपद्धति'- परम करुणामय शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथ ने देववाणी संस्कृत में 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' की रचनाकार अलख निरञ्जन के साक्षात्कार का राजपथ प्रस्तुत किया है। इस मौलिक योगवाङ्मय में नाथयोग-शैवयोग के प्रतिपादन के साथ-ही-साथ निगमागमपुराणस्मृतिसम्मत योगाचार, वैराग्य और मोक्ष के सैद्धान्तिक और साधनात्मक पक्षों का समीचीन समन्वय भी बोधगम्य शैली में निरुपित है, जिसका रसास्वादन वे ही कर सकते हैं जो योगविज्ञान-हठयोग विद्या

के द्वारा परामात्म साक्षात्कार की सिद्धि में अनुभवी और निष्णात हैं। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' को हमारे नाथसम्प्रदाय-सिद्धामृत मार्ग में अपूर्व मान्यता प्राप्त है। योगी सम्प्रदाय में ही नहीं, दार्शनिक विद्वानों में भी इस योगग्रन्थ के प्रति यथेष्ट आदर-भाव और श्रद्धा का दर्शन होता है। लगभग दो सौ साल पहले काशी के महान् योगदार्शनिक महामति बलभद्र ने 'सिद्धसिद्धान्तसंग्रह' के रुप में 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' के सारांश का स्वरचित संस्कृत श्लोकों में संग्रह किया था। उनका कथन है-

यत्कारुण्यविलोकनादपि भवेच्चित्तविश्रमः पारदः।
तस्मिन् श्रीकरुणासुधारसनिधौ चेतोऽस्तु मग्नं गुरौ।। (सिद्धसिद्धान्तसंग्रह 5/36)

जिनके कृपामय दृष्टिपात से चित्त शान्त और विषयों में अनासक्त हो जाता है, उन करुणासुधार सनिधि गुरु (गोरखनाथ) में मेरा मन निमग्न हो जाय। गोरखनाथजी महान् योगाचार्य थे। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में उनके वचन उपदेश के रूप में उपलब्ध होते हैं, उन्होंने इस योगग्रन्थ के छः उपदेशों में महायोगाज्ञानामृत का वर्णन किया है। इसमें कहा गया है कि अण्डपिण्ड के रूप का ज्ञान हो जाने पर उसकी आधारशिला पारमार्थिक सत्ता का जीवात्मा साधक को बोध हो जाना सरल होता है। यह निर्विवाद है कि इस विश्व-प्रपञ्च की गत्यात्मकता के मूल कारण के रूप में कोई स्वयंसत्य, स्वयंप्रकाशित सत्ता है, जो हमारी इन्द्रिय, मन, बुद्धि से परे अतीन्द्रिय, अतिमानसिक और अतिबौद्धिक स्तर पर अभिव्यक्त है। गोरखनाथजी ने इस शाश्वत चेतना को परासंवित् कहा है, यही परम सत्ता है, उन्होंने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' के छः उपदेशों में यथाक्रम पिण्डोत्पत्ति, पिण्डविचार, पिण्ड संवित्ति, पिण्डाधार, पिण्डपदसमरसभाव और नित्यावधूतलक्षण आदि का निरूपण कर नित्यनिर्विकार परम सत्ता को ही जीवात्मा-योगसाधक के लिए प्रतिपाद्य स्वीकार कर उसके स्वरुप बोध अथवा अन्तर्गय की पद्धति सुनिश्चित की है। गोरखनाथजी की दृष्टि में परब्रह्म शिव (अलख निरञ्जन, पमात्म तत्त्व) अपरम्पर, परम पद, शून्य, निरञ्जन है। यही परमात्मा है-

'अपरम्परं परमपदं शून्यं निरञ्जनं परमात्मेति'। (सिद्धसिद्धान्तपद्धति 1/17)

गोरखनाथ जी ने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में हठयोग की साधन-प्रक्रिया का मर्म स्पष्ट किया है। हठयोग की साधना वास्तव में प्राणसाधना है। प्राणायाम की सिद्धि से ही यह फलवती होती है। सूर्य-चन्द्र, प्राण-अपान का योग ही हठयोग है।

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोयोगाद् हठयोगो निगद्यते।। (सिद्धसिद्धान्तपद्धति। 1 । 69)

'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में हठयोगतत्त्व का अक्षय भण्डार है। इस ग्रन्थ में यौगिक दृष्टि से पिण्डविचार अन्तर्दर्शन और ध्यान पर आधारित है। हमारा शरीर शिवशक्ति की अभिव्यक्ति का पवित्र माध्यम है। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में गोरखनाथ जी ने सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा अति मार्मिक रूप से अष्टांगयोग का भी वर्णन किया है। योगसिद्ध का स्वरूप अष्टांगयोग की साधना के स्तर पर परमात्म

साक्षात्कार बताया गया है। गोरखनाथजी ने कहा है कि हमारा शरीर भौतिक शरीर मात्र नहीं है, हमारा व्यष्टि शरीर एक आध्यात्मिक तत्त्व में अभिव्यक्त है। इस व्यष्टि शरीर में योगी सकल चराचर जगत् को व्याप्त जान कर पिण्डसंविति होता है। पाँच भौतिक व्यष्टि शरीर में ही व्यावहारिक रूप से अनन्त शाश्वत ब्रह्माण्ड-व्यवस्था के दर्शन किये जा सकते हैं। गोरखनाथजी ने कहा है कुण्डलिनी जागरण के फलस्वरूप योगी आत्मदर्शन करता है, कुण्डलिनी समस्त कार्यों के ऊपर विद्यमान विमर्शरूप विद्या है-

'सा विमर्शरूपिणी योगिनः स्वस्वरूपभवगच्छन्तीति सुप्रसिद्धाः।' (सिद्धसिद्धान्तपद्धति 4115)

यह कुण्डलिनी अधः, मध्य और ऊर्ध्व कही गयी है। इसके यथाक्रम निकुञ्जन, प्रबोध और निपात के परम पद प्राप्त होता है।

गोरखनाथजी ने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में कहा है कि स्वसंवेद्य परमपद की प्राप्ति गुरु की कृपा से होती है-

कथनाच्छक्तिपाताद्वा यद्वा पादावलोकनात्।
प्रसादात्स्वगुरोः सम्यक् प्राप्यते परमं पदम्॥ (सिद्धसिद्धान्तपद्धति 5/65)

गोरखनाथजी ने अन्तिम छठें उपदेश में अवधूत योगी के लक्षण का विशद निरूपण कर सन्यास की वास्तविक गरिमा प्रकाशित की है। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में इसी उपदेश में 'आदेश' शब्द की व्यावहारिकता के परिप्रेक्ष्य में कहा गया है कि आत्मा, परमात्मा और जीवात्मा की अभेदता ही सत्य है, इस सत्य का अनुभव या दर्शन सिद्धामृतमार्ग में 'आदेश' कहलाता है। इसके उच्चारण मात्र से ही त्रयताप-समस्त दुःखों का नाश हो जाता है। शिवगोरक्ष गोरखनाथजी ने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' के रूप में अद्भुत नाथयोगशास्त्र प्रकाशित किया है। इसका रहस्य उनके चरणाश्रय से ही समझ में आ सकता है।

विवेकमार्तण्ड- 'विवेकमार्तण्ड' की रचना कर महायोगी गोरखनाथ ने षडंगयोग अथवा हठयोग की साधन-प्रक्रिया प्रस्तुत कर परब्रह्म अलख निरञ्जन के साक्षात्कार को सहज सुलभ कर दिया। 'गोरक्षशतक' के विषय-प्रतिपादन में जो कमी रह गयी, उसकी पूर्ति 'विवेकमार्तण्ड' में परिलक्षित है। 'विवेकमार्तण्ड' के अनेक अप्रकाशित-प्रकाशित संस्करण उपलब्ध हैं, पर जोधापुराधीश महाराज मानसिंह ने इस रचना की सुरक्षा और उसकी 'योगतोषिणी' टीका की प्रस्तुति में जो अभिरुचि प्रकट की, वह ग्रन्थ की उपादेयता प्रकट करती है। 'योगतोषिणी' टीका भीष्मभट्ट की महान् देन है।

'विवेकमार्तण्ड' की टीका का समापन करते हुए भीष्मभट्ट ने महाराज मानसिंह की सिद्धसिद्धान्त तत्त्वज्ञ और श्रीनाथपदाम्भोजमधुप कहा है और उद्गार प्रकट किया है कि उन्होंने उनकी

अनुज्ञा और कृपा से 'योगतोषिणी' टीका लिखी है। योगतत्त्वज्ञों को इसका संशोधन कर लेना चाहिए। भीष्मभट्ट ने 1876 वि. में इस टीका का समापन किया था। इस टीका के प्रकाश में 'विवेकमार्तण्ड' में महायोगी गोरखनाथ द्वारा वर्णित (नाथ) योगसिद्धान्त और तद्‌गत साधन प्रक्रिया के समझने में बड़ी सुगमता होत है। ग्रन्थ के आरम्भ में महायोगी ने गुरु की कृपामयी शक्ति से जीवात्मा के सच्चिदानन्दायित होने का वर्णन किया है। इसमें षडंगयोग के अभ्यासपूर्वक हठयोगसाधना को प्रधानता दी गयी है। 'विवेकमार्तण्ड' में सात चक्रों का निरूपण किया गया है। पहला आधार चक्र, दूसरा स्वाधिष्ठान, तीसरा मणिपुर, चौथा अनाहत, पाँचवाँ विशुद्ध, छठाँ आज्ञाचक्र और सातवाँ महाचक्र है। वह ब्रह्मरन्ध्ररूप महापथ में स्थित है। शरी में स्थित चक्रों का भेदन बिना गुरु के मार्गदर्शन के नहीं करना चाहिए। जिसकी दृष्टि बिना रूप विषय में स्थित हो जाती है, जिसका प्राण सहज स्थित हो जाता है, बिना किसी आलम्बन के जिसका मन स्थिर होता है, वही योगी है, गुरु है-

'स एच योगी स गुरु स सेव्यः। (विवेकमार्तण्ड-24)

जीवात्मा तक तक संसार-बन्धन में रहता है जब तक वह अनाहत चक्र में ध्यानस्थ होकर परमात्म साक्षात्कार नहीं कर लेता है। गोखनाथजी ने विवेकमार्तण्ड में कहा है कि अजपा गायत्री मोक्ष देती है, इसके संकल्प मात्र से प्राणी पाप से मुक्त हो जाता है-

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।
अस्याः संकल्पमात्रेण नरः पापैर्विमुच्यते॥ (विवेकमार्तण्ड-47)

इसी तरह जालन्धर आदि बन्धों और खेचरी आदि मुद्रा के अभ्यास पर भी युक्तियुक्त प्रकाश डाला गया है। प्रणवजप को भी यथेष्ट महत्त्व दिया गया है। समस्त षडंगयोग की गोरखनाथजी ने संक्षेप में वर्णन कर कहा है कि आसन से रोग, प्राणायाम से पातक, प्रत्याहार से मानसिक विकार का नाश होता है। धारणा से मनोधैर्य, ध्यान से चैतन्य, और समाधि से मोक्ष मिलता है। परब्रह्म शिव-ब्रह्मात्मक तेज का ध्यान कर तत्त्वबोध प्राप्त कर योगी परमकैवल्य में स्थित हो जाता है।-

एतद् ब्रह्मात्मकं तेजः शिवं ज्योतिरनुत्तमम्।
धयात्वा ज्ञात्वा विमुक्तः स्यादिति गोरक्षभाषितम्॥ (विवेकमार्तण्ड-183)

समाधि में लीन योगी आदि-अन्त से रहित, आलम्बनशून्य, प्रपञ्चातीत, परमात्मस्वरूप, निर्विकार, निराकार, अचल, मन-बुद्धि मे अगोचर हो जाता है-

तन्मयत्वं ब्रजेन्नित्यं योगी लीनः परेपदे। (विवेकमार्तण्ड-183)

महायोगी गोरखनाथ ने अपना प्रकाण्ड योगानुभव व्यक्त करते हुए कहा है कि यह विवेकमार्तण्ड ग्रन्थ परमार्थस्वरूप है, इसके अध्ययन से योगी को भवभयरूपी दावाग्नि से छुटकारा मिलता है। यह ग्रन्थ स्वर्ग का सोपान है। इस ग्रन्थ का अध्ययन करने वाला इस संसार में मोक्षलक्ष्मी,

मुक्तिसिद्धि की प्राप्ति करता है।

अमारौघप्रबोध- शिव गोरक्ष महायोगी गोरखनाथकृत संस्कृत योग-ग्रन्थों में 'अमारौघप्रबोध' नाथयोगसाधना की सिद्धि की तात्त्विक और प्रक्रियात्मक पृष्ठभूमि पर नाथयोगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में एक असामान्य कृति है जिसमें अलख निरञ्जन स्वसंवेद्य परमात्मा के साक्षात्कार का युक्तियुक्त विवेचन प्रतिपादित है। यद्यपि गोरखनाथजी ने अपने योगमहाज्ञानामृत की पृष्ठभूमि पर इसे 'राजयोग अभिधानक' कह कर लय, मन्त्र, हठ, राजयोग को औपनिषद चतुर्विध यौगिक परम्परा का संकेत किया है तथापित सामान्य रीति से प्रचलित पातञ्जल आदि योगदर्शन में प्रतिपादित कैवल्यप्रधान राजयोग से यह अमारौघप्रबोधपरक राजयोग कहीं विलक्षण और रहस्यात्मक है, क्योंकि यह शिवशक्ति के सामरस्य के अमृतत्व में योगसाधक, नाथयोगसाधना में सम्पूर्ण निष्णात सिद्धपुरुष की स्वरूपावस्थिति-स्वरूपात्मक सम्प्रतिष्ठा का अक्षर-अमृत योगवाङ्मय है। गोरक्षनाथजी का 'अमारौघप्रबोध' में योगशासन-उपदेशामृत है-

एक एवामरौधो हि राजयोगोऽभिधानकः।
लयादिधिः समायुक्तश्चतुर्थो दीयते कथम्॥ (अमारौघप्रबोध-17)

'अमारौघप्रबोध' 74 श्लोकों का योगग्रन्थ है। इसका संग्रह और सम्पादन कर डॉ. कल्याणी मलिक ने नाथयोगसम्प्रदाय की ज्ञानवृद्धि में महत्वपूर्ण योग दिया है। यह पूना ओरियण्टल बुक हाउस, पूना से प्रकाशित उनकी महनीयकृति सिद्धसिद्धान्तपद्धति (सिद्धसिद्धान्तपद्धति एण्ड अदर वर्क्स दि नाथयोगीज) में संगृहीत है।

इस प्रस्तुति में वर्णित लय, मन्त्र, हठयोगादिपरक राजयोग की सिद्धि में इन तीनों योगपद्धतियों का विवेचन करते हुए हठयोग की साधनापूर्वक राजयोग की महनीयता पर यद्यपि यथेष्ट प्रकाश डाला गया है तथापि यह कहना सर्वथा उचित है कि हठयोग बाह्य और अन्तर साधना की दृष्टि से दो रूपों में हमारे नाथ सम्प्रदाय में गृहीत है। बाह्य साधना प्राण अपाल के ऐक्यपूर्वक योगोग्नि प्रज्वलित कर मूलाधार में प्राप्त कुण्डलिनी को समग्ररूप से षटचक्रादि भेदन द्वारा सहस्रार में शिव से समरसित करना है और दूसरा रूप एकमात्र स्वसंवेद्य अलख निरञ्जन परमात्मा में निरुत्थान-सहज स्वरूपावस्थितिपूर्वक तल्लीनता-स्वात्मप्रतिष्ठा ही हठयोग की महत्तम सिद्धि के रूप में नाथयोगप्रतिपादित राजयोगपरक सहज स्वरूपबोध में पर्यवसित है। यद्यपि अमृतपान, नादसन्धान शिवशक्ति सामरस्य आदि हठयोग के व्यवहृत प्रक्रियात्मक रूप हैं तथापि स्वसंवेद्य अलख निरञ्जन परमेश्वर में सम्पूर्ण आत्मलय ही हठयोग की परम-चरम सिद्धि है जो पार्वती के प्रति क्षीरसागर-परिसर में शिव द्वारा सम्बोधित महायोगज्ञानामृत की सहज योगसिद्धि के रूप में चरम परिणति है। वास्तव में प्राण अपान के ऐक्य द्वारा हठयोग की साधना में कुण्डलिनीजागरण आदि की सिद्धि तथा तद्गत शिव से सामरस्य भी हठयोग की सिद्धि नहीं है, यह तो बिन्दुरूप शिव, रजरूप शक्ति, योगभाषा में चन्द्ररूप बिन्दु और

सूर्यरूप रज का सामरस्य ही नाथयोगप्रतिपादित राजयोग में हठयोग की भूमिका है जिसमें विहार कर आत्मयोगी परमात्मयोगी, अलख निरञ्जन हो जाता है। यही अमरौघप्रबोध का प्रतिपाद्य विषय है। महायोगी शिवगोरक्ष गोरखनाथ ने स्पष्ट किया है-

बिन्दुः शिवो रजः शक्तिश्चन्द्रो बिन्दु रजो रविः।
अनयोः संगमादेव प्राप्यते परमं पदम्।। (गोरक्षपद्धति 1/72)

हमारे नाथयोग में परमपद की प्राप्ति-गुरुकृपैकसाध्य अलख निरञ्जन तत्त्वसाक्षात्कार ही योगसाम्राज्य की सम्पूर्ण समृद्धि है, अप्रतिमसिद्धि है, जिसका शास्त्रीय और व्यावहारिक, सैद्धान्तिक और सहज सवाधनाथमक योगानुशासन अमरौघप्रबोध की रचना का परम लक्ष्य है।

अमनस्कयोग- शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथजी ने अपने सिद्धमत में साधना की सिद्धि की पृष्ठभूमि में मन की अमनस्कता-उन्मनीकरण पर अत्यधिक बल दिया है। इस उन्मनी अवस्था की कैवल्यस्वरुपिणी ज्योति अथवा अलख निरञ्जन के साक्षात्कार के रहस्य की अनुभूति पिण्ड में सामरस्य सिद्धान्त के स्तर पर की है। उनकी विज्ञप्ति है कि शून्य, निरञ्जन, परमपद ही परम शिव-अलख निरञ्जन परमात्मा है। इस परमपद की प्रतिष्ठा मन की उन्मनी स्थिति में ही है। यही अमनस्क योगसाधना का परम निगूढ़ रहस्य है। प्राणिमात्र पर अहैतुकी कृपा करने के लिए उन्हें कायिक, वाचिक और मानसिक अन्धकार से बाहर निकालने, परमात्मस्वरूप में प्रतिष्ठित कर भवसागर से पार उतारने के लिए गुरु गोरखनाथजी ने शाश्वत सनातन, प्राणसंजीवनी के रूप में महाज्ञान स्वरूप योगामृत का प्रकाशन किया। इस परमात्म ज्ञान में मन की विलीनता ही अमनस्क योग की सिद्धि का स्तर है। उन्होंने इस अमनस्क योगविद्या को ही अमृतत्व की प्रतिपादिका, सनातन अक्षय और मायातीत कहा है। उनकी विज्ञप्ति है-

अमृतोद्दीपनी विद्या निरपाया निरञ्जना।
अमनस्का कलाकापि जयत्यानन्ददायिनी।। (अमनस्कयोग 2 । 29)

अपनी 'अमनस्कयोग' रचना में गोरखनाथजी ने वामदेव और शिव के योगपरक संवाद के रूप में अमनस्कतत्त्व पर प्रकाश डाला है। शिव ने वामदेव की जिज्ञासा के समाधान रूप में तारकयोग के रहस्य, योगी गुरु के लक्षण और महत्त्व अथवा गुरुत्व, योगसाधन के स्थान, योगासन, क्रियायोग आदि का प्रतिपादन करते हुए मन के निरञ्जन परमात्म तत्त्व में विलीनीकरण अथवा लयसाधन का मर्म अत्यन्त सरल, सुबोध भाषा में समझाया है। 'अमनस्कयोग' के दो खण्ड हैं। पहले खण्ड में साधना के स्तर पर बाह्याडम्बर और व्यर्थ की बाह्य साधना के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टि को अपनाया गया है। आसन, बन्ध, मुद्रा आदि में श्रम को समय का अपव्यय कहा गया है, अज्ञान कहा गया है। षट्चक्रों के वेधनस्वरूप उनमें ध्यान-क्रिया को चित्त का विभ्रमभाव कहा गया है। योगसाधना से प्राप्त अष्टसिद्धियों को परमात्मतत्त्व के साक्षात्कार के मार्ग में श्रेयस्कर बताया गया है। प्राण में मन के और

मन में प्राण के लय के द्वारा अजरत्व और अमरत्व को योगाभ्यास का श्रेय कहा गया है। दूसरे खण्ड में तारकयोग और अमनस्कयोग में भेद का निरूपण उपलब्ध होता है। इस अमनस्क खण्ड में शाम्भवी मुद्रा के रहस्य और शम्भवयोग तथा मन के सम्पूर्ण भय अथवा अमनस्क विद्या के स्वरूप का विवेचन किया गया है। अमनस्कविद्या वास्तव में योग की महाविद्या है।

यह अच्छी तरह समझ लेने की बात है कि हठयोग में प्राण-अपान के संगम पर मनोबल विहित कहा गया है पर 'अमनस्कयोग' के धरातल पर मन का सम्पूर्ण सहज उन्मनीकरण ही राजयोगसिद्धि की परम अथवा अन्तिम अवस्था है। यह अमनस्क सिद्धान्त ही द्वैताद्वैतविलक्षण योगदर्शन का, निरुपाधि ब्रह्म साधन का अथवा अवाच्य निरञ्जन परमात्मा के साक्षात्कार का प्रकाशस्तम्भ है। इस अमनस्कविज्ञान से परमतत्त्व का निर्वचन सम्भव है।

महायोगी गोरखनाथ ने 'अमनस्कयोग' के अमनस्क खण्ड में इस बात की पुष्टि की है कि योगी को किसी भी विषयवस्तु का चिन्तन न करते हुए सहज स्वरूप में, निरञ्जन परम शून्य तत्त्व में समाहित रहना चाहिए। उसे वाणी, मन और शरीर में लेशमात्र भी संक्षोभ का अनुभव नहीं करना चाहिए। जब तक संक्षोभ है, चिन्तन और संकल्प की कल्पना है, तब तक अमनस्क स्थिति की प्राप्ति नहीं हो सकती और न ही तत्त्वसाक्षात्कार, स्वरूपावस्थान ही सम्भव है-

वाङमन् कार्यसंक्षोभं प्रयत्नेन विवर्जयेत्।
शिलाचिमिवात्मानं सुस्थिरं धारयेत् तदा।
यावत्प्रयत्नलेशोऽस्ति यावत् संकल्पकामना।
अहं त्वमिति सम्प्राप्तिस्तावत्तत्त्वस्य का कथा।। (अमनस्कयोग 2 । 57-58)

तारकयोग में तो मन साधना में सहायक है पर उत्तरयोग अथवा अमनस्क साधन में मन की स्थिति उन्मनी हो जाती है। मन तत्त्वाकार होकर सदा के लिए महालयस्थ हो जाता है।

महायोगी गोरखनाथ ने अमनस्कयोग की सिद्धि के स्वरूप का प्रकाशन किया है कि जिस तरह नमक पानी में घुल-मिल कर जल हो जाता है, उसी तरह मन ब्रह्म के सम्पर्क से ब्रह्ममय हो जाता है, ब्रह्माकार हो जाता है। ब्रह्ममय होकर निर्वाणपद में प्रतिष्ठित हो जाता है-

लवणं तोयसंस्पर्शाद् यथा तोयसमं भवेत्।
मनोऽपि ब्रह्मसंस्पर्शात्तथा ब्रह्ममयं भवेत।। (अमनस्कयोग 1/43)

तारकयोग और अमनस्कयोग, दोनों की ही सिद्धि में गुरुकृपा की सापेक्षता अनिवार्य है। क्यों तारकयोग के उपरान्त सम्पूर्ण उन्मनीकरण में साधक पर गुरु की करुणादृष्टि का पात जो जाए तो वह साधक परमपद में निःसंशय प्रतिष्ठित हो जाता है। ब्रह्म में मन का उन्मनीकरण अथवा महालय ही योग की यथार्थ सिद्धि है। परमात्मपद में मन की तल्लीनता गुरु के सदुपदेश तथा कृपामय

दृष्टिपात से ही सम्भव होती है।

तारकयोग की विशद और अनुभूतिपूर्ण व्याख्या गोरखनाथजी ने अमनस्कयोग की रचना में आरम्भ के ही श्लोकों में कर दी है। मत व्यक्त किया है कि साधक मन्त्रयोग की साधना में लगे रहते हैं, कई ध्यानसिद्धि के मोह में पड़े रहते हैं, कई जाप करते हैं, तो आगम-निगम में कई उलझे रहते हैं, तारकयोग जानते ही नहीं है, यह तारकयोग सर्वमंगलकारी है, जब तक सुयोग्य शिष्य न प्राप्त हो जाए तक तक गुरु इस योग का उपदेश दें ही नहीं। यह तारकोग सब योगों में परमोत्तम है, इसका पूर्व भाग तारकयोग कहा जाता है और अपर भाग अमनस्कयोग कहा जाता है। मन से युक्त योगस्वरूप तो तारक है और मन से अतीत जो योगस्वरूप है वह अमनस्क है। तारों (आँख की पुतलियाँ) की ज्योति में लगार कर भौंहों को कुछ ऊँची करें, बढ़ा लें। यह पूर्ण (तारक) योग का मार्ग क्षण भर में उन्मनी भाव पैदा कर देता है-

पूर्वयोगस्य मार्गोऽयमुन्मनीकारकः क्षणात्। (अमनस्कयोग 1। 8)

अमनस्कयोग की साधना के लिए योगसाधक को सभी तरह की चिन्ताओं से रहित होकर एकान्त स्थान में सम आसन पर कुछ पीछे की ओर झुक कर स्थिर दृष्टिपूर्वक बैठना चाहिए। इससे मन स्थिर होता है, वायु, वाणी, देह और दृष्टि में स्थितरता आती है। शरीर में कोमलता आती है। साधक का मन परम तत्व का चिन्तन करते-करते तत्त्वाकार हो जाता है। अमनस्कयोग गुरुकृपैकसाध्य है। गोरखनाथ जी का कथन है कि 'अमनस्कयोग' रचना में जो योगी समस्त चिन्ताओं को विवर्जित कर देता है और मन से कुछ नहीं सोचता है, उसे तत्त्व का साक्षात्कार होता है, तत्त्व के सम्मुख होने पर अमनस्कता का उदय होता है। इसमें चित्तदि का विलय हो जाता है, चित्त के विलय से पवन का लय स्थापित होता है, मन-पवन के लय से इन्द्रियार्थ का त्याग हो जाता है। सर्व सम की अवस्था आती है। सर्वसमत्व का उदय होने पर योग का कार्य व्यापार समाप्त हो जाता है। इसके बाद परब्रह्म में स्वरूपभूतयोगी लय को प्राप्त होता है, ऐसे होने पर सुख-दुःख, शीत-ऊष्ण आदि द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं। जिस तरह वायु शून्य में दीप निश्छल हो जाता है, उसी प्रकार जगत् व्यापार से मुक्त योगी लय को प्राप्त होता है-

निर्वातस्थापितो दीपो भासते निश्छलो यथा।
जगद् व्यापारनिर्मुक्तस्तथा योगी लयं गतः॥ (अमनस्कयोग 1/40)

इस लयावस्था में योगी मन से अतीत हो जाता है। यह परम शून्यावस्था है, इसमें तत्व स्वतः प्रकाशित हो उठता है-

न किञ्चिच्चिन्तनादेव स्वं तत्वं प्रकाशते। (अमनस्कयोग 2 । 55)

यह चराचर जगत् मन का दृश्य है, मन का उन्मनी भाव होने पर अद्वैत अभिव्यक्त हो जाता

है। चित्त के अचल होने पर ही मोक्ष प्राप्त होता है।

चित्ते चलति संसारोऽचले मोक्षः प्रजायते। (अमनस्कयोग 2 । 93)

अमनस्कयोग की साधना के लिए योगी को मन पर स्वामित्व स्थापित करना बड़ा ही आवश्यक है। इसका अभाव होने पर मन बहुत विघ्नकारी सिद्ध हो सकता है। 'अमनस्कयोग' के रचयिता महायोगी गोरखनाथजी ने एक बड़े महत्त्व की बात कही है कि जिस तर फूल से फल होने पर फूल का स्वतः लोप हो जाता है, उसी तरह देह में जब तत्त्व प्रकाशित होता है, ब्रह्मस्वरूप की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा हो उठती है, तब देहातीतता की स्थिति प्रगट होती है-

पुष्पात् प्रकाशते यद्वत् फलं पुष्पविघातकम।
देहात्प्रकाशते तत्त्वं तत्त्वं देहविनाशकम्॥
फलं प्रकाशकं पुष्पं फलं पुष्पादिघातकम्॥
देहात्प्रकाशते तत्त्वं तत्त्वं देहविनाशकम्॥ (अमनस्कयोग 2 । 17-18)

अमनस्क साधना की यह सिद्धि है कि एकमात्र तत्त्व-परम तत्त्व ही शेष रह जाय। यह 'अमनस्कयोग' सद्यः प्रत्ययकारक-तत्त्वज्ञान प्रदान करने वाला है।

गोरक्षपद्धति- 'गोरक्षपद्धति' भगवान् शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथ के योगमहाज्ञानरूप उपदेशामृत का पर्याय है। 'गोरक्षपद्धति' की रचना गोरखनाथजी ने योगसाधकों के हित को ध्यान में रखकर की थी। इसमें वर्णितयोग ज्ञान के बोधमात्र से जीवनयुक्ति अथवा कैवल्य की प्राप्ति होती है। यह सहज सिद्ध है कि 'गोरक्षपद्धति' में कैवल्यप्राप्ति अथवा नाथयोग की भाषा में स्वसंवेद्य परमतत्व के साक्षात्कार का उपाय वर्णित है। 'गोरक्षपद्धति' के अध्ययन और योगाभ्यास से साधक का मन परम तत्त्व में तन्मय हो जाता है। यही नाथयोग साधना का महत्तम फल स्वरूपावस्थान है।

एतद् विमुक्तिसोपानमेतत्कालस्य वञ्चनम्।
यद् व्यावृत्तमनो भोगादासक्तं परमात्मनि॥ (गोरक्षपद्धति 1 । 5)

उन्होंने कहा आधिदैविक, आधिभौतिक, आदिदैहिक त्रयताप का शासन चित्तविश्रान्ति से होता है। चित्तविश्रान्ति ही निरुत्थानदशा की प्राप्तिपूर्वक योग की महती सिद्धि है।

'गोरक्षपद्धति' में यम-नियम-व्यतिरिक्त आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि-षडंगयोग का प्रतिपादन किया गया है। हठयोग साधना की पूर्णता में षडंगयोगाभ्यास एक महत्तम विशिष्ट क्रम है। इन अंगों पर 'गोरक्षपद्धति' में विशद विचार किया गया है। उसके बाद षट्चक्रनिरुपण, षोडशाधार, अन्तर्बाह्य द्विलक्ष्य, पंच व्योम, मन तथा शरीर के नवद्वारों के सम्बन्ध में सांगोपांग वर्णन मिलता है। वे योगी योगसाधना में सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकते हैं जो अपने देह में

स्थित इन अंगों से परिचित नहीं हैं, इनकी जानकारी के अभाव में मुद्रा, बन्ध, अमृतपान, कुण्डलिनीजागरण, तात्त्विक शिवसामरस्य आदि की चेष्टा तथा साधना अनुपयोगी कही जाएगी।

गोरखनाथजी ने 'गोरक्षपद्धति' में चक्रभेदन का निरूपण करते हुए कहा है कि मूलाधार चक्र की कर्णिका में तप्त स्वर्णवर्ण और विद्युल्लेखा के समान अग्निमय त्रिकोणाकार योनिस्थान में इस अनन्त विश्वतोमुख परम ज्योति का दर्शन कर योगी समाधि में स्थित रहकर आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

यत्समाधौ परं ज्योतिरनन्तं विश्तोमुखम्।
तस्मिन् दृष्टे महायोगे यातायातन्नविद्यते।। (गोरक्षपद्धति 1 । 21)

इसी प्रकार स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा चक्रों की भेदनपद्धति पर यथेष्ट प्रकाश डालते हुए कुण्डलिनी के सहस्रार में प्रवेश कर शिव में समर होने का वर्णन उपलब्ध होता है। गोरक्षपद्धति में यह कुण्डलिनी ज्ञानियों के लिए (योगियों के लिए) मोक्षदायिनी और अज्ञानियों के लिए बन्धनकारिणी कही गयी है-

कन्दोर्ध्वकुण्डलीशक्ति शुभमोक्षप्रदायिनी।
बन्धानाय च मूढ़ानां यस्तां वेद स वेदवित्।। (गोरक्षपद्धति 1 । 56)

'गोरक्षपद्धति' में प्राणायाम-प्राणनिरोध पर विशेष बल दिया गया है। प्राण के संयमित होने से ही योगी की साधना में सिद्धि मिलती है। प्राणसंयम ही अमृतपान, कुण्डलिनी जागरण तथा जीवन्मुक्तिप्राप्ति का अत्यन्त वरद अमोघ उपाय है-

चलेवाते चलो विग्दुर्निश्चले निश्चलो भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततोवायुं निरोधयेत्।। (गोरक्षपद्धति 1 । 90)

प्राण और बिन्दु के निश्छल होने पर योगी योगसाधन में स्थिरता प्राप्त करता है, इसलिए प्राणायाम का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

'गोरक्षपद्धति' दो सौ श्लोकों में प्रथम शतक और द्वितीय शतक के रूप में पूर्ण है। दूसरे शतक में प्राणायामादि यौगिक क्रियाओं की अभ्यासविधि और सार्थकता का निरूपण किया गया है। इसमें षट्कर्म की उपादेयता पर भी बल दिया गया है। धौति, नेति, वस्ति, कपालभाति, शंखप्रक्षालन आदि के द्वारा शुद्धि और प्राणवाहिनी नाड़ियों की निर्मलता-निर्दोषिता प्रतिपादित है। गोरक्षपद्धति में महायोगी गोरखनाथजी ने दूसरे शतक के दो श्लोकों में षडंगयोग की साधना का सिंहावलोकन किया है कि आसनों के अभ्यास से रोग, प्राणायाम से पातक, प्रत्याहार से मानसिक विकार नष्ट होते हैं। धारणा के अभ्यास से प्रति धैर्य-सुदृढ़ता और विश्वास तथा ध्यान से चैतन्यस्वरूप और समाधि से मोक्ष की प्राप्ति सहज-सुलभ हो जाती है-

आसनेनरुजोहन्ति प्राणायामेन पातकम्।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुंचति।।
धारणाभिमतं धैर्यंध्यानाच्चैतन्यमद्भुतम्।
समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वा कर्म शुभाशुभम्।। (गोरक्षपद्धति 2 । 11-12)

'गोरक्षपद्धति' में ध्यान के अभ्यास को योगसिद्धि में बड़ा सहायक माना गया है। कहा गया है कि एकान्त स्थान में बैठ कर सुखपूर्वक पद्मासन या स्वस्तिकासन लगाकर शरीर को एक सीध में स्थित कर कुण्डलिनी सहित ध्येय के स्मरण और चिन्तन में लगकर ध्यान करने से योगसाधक समस्त पापों के फल से छुटकारा पाकर परमानन्दस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। हृदयकमल में परमात्मज्योति का ध्यान कर योगी ब्रह्ममय हो जाता है।

नासाग्रदृष्टिसत्मानं ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत्।। (गोरक्षपद्धति ।।2।। 68)

महायोगी गोरखनाथजी का कथन है कि आज्ञा चक्र और सहस्रार में परम शिव ज्योति का ध्यान करने पर योगसाधक परमपद प्राप्त कर संसार के बन्धन से छुटकारा पा जाता है-

एषु ब्रह्मात्मकं तेजः शिवज्योतिरनुत्तमम्।
ध्यात्वा ज्ञात्वाविमुक्तः स्वादिति गोरक्षमाषितम्।। (गोरक्षपद्धति 2 । 77)

'गोरक्षपद्धति' में गोरखनाथजी का निर्देश है कि योगशास्त्र का नित्य अध्ययन कर योगसाधना में निष्णात होकर योगी परब्रह्मस्वरूप प्राप्त कर लेता है। अतः ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए साधन तत्पर होना चाहिए।

अमरौधशासन- 'अमरौधशासन' नाथसिद्धशिरोमणि शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथ की संस्कृत रचनाओं में नाथयोग-प्रतिपादित स्वसंवेद्य द्वैताद्वैत विलक्षण तत्त्व-साक्षात्कार के धरातल पर एक दुर्लभ कृति है, जिसमें कण्ठ चक्र तथा उससे ऊर्ध्वस्थ अनेक तालु चक्र, आज्ञा चक्र तथा सहस्रार चक्र और आकाश चक्र में कुण्डलिनीजागृतिपूर्वक अमृतपान के द्वारा राजयोग की सिद्धि का मार्ग शासित अथवा निर्दिष्ट किया गया है। 'अमरौधशासन' में प्रारम्भ में वर्णित इस प्रक्रिया को सारणा, कर्मान्तर सारणा, शंखिनी सारणा, प्रतिसारणा और महासारणा आदि मुद्राओं के षड्ध्वगा-छः प्रकार की प्रक्रियाओं अथवा साधनविधियों में निरूपित किया गया है और विस्तारपूर्वक हठयोग और राजयोग के समन्वय के माध्यम से गोरखनाथजी ने निरुत्थानपूर्वक स्वरूपावस्थान-परम पद में सुप्रतिष्ठित होने का राजपथ प्रशस्त किया है। अमरौधशासन अमृतपानपूर्वक कुण्डलिनी की जागृति के फलस्वरूप जीवात्म साधक के परमात्मा शिव में सहज सामरस्य का प्रतिपादक है।

जब अनेकविध प्राणसंयम से योगी चन्द्रनाड़ी (इड़ा) और सूर्यनाड़ी (पिंगला) के मार्ग से प्रवाहित प्राणापान को एक कर उसे एक प्राण के रूप में सुषुम्ना में प्रविष्ट करता है तो प्राण के

ऊर्ध्वमुख होने पर कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है और सहस्रार के चन्द्रमण्डल से द्रवित अमृत तालुचक्र में प्रवाहित होने पर उस (अमृत) का पान कर योगी शिवस्वरूप में प्रतिष्ठित होकर अलख निरञ्जन का साक्षात्कार करता है, स्वारूपावस्थान में परम विश्रान्ति का अनुभव करता है। यही विषय अथवा योगसाधन-क्रम ही 'अमरौघशासन' का प्रमुख अथवा अन्यतम प्रतिपाद्य है। 'अमरौघशासन' दो भाग में विवेचित है। पहले अनुक्रम में अमृतपान के द्वारा मुख के अन्तर्गत स्थित कण्ठचक्र, तालुचक्र को सशक्त कर कुण्डलिनी को ऊर्ध्वमुख करने का वर्णन है और दूसरे भाग में सिद्धसिद्धान्त स्वसंवेद्य तत्त्व-साक्षात्कार, स्वरूपावस्थान और नाथयोगप्रतिपादित कैवल्यरूप मोक्ष के स्वरूप का प्रकाशन किया गया है।

प्रारम्भ में ही गोरखनाथजी ने कहा है कि ऊर्ध्वशक्ति के निपात से और अध:शक्ति के संकीर्णन तथा मध्यशक्ति के प्रबोधा से योगसाधक परम सुख के उदय से सफलकाम हो जाता है।

ऊर्ध्वशक्तिनिपाताच्च तथाधः शक्तिकुञ्चनात्।
मध्यशक्तिप्रबोधेन जायते परमं सुखम्॥ (अमरौघशासन)

इसके द्वारा कुण्डलिनीजागृति और अमृतपान के फल के वर्णन में 'अमरौधशासन' में कहा गया है कि यदि मनुष्य (साधक) दीर्घीकृत जिह्वा मन्थन करते हुए अमृत का पान करता है तो दिव्य स्वादयुक्त शीतल, भूख-प्यास को हरने वाले, पापभय का नाश करने वाले, शरीर को स्थिरता प्रदान करने वाले, महामृत्यु रोग का नाश करने वाले अमृतपान से उसका जरामरणचक्र समाप्त हो जाता है, वह जीवन्मुक्ति प्राप्त कर स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

'अमरौधशासन' के दूसरे भाग में नाथयोग-प्रतिपादित मोक्ष के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए गोरखनाथजी ने कहा कि-

'अथ मोक्षपदं कथ्यते-यत्र सहजसमाधिःक्रमेण मनसा मनः समालोक्यते स एव मोक्षः।' 'अमरौधशासन'

अर्थात् 'मोक्षपद का वर्णन किया जाता है- जब सहज समाधि के द्वारा मन-से-मन को ही (प्रज्ञात्मा रूप में) देखा जाता है, उसका साक्षात्कार किया जाता है, तब जो अवस्था होती है, वही मोक्ष है।'

मोक्ष की दशा में जीव (साधक) विषयप्रपंच से पूर्णतया अतीत होकर जीवन्मुक्तिपद की प्राप्ति से योगसिद्ध हो जाता है। इस तरह की सिद्धि ही मोक्ष पद में प्रतिष्ठा का रसास्वादन है, यही स्वसंवेद्य तन्त्र-साक्षात्कार है, जो नाथयोग सम्मत राजयोग के धरातल पर राजयोग की सिद्धि का परम-चरम फल है।

इस अमरौधशासन का प्रकाशन संस्कृत पुस्तक माला रिसर्च डिपार्टमेंट, श्रीनगर, कश्मीर द्वारा हुआ है, यह मुकुन्दरामशास्त्री द्वारा सम्पादित है तथा निर्णयसागर प्रेस मुम्बई से मुद्रित है। इसका एक

संस्करण शैवागम संग्रह खण्ड 3 के अन्तर्गत श्रीकृष्णानन्दसागर के सम्पादन में डी-28/135, वाराणसी तथा माधवानन्द आश्रम, धर्मज (खेड़), गुजरात से प्रकाशित है। यद्यपि इसे शैवागम के अन्तर्गत एक महनीय कृति कहा गया है तथापि यह नाथयोग की गोरखनाथजी द्वारा अप्रतिम देन है, जिसमें नाथयोग-दर्शन प्रतिपादित है।

महार्थमञ्जरी- महार्थतत्त्व महायोगामृत का परम्परा-प्राप्त सनातन सिद्धान्तोपदेश है, जिसके साधन और चिन्तन से स्वसंवेद्य अलख निरञ्जन का साक्षात्काररर अथवा सहज बोध प्राप्त होता है। इस तत्व का उपदेश महाभारत के विशाल युद्ध प्रांगण में पाण्डव सेनानायक अर्जुन के शोकसंविग्न और आत्मा-अनात्मा के स्वरूप-निश्चय में व्यामोहित होने पर योगेश्वर भगवान कृष्ण ने सद्विवेकप्राप्ति और आत्मस्वरूप के लिए प्रदान कर उसे स्वकर्म के प्रति प्रबुद्ध किया था और उस योगपात्र अर्जुन ने भगवान के प्रति वचनवद्धता का ज्ञापन किया था-

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥ (गीता 18 । 73)

'महार्थमञ्जरी' के अनेक प्रकाशित संस्करण मिलते हैं। उनमें त्रिवेन्द्रम संस्कृत ग्रन्थमाला, त्रिवेन्द्रम और कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली श्रीनगर कश्मीर तथा वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित तथा व्रजवल्लभ द्विवेदी द्वारा सम्पादित संस्करण बड़े महत्वपूर्ण हैं।

परम श्रद्धेय महायोगी गोरखनाथजी ने इस महार्थतत्व का स्वात्मबोध और लोकव्यवहार के संयमन के लिए अपने महिमामयी (योगशास्त्र) 'महार्थमञ्जरी' रचना में निरूपण कर स्वविश्रान्ति अथवा सहज स्वरूपावस्थान परम पद का राजपथ प्रशस्त किया। महार्थमञ्जरी में कृष्ण गुरुपद और अर्जुन शिष्यभाव अथवा प्रपत्ति का ही प्रकाशन किया गया है। इसमें स्पष्ट रूप से यह परिलक्षित है कि गुरु के अनुग्रह अथवा कृपा से ही शिष्य का समुद्धार होता है और उसे दुख की आत्यन्ति निवृत्ति होकर स्वसंवेद्य पद की प्राप्ति होती है। यही नाथयोग का सिद्धान्त है, जिसके द्वारा सनातन काल से ही महायोग ज्ञान सुरक्षित और प्रतिष्ठित है।

'महार्थमञ्जरी' में गोरखनाथजी ने गुह्य से गुह्य योगशास्त्र का प्रतिपादन किया है, जो मुक्ति का सोपान है। यह योग भगवतत्व है, क्योंकि साक्षात् कृष्ण के मुख से उनके अमोघ वचनामृत के रूप में निर्गत है। गोरखनाथजी ने कहा है कि 'मैं अत्यन्त गूढ़ रहस्य का प्रकाशन करता हूँ। लोकमाया-अन्धकार गूढ़ रहस्य का प्रकाश करता हूँ। लोकमाया-अन्धकारस्वरूप विश्वप्रपंच में ग्रसित लोगों! बार-बार जन्म-मरण के चक्ररूप गर्भवास में भ्रमित न हो अन्तर्वर्ती हृदय के उद्योगरूप मोक्ष का चिन्तन करो। स्वसंवेद्य परम तत्व का साक्षात्कार ही साध्य है।'

हन्त रहस्यं भणामो मूढ़ा! माभ्रमत गर्भगोलेषु।
अत्यासन्नं हृदयं पर्यालोचयत तस्योद्योगम्॥ (महार्थमञ्जरी गाथा 69)

'महार्थमञ्जरी' में गोरक्षनाथजी ने स्पष्ट कहा है कि परमात्म-स्वसंवेद्य अलख निरञ्जन का ही चिन्तन श्रेयस्कर है, इसके अतिरिक्त फल की कामना से अनात्मवस्तु का अनुष्ठान उचित नहीं है। आत्मतत्त्व-परमात्म तत्त्व के चिन्तन में ही रुचिविधि है, जहाँ इसका अभाव है, वहीं निषेध है। परमात्मचिन्तन हमारे हृदय में स्थित स्पन्दित पारमेश्वर विमर्श स्वरूप-भाव का विवेक है, परमज्ञान है, जिस परमतत्त्व में मन पूर्ण विश्रान्ति का अनुभव करता है, वही हमारे कल्याण का श्रेयस्कर साधन है, जो सर्वथा आचरणीय है यही योगज्ञानामृत के रसास्वादन की सम्पूर्ण वैधता है-

यत्र रुचिस्तत्र विधिर्यत्रेयं नास्ति तत्र च निषेधः।
इत्यस्माकं विवेको हृदयपरिस्पन्दमात्रशास्त्राणाम्॥ (महार्थमञ्जरी गाथा-7)

लोकव्यवहार में जिस वस्तु में रूचि होती है, उसका निषेध किया जाता है और जिसमें निषेध का भाव होता है, उसमें रुचि रखने का पक्ष किया जाता है। 'महार्थमञ्जरी' की उपर्युक्त गाथा के अनुसार योग के धरातल पर आत्मचिन्तन में रुचि और अनात्मचिन्तन में निषेध प्रतिपादित है।

'महार्थमञ्जरी' की रचना का आधार शिवोपदिष्ट (नाथ) योगामृत महाज्ञान है, जो परम्परागत योग का सारातत्व है और जिसका महार्थतत्व के रूप में महाभारत के युद्धक्षेत्र में श्रीकृष्ण ने निर्वचन किया था। यह कश्मीर शैवयोग प्रतिपादित क्रमदर्शन का प्रतिपादन नहीं है। गोरखनाथजी ने कहा है कि विश्वात्मक परमेश्वर देवता अनादि, अनन्त, नित्य और निरावरण अलख निरञ्जन है। वह सनातन सार्वकालिक, सर्वव्यापक है। उसे कालकलंक का स्पर्श कभी क्रमशः नहीं होता, जीते जी जीवन्मुक्तिस्वरूप में उसके लिए मोक्षरूप विघ्न का प्रश्न ही नहीं है। वह विश्ववैचित्र्य विकल्प से परे है, कालकल्मषस्पर्श से परे है।

'महार्थमञ्जरी' के उपक्र में मूल रूप से नाथयोगतत्त्व के विस्तारपूर्वक अभिव्यञ्जन का ही वास्तव में बीजारोपण उपलब्ध होता है, यह परमयोग रहस्य है, जिसका उन्मीलन मांगलिक और अन्तर्ज्योति के प्रकाशन का माध्यम है। गोरखनाथजी का कथन है-

इतिमहतिरहस्योन्मीलने मंगलाय।
प्रभवति मम संविद् योगिनीनां प्रसादः॥

स्वप्न में प्रकट होकर योगिनी ने उन्हें महार्थमञ्जरी के शब्दांकन की प्रेरणा प्रदान की। यह उसका अनुग्रह अथवा प्रसाद है। 'महार्थमञ्जरी' के रचिता महेश्वरानन्द ही गोरखनाथ हैं। गोरखनाथजी शिवगोरक्ष हैं, उनकी महेश्वरानन्द कहने में आपत्ति नहीं है। 'महार्थमञ्जरी' की परिमल टीका उन्हीं की स्वोपज्ञटीका है। महायोगी गोरखनाथजी ने सत्तर गाथाओं में स्वप्न में प्रकट योगिनी की कृपा से 'महार्थमञ्जरी' की रचना की। अपनी स्वोपज्ञ परिमल व्याख्या के मंगलाचरण के बारहवें श्लोक में उनकी उक्ति है-

स्वप्नसमयोपलब्धा सा सुमुक्षी सिद्धयोगिनी देवी।
गाथाभिः सप्तत्या स्वापितभाषाभिरस्तु सम्प्रीता॥

गोरखनाथजी ने जाग्रत अवस्था-निर्विशेष स्वप्न में अभिव्यक्त अथवा प्रकट होने वाली, स्वहस्त मुद्रा से अपने हृदय की करुणा का प्रकाशन करने वाली, अलौकिक योगैश्वर्य अथवा योगसिद्ध से सम्पन्न, कन्या, शूल, कपाल मात्र धारण करने वाली योगिनी से 'महार्थमञ्जरी' की सत्तर गाथाओं की रचना का उल्लास प्राप्त किया था। उन्होंने उसकी वन्दना की है-

कन्थाशूलकपालमात्र विभवांवन्दे तां योगिनीम्। (महार्थमञ्जरी गाथा-71)

गोरखनाथ ने अपनी रचना 'महार्थमञ्जरी' तथा 'स्वोपज्ञ परिमल टीका' को भगवान् शम्भु (शिव) के लिए पुष्पाञ्जली कहा है-

पुष्पाञ्जलिर्भवतु वाङ्मय एष शम्भोः। (महार्थमञ्जरी मंगलाचरण-9)

गोरखनाथजी ने 'महार्थमञ्जरी' के उपसंहारात्मक अन्तिम श्लोक में कहा है-

अधिवासयतु सदा मुखमन्यकथालेपलब्धदौर्गन्ध्यम्।
कर्पूरशकलइव में शिव शिव इति शीतलः शब्दः॥

'शिव-शिव शब्द मेरे मुख को सुरक्षित करे।'

शिवयोगसार- शिवगोरक्ष महायोगी गोरक्षनाथ द्वारा रचित 'शिवयोगसार' योगशास्त्र की महाराष्ट्रीय नाथयोगपरम्परा में गणना की जाती है। प्रायः सौ श्लोकों की आकृति में रचित यह ग्रन्थ नाथयोग साधना-पद्धति पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। इसमें नाथज्योति के ध्यान का महत्त्व प्रकाशित करते हुए गोरखनाथजी ने 'शिवयोगसार' के प्रारम्भ मे ही अत्यन्त मांगलिक वाणी में कहा है-

ज्योतिर्ध्यानात् सदा योगी योगसिद्धिमवाप्नुयात्।
सर्वभूतहृदिस्थोऽसौ ज्वलत्पावकसन्निभः॥
अन्तरात्मकसंज्ञोऽयं जगच्चक्षुर्न संशयः॥ (शिवयोगसार 1-2)

ज्योति का ध्यान कर योगी को सिद्धि प्राप्त कर लेनी चाहिए। यह समस्त प्राणियों के हृदय में प्रदीप्त अग्नि के समान प्रकाशित है। यह ज्योति अन्तगत्मा के नाम से प्रसिद्ध है और निस्सन्देह यह जगत् का नेत्र है। यह अन्तरात्मक ज्योति ही अपरम्पर सदाशिव है, परमपद है। परमेश्वर शिव, पराशक्ति का अधिष्ठाता रुद्र है। और निरञ्जन-ज्ञानशक्ति विशिष्ट सूक्ष्माशक्ति का अधिष्ठाता परमात्मा है-

अपरम्परं पदं शून्यं निरञ्जनं परमात्मेति। (सिद्धसिद्धान्तपद्धति 1 । 17)

Vimarsh

An Interdisciplinary Journal

Subscription Form

Editor,
Vimarsh
Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusar, Gorakhpur-273014

Dear Editor,

I/we would like to subscribe to the ***Vimarsh***, an interdisplinary journal, published by you. Subscription amount Rs./US$..................is being enclosed herewith by cheque*/demand draft no. .... drawn on .... Kindly enrol my/our - Annual/ Five Year/Life subscription** and arrange to send the issues of the journal on the following address :

Name of Individual/Institution : ....

Address : ....

....

City : .... Pin/Zip ....

State : .... Country :...

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 100	US $ 5	Rs. 200	US $ 10
Five Years	Rs. 400	US $ 20	Rs. 800	US $ 40
Life (15 Years)	Rs 1300	US $ 60	Rs. 2500	US $ 100

* All cheques/demand drafts should be drawn in favour of ***Pracharya, Maharana Pratap Snatkottar Mahavidyalaya, Jungle Dhusan*** payable at Gorakhpur. In case of outstation cheques please add Rs. 30/US$ 2 for clearing expenses.

** Please tick the desired subscription period.

Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusan, Gorakhpur-273014
Mob. : 9794299451, 9452971570 • E-mail : vimarshmppg@gmail.com

GUIDELINES FOR CONTRIBUTORS

1. Contribution should be submitted in duplicate, the first two impressions of the typescript. It should be typed in font Walkman-Chanakya (Hindi) and in Times New Roman (English) on a quarter or foolscap sized paper, in double-space and with at least one and a half inch margin on the right. Two copies of a computer printout along with a CD are preferred. They should subscribe strictly to the Journal format and style requirements.
2. The cover page of the typescript should contain: (i) title of the article, (ii) name (s) of author(s), (iii) professional affiliation, (iv) an abstract of the paper in less than 150 words, and (v) acknowledgements, if any. The first page of the article must also provide the title, but not the rest of the item of cover page.
3. Though there is no standard length for articles, a limit of 5000 words including tables, appendices, graphs, etc., would be appreciated.
4. Tables should preferably be of such size that they can be composed within one page area of the Journal containing about 45 lines, each of about 85 characters (letter/digits). The source(s) should be given below each table containing data from secondary source(s) or results from previous studies.
5. Figures and charts, if any, should be professionally drawn using such materials (like black ink on transparent papers) which allow reproduction by photographic process. Considering the prohibitive costs of such process, figures and charts should be used only when they are most essential.
6. Indication of notes should be serially numbered in the text of the articles with a raised numeral and the corresponding notes should be given at the end of the paper.
7. A reference list should appear after the list of notes. It should contain all the articles, books, reports, etc., referred in the text and they should be arranged alphabetically by the names of authors or institutions associated with those works.

   (a) Reference to books should present the following details in the same order: author's surname and name (or initials), year of publication (within brackets), title of the book (underlined/italic), place of publication. For example:

   Chakrabarti, D.K. (1997), *Colonial Indology: Socio-politics of the Ancient Indian Past,* pp. 224-25, New Delhi

   (b) Reference to institutional publications where no specific author(s) is (are) mentioned should present the following details in the same order. institution's name, year of publication (within brackets), title of the publication (underlined/italic), place of publication. For example:

   Ministry of Human Affairs (2001), *Primary Census Abstract,* New Delhi, pp. xxxviii.

   (c) Reference to articles in periodicals should present the following details in the same on: the author's surname and name (or initials), year of publication (in brackets), title of the article (in double quotation marks), title of periodical (underlined/italic), number of the volume and issue (both using Arabic numerals); and page numbers. For example:

   Siddiqui, F.A. and Naseer, Y. (2004), "Educational Development and Structure of Works participation in western Uttar Pradesh", *Population Geography,* Vol. 26, Nos. 1 & 2, pp. 25-26.

   (d) Reference in the text or in the notes should simply give the name of the author or institution and the year of publication, the latter within brackets; e.g. Roy (1982). Page numbers too may be given wherever necessary, e.g. (Roy 1982: pp. 8-15).

विमर्श

अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़ शिक्षा जगत् में निरन्तर चलने वाले शोध की प्रक्रिया का एक प्रयास है। विगत 14-15 वर्षों से इस परम्परा को इस संस्था ने कुशलता से निभाया है। भविष्य के लिए मेरी मंगलमय शुभकामनाएं !

आदित्यनाथ

10/02/2019

योगी आदित्यनाथ
मुख्यमंत्री
उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ।

ISSN 0976-0849

9 770976 084007

Published by Maharana Pratap Post Graduate College, Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)
E-mail : vimarshmppg@gmail.com
Printed at Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur